मास्टर ऑफ आर्ट्स (हिस्ट्री)

द्वितीय सेमेस्टर

इतिहास लेखन: आधुनिक

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष,

कुलपति,

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे, निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
2. प्रोफेसर रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, इतिहास विभाग एवं संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिआ इस्लामिय विश्वविद्यालय , दिल्ली
3. प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी , इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढ़वाल
4. प्रोफेसर वी.डी.एस. नेगी , इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा
5. डॉ. मदन मोहन जोशी, समन्वयक इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन

इकाई एक:आधुनिक इतिहास लेखन-आदर्शवादी दृष्टिकोण डॉ. रमा जैसवाल,डी- 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर

इकाई दो :आधुनिक इतिहास लेखन- प्रत्यक्षवाद डॉ. रमा जैसवाल,डी- 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर

इकाई तीन:आधुनिक इतिहास लेखन- मार्क्सवाद डॉ. तनवीर,हुसैन,इतिहास विभाग,फैज-ए-आम कालेज,शाहजहांपुर

इकाई चार : आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन: औपनिवेशिक इतिहासकार, डॉ. सिराज मुहम्मद, इतिहासविभाग, एम.बी.पी.जी. महाविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई पांच : आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन: राष्ट्रवादी इतिहासकार डॉ. तनवीर,हुसैन,इतिहास विभाग,फैज-ए-आम कालेज,शाहजहांपुर

इकाई छह : भारत में मार्क्सवादी, सबल्टर्न इतिहास लेखन डॉ. तनवीर,हुसैन,इतिहास विभाग,फैज-ए-आम कालेज,शाहजहांपुर

इकाई सात :इतिहास का दर्शन: ओसवाल्ड स्पैंग्लरडॉ. रमा जैसवाल,डी- 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर

इकाई आठ : इतिहास का दर्शन: आरनोल्ड जे0 टॉयनबी, डॉ. रमा जैसवाल,डी- 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर

इकाई नौ :इतिहास का दर्शन: जोहन गोटफ्राइड हर्डर, डॉ. रमा जैसवाल,डी- 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर

इकाई दस:इतिहास एवं अन्य सम्बद्ध विषय डॉ. मोना राठौड़, इतिहास विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इकाई ग्यारह : इतिहास के स्रोत डॉ. रमा जैसवाल,डी- 170, गामा 1,ग्रेटर नोयडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

इकाई बारह : मौखिक इतिहास, डॉ. विकासरंजन कुमार, इतिहास विभाग, राज. स्नातस्कोत्तर महाविद्यालय, बाजपुर

आई.एस.बी.एन.	:
कॉपीराइट	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष	:
Published by	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल-263139
Printed at	:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई एक: आधुनिक इतिहास लेखन-आदर्शवादी दृष्टिकोण

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 आदर्शवाद की परिभाषा

1.3.1 'हैण्ड बुक ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री' के अनुसार आदर्शवाद की परिभाषा

1.3.2 आर. जी. कॉलिंगवुड द्वारा आदर्शवाद की परिभाषा

1.3.3 पाश्चात्य आदर्शवादी चिंतकों की प्रमुख कृतियाँ

1.3.4 आदर्शवादियों की दृष्टि में मानव-जीवन का उद्देश्य

1.3.5 भारत में आदर्शवादी विचारधारा का विकास

1.3.6 चीन में आदर्शवादी विचारधारा

1.3.7 पाश्चात्य जगत में आदर्शवादी विचारधारा का विकास

1.3.8 जॉर्ज बर्कले ((1685-1753)

1.3.9 बर्कले के परवर्ती आदर्शवादी विचारक

1.4 इमानुअल कांट

1.4.1 कांट का अनुभवातीत आदर्शवाद

1.4.2 कांट का नैतिक शुद्धता का सिद्धांत

1.4.3 कांट का नैतिक स्वाधीनता का विचार

1.4.4 अनेकत्ववादी आदर्शवाद

1.4.5 जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल

1.4.6 हेगेल का आदर्शवादी ऐतिहासिक सिद्धांत

1.4.7 हेगेल की सामाजिक प्रगति की विधि

1.4.8 हेगेल के दर्शन में ईश्वर का स्थान

1.4.9 हेगेल के आदर्शवादी दृष्टिकोण की आलोचना

1.5 हेगेल के परवर्ती आदर्शवादी विचार तथा विचारक

1.5.1 फ्रेडरिक विल्हेम जोसेफ़ फौन शेलिंग

1.5.2 ज्ञान-मीमांसक आदर्शवाद

1.5.3 वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद

1.5.4 लार्ड ऐक्टन (1834-1902)

1.6 वास्तविक आदर्शवाद

1.6.1 व्यक्तिवादी आदर्शवाद –

1.7 आधुनिक वैज्ञानिकों के विचारों में आदर्शवाद

1.8 आदर्शवाद के अवसान के कारण

1.9 सारांश

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

1.11 अभ्यास प्रश्न

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आदर्शवाद उस दार्शनिक मत को कहते हैं जिसमें कि वास्तविकता मस्तिष्क पर आश्रित होती है और मस्तिष्क से स्वतंत्र उसका अस्तित्व नहीं होता. इसको हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी परिभाषित कर सकते हैं – मस्तिष्क अथवा मस्तिष्कों में उपजे विचार, वास्तविकता की मूल प्रकृति का सार होते हैं. आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य-जीवन का अंतिम उद्देश्य आत्मा-परमात्मा के चरम स्वरुप को जानना है. इसी को आत्मानुभूति, आदर्श व्यक्तित्व की प्राप्ति, परम आनंद की प्राप्ति तथा ईश्वर की प्राप्ति कहा जा सकता है.

दर्शन के क्षेत्र में आदर्शवाद उन आध्यात्मिक दर्शनों का समूह है जिनमें कि इस विचार पर बल दिया जाता है कि वास्तविकता, जिसको कि मनुष्य जान सकता है, वह मूलतः उसके मस्तिष्क की उपज होती है. भौतिकवाद के विपरीत आदर्शवाद इस बात पर बल देता है कि भौतिक घटनाओं के पीछे मुख्यतः मानव-चेतना उत्तरदायी होती है.

आदर्शवाद से हमारा प्रथम परिचय भारतीय वैदिक, चीन के नव-कन्फ्यूशियसवादी व बौद्ध दार्शनिक तथा नव-अफ़लातूनी यूनानी दार्शनिक कराते हैं. ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में आदर्शवादी विचारधारा के प्रथम दर्शन होते हैं. चौथी शताब्दी में महायान बौद्ध संप्रदाय के अंतर्गत 'योगाचार' में केवल मस्तिष्क में विकसित आदर्शवाद को व्यक्तिगत अनुभव की तुलना में वरीयता दी गयी.

पाश्चात्य अद्वैतवादी आदर्शवादी पदार्थ को नहीं, अपितु चेतना को सभी जीवों का आधार मानते हैं. अनेक्सागोरस का यह विश्वास था कि मस्तिष्क ने ही सभी वस्तुओं की रचना की है. प्लेटो ने अपने दर्शन में पवित्रता तथा न्याय आदि को मूर्त रूप में देखा था. प्लेटो के दर्शन से प्रभावित नव-अफ़लातूनीवाद आदर्शवाद की एक प्रमुख शाखा है. इसके अनुसार समस्त जीवों का निर्गम एक परम तत्व से हुआ है और प्रत्येक मनुष्य का परम लक्ष्य उस परम तत्व में लीन हो जाना है.

18 वीं शताब्दी में यूरोप में जॉर्ज बर्कले ने भौतिकवाद के विरुद्ध संशयवादी तर्क प्रस्तुत कर आदर्शवाद का पुनरुत्थान किया. 19 वीं शताब्दी में जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल, एफ़. डब्लू जे. शेलिंग, आर्थर शौपेनआवर जैसे आदर्शवादियों ने दार्शनिक क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित किया.

इमैनुअल कांट का मत है कि मानव-मस्तिष्क मानवीय अनुभव की संरचना तैयार करता है और विवेक नैतिकता का श्रोत है. कांट का मत – 'नैतिक शुद्धता का सिद्धांत' अथवा 'कर्तव्य के लिए कर्तव्य का सिद्धांत' कहा जाता है. कांट के विचार में मानव-प्रकृति में प्रमुख अंश नैतिक भावना का है.अनेकत्ववादी आदर्शवाद का प्रवर्तक गौटफ्राइड लेबनीज़ था .

जर्मन दार्शनिक जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल की प्रसिद्धि एक आदर्शवादी दार्शनिक के रूप में है. हेगेल ने आदर्शवादी ऐतिहासिक सिद्धांत का विकास किया. हेगेल के अनुसार मानव मस्तिष्क अपने विवेक द्वारा स्वातंत्र्य की अधिकाधिक अनुभूति की और अग्रसर होता है और अंततः उसे विश्वात्मा की अनुभूति होती है. मानव को विश्वात्मा की अनुभूति को हेगेल एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखता है. इतिहास को हेगेल केवल घटनाओं का अन्वेषण तथा उनका संकलन मात्र नहीं मानता है अपितु वह उसे घटनाओं के भीतर छुपी हुई कार्य-कारण की गवेषणा मानता है.

हेगेल की द्वंद्वात्मक प्रगति और पद्धति अधूरी तथा दोष-पूर्ण थी. उसने मानसिक तत्वों, अर्थात बुद्धि एवं भावना को ऐतिहासिक प्रक्रिया में आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया. कीर्कीगार्ड ने हेगेल के उस दावे की आलोचना की है जिसमे कि उसने वास्तविकता को पूर्णतया समझने की प्रणाली की खोज करने की बात की है.

रैंके का कहना है कि हेगेल ने इतिहास में मानव-क्रिया की भूमिका की उपेक्षा की है. कार्ल मार्क्स ने हेगेल के द्वंद्वात्मक आदर्शवाद को द्वंद्वात्मक पदार्थवाद में विकसित किया. आदर्शवादी जर्मन विचारक आर्थर शौपेनऑवर ने हेगेल के विचारों का विरोध करते हुए यह दावा किया की अबौद्धिक ही सत्यतः वास्तविक है. फ्रेडरिक विल्हेम जोसेफ़ फौन शेलिंग संसार को बुद्धि प्रधान-समझता है और वह संसार के इतिहास को तर्कसंगत मानता है-. वह हेगेल के नकारात्मक तर्कवाद का विरोध करता हैआत्मपरक आदर्शवाद में अनुभव तथा जगत के मध्य संबंधों को वर्णित . मीमांसक आदर्शवाद के प्रस्तावकों मे-ज्ञान .इस विचार का प्रमुख प्रणेता बर्कले है .किया जाता है ब्रांड ब्लान्शार्द का नाम प्रमुख है.वस्तुनिष्ठ आदर्शवादी विचारकों में थॉमस हिल ग्रीनबेनेदेतो क्रोसे तथा चार्ल्स ,जोसिया रोयस , .सांडर्स पाइर्स प्रमुख हैंवास्तविक आदर्शवाद का विकास गिवोनी जेन्टील ने किया था जो कि फ़ासीवाद का प्रबल समर्थक थाउसे फ़ासीवाद का . दार्शनिक कहा जाता हैबोर्डेन पार्कर बोने ने व्यक्तिवादी आदर्शवाद को लोकप्रियता . .दिलाई थी

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में क्वांटम फ़िज़िक्स तथा आइन्स्टीन के 'सापेक्षता का सिद्धांत' में आदर्शवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है.19 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही आदर्शवादी विचारधारा का अवसान होने लगा था.

आदर्शवाद के पतन के कारणों में जहाँ डार्विनवादी पदार्थवाद, व्यवहारवाद तथा जातीय नियतिवाद का विकास को गिना जा सकता है, वहीं ख़ुद आदर्शवाद की अपनी अव्यावहारिक और बचकानी परिकल्पनाएं अपने पतन के लिए ज़िम्मेदार थीं. नेबूर तथा रैके जैसे प्रत्यक्षवादियों ने आदर्शवाद के अवसान में निर्णायक भूमिका निभाई थी. उन्नीसवीं शताब्दी, आविष्कारों तथा औद्योगिक विकास का युग था, साम्राज्य-विस्तार का युग था, भौतिक समृद्धि का युग था. इस युग में आदर्शवाद की बात बेमानी हो गयी थी. किन्तु आदर्शवादी विचारधारा का कभी जड़ से उन्मूलन नहीं हुआ. हमको टॉलस्टॉय के साहित्य में तथा गाँधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व में आदर्शवाद की विजय का उद्घोष सुनाई पड़ता है.

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य - आदर्शवादी विचारधारा के मूलभूत सिद्धांतों, अवधारणाओं तथा उसके विकास के विभिन्न चरणों से, उसके गुण एवं उसके दोषों से, उसके उत्कर्ष और उसके अवसान से, आपको परिचित कराना है. इस इकाई का अध्ययन कर आप –

1. आदर्शवाद के मूलभूत सिद्धांतों तथा अवधारणाओं से परिचित हो सकेंगे.
2. विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में आदर्शवाद के विकास के इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे.
3. भारत में आदर्शवाद की विभिन्न शाखाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
4. प्राचीन काल में चीन तथा यूनान में आदर्शवादी विचारधारा के विकास से परिचित हो सकेंगे.
5. जॉर्ज बर्कले तथा इमानुअल कांट के आदर्शवादी विचारों से अवगत हो सकेंगे.
6. जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल के आदर्शवादी विचारों को विस्तार से समझ सकेंगे.
7. हेगेल के विचारों की समीक्षा, उसकी आलोचना तथा परवर्ती विचारों पर उसके प्रभाव से परिचित हो सकेंगे.
8. लेबनीज़, बर्कले, शेलिंग, ब्रांड ब्लाँशार्द, थॉमस हिल ग्रीन, जोसिया रोयस, बेनेदोतो क्रोसे, बोर्डन पार्कर बोने, लार्ड ऐक्टन, गिवोनी जेन्टील आदि आदर्शवादी विचारकों के विचारों को जान सकेंगे.
9. आदर्शवाद के अवसान की परिस्थितियों तथा उसके कारणों को जान सकेंगे.

1.3 आदर्शवाद की परिभाषा

1.3.1 'हैण्ड बुक ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री' के अनुसार आदर्शवाद की परिभाषा

'हैंडबुक ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री' के अनुसार – विचार की कोई भी प्रणाली जिसमें कि भाव, मस्तिष्क, तर्क, चिंतन अथवा अभिप्राय का ज्ञान के आधार पर अवलोकन किया जाए, या उनके आधार वास्तविकता को समझा जाए, उसे हम आदर्शवादी प्रणाली कह सकते हैं.

1.3.2 आर. जी. कॉलिंगवुड द्वारा आदर्शवाद की परिभाषा

आदर्शवादी अवस्थिति के सबसे मौलिक तथा परिष्कृत व्याख्याता आर. जी. कॉलिंगवुड के अनुसार – ' समस्त इतिहास, विचारों का इतिहास है और इतिहासकार का कार्य है कि वह अतीत में विभिन्न वैयक्तिक अभिप्रायों तथा विचारों को अपने मस्तिष्क में फिर से प्रदर्शित करे. इस कार्य के लिए इतिहासकार को विज्ञान के अंतर्गत अस्वीकृत प्रणालियों - तदनुभूति तथा अंतर्दृष्टि की आवश्यकता होती है. आदर्शवाद उस दार्शनिक मत को कहते हैं जिसमें कि वास्तविकता मस्तिष्क पर आश्रित होती है और मस्तिष्क से स्वतंत्र उसका अस्तित्व नहीं होता. इसको हम दूसरे शब्दों

में इस प्रकार भी परिभाषित कर सकते हैं – मस्तिष्क अथवा मस्तिष्कों में उपजे विचार, वास्तविकता की मूल प्रकृति का सार होते हैं.

1.3.3 पाश्चात्य आदर्शवादी चिंतकों की प्रमुख कृतियाँ

पाश्चात्य आदर्शवादी चिंतकों की प्रमुख कृतियाँ हैं -

1. जोसिया रोयस कृत - 'दि वर्ड एंड दि इंडिविजुअल'
2. जॉर्ज बर्कले कृत – प्रिंसिपल्स ऑफ़ ह्यूमन नॉलिज
3. जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल कृत - फ़ेनोमेनोलोजी ऑफ़ स्पिरिट
4. इमैनुअल कांट कृत – क्रिटीक़ ऑफ़ प्योर रीज़न'

1.3.4 आदर्शवादियों की दृष्टि में मानव-जीवन का उद्देश्य

अतिवादी आदर्शवाद में मानव-मस्तिष्क से इतर, विश्व के अस्तित्व को ही नकार दिया जाता है जब कि आदर्शवाद के सीमित संस्करण में किसी भी पदार्थ में देखे जाने वाले गुण-अवगुण मस्तिष्क में उनकी बनाई गयी छवि से स्वतंत्र नहीं होते. ईश्वरवादी आदर्शवाद में में यथार्थ ईश्वर के मस्तिष्क तक सीमित होता है.

आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य-जीवन का अंतिम उद्देश्य आत्मा-परमात्मा के चरम स्वरुप को जानना है. इसी को आत्मानुभूति, आदर्श व्यक्तित्व की प्राप्ति, परम आनंद की प्राप्ति तथा ईश्वर की प्राप्ति कहा जा सकता है. आत्मा-परमात्मा के चरम स्वरुप को जानने के लिए मनुष्य को चार सोपानों से गुज़रना पड़ता है –

1. अपने प्राकृतिक 'स्व' का विकास करना.
2. अपने सामाजिक 'स्व' का विकास करना.
3. अपने मानसिक 'स्व' का विकास करना.
4. आध्यात्मिक 'स्व' का विकास करना.

आदर्शवादी मानते हैं कि ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना – मनुष्य है. आदर्शवादी विचारक, मानव-व्यक्तित्व को ऊंचा उठाना तथा उसे सन्मार्ग पर ले जाना तथा उसे आत्मा का बोध करना ही शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं.'आइडियलिज्म' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द 'आइदीन' से हुई है जिसका कि अर्थ –'देखना' होता है. राजनीतिक आदर्शवाद में सामान्यतः आदर्शों, सिद्धांतों, मूल्यों, तथा लक्ष्यों को ठोस वास्तविकताओं की तुलना में अधिक महत्त्व दिया जाता है. कला के क्षेत्र में आदर्शवाद में सौन्दर्य विषयक प्रकृतिवाद तथा यथार्थवाद के स्थान पर सौन्दर्य की मानसिक अवधारणा तथा पूर्णत्व को महत्ता दी जाती है.कोई भी दर्शन जिसमें कि मानव-अस्तित्व के लेखे-जोखे में आदर्श तथा आध्यात्मिक तत्वों को महत्ता दी जाती है, उसे आदर्शवादी दर्शन कहा जा सकता है.

दर्शन के क्षेत्र में आदर्शवाद उन आध्यात्मिक दर्शनों का समूह है जिनमें कि इस विचार पर बल दिया जाता है कि वास्तविकता, जिसको कि मनुष्य जान सकता है, वह मूलतः उसके मस्तिष्क की उपज होती है. भौतिकवाद के विपरीत आदर्शवाद इस बात पर बल देता है कि भौतिक घटनाओं के पीछे मुख्यतः मानव-चेतना उत्तरदायी होती है. इस

दृष्टिकोण के अनुसार भौतिक अस्तित्व से पहले चेतना का अस्तित्व होता है तथा चेतना के बिना भौतिक अस्तित्व संभव ही नहीं है.

आदर्शवादी सिद्धांतों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं – आत्मपरक आदर्शवाद तथा वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद. समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो आदर्शवाद यह दर्शाता है कि किस प्रकार मानवीय विचार (विशेषकर आस्था तथा मूल्य) समाज का रूप निर्धारित करते हैं.

1.3.5 भारत में आदर्शवादी विचारधारा का विकास

आदर्शवाद से हमारा प्रथम परिचय भारतीय वैदिक व बौद्ध दार्शनिक दार्शनिक कराते हैं. ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में आदर्शवादी विचारधारा के प्रथम दर्शन होते हैं. चौथी शताब्दी में महायान बौद्ध संप्रदाय के अंतर्गत 'योगाचार' में केवल मस्तिष्क में विकसित आदर्शवाद को व्यक्तिगत अनुभव की तुलना में वरीयता दी गयी. ब्रिहदाणन्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य द्वारा प्रतिपादित आदर्शवाद में हम आदर्शवाद के प्राचीनतम स्वरुप के दर्शन कर सकते हैं. इसके अनुसार घटित वास्तविकता का सार एकीय चेतना में दृष्टिगोचर होता है. बौद्धों के आदर्शवाद में आध्यात्म को कम और ज्ञान-मीमांसा को अधिक महत्त्व दिया जाता है.

आध्यात्मिक आदर्शवादी, बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु की दृष्टि में विश्व-विषयक हमारा ज्ञान, हमारे अपने अनुभवातीत विश्व-विषयक ज्ञान तथा अवधारणाओं तक ही सीमित है.अद्वैत वेदांत में आदि शंकराचार्य ने आध्यात्मिक आदर्शवाद का विकास किया इस दर्शन में चेतना को ही सार्वभौमिक सत्य स्वीकार .किया गया है और शेष सबको माया बताया गया है) 'जीवो ब्रह्मत्व न अपरः :ब्रह्म सत्यम जगन मिथ्या' –ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है तथा यह अनेकत्व वाला जगत एक भ्रम है(परमात्मा से भिन्न नहीं है ,आत्मा ,काश्मीर के शैव चिन्तक अभिनव गुप्त 1025-975)ईसवीको भी (आदर्शवादीकहा जाता है .भारतीय आदर्शवाद में शिक्षक को त्रिदेव कहा गया हैकबीर गुरु को गोविन्द से भी बड़ा . .मानते हैं क्योंकि वही तो है जो भक्त को गोविन्द से मिलवा देता हैआधुनिक आदर्शवादी भारतीय चिंतकों में श्री अरबिंदो तथा .सर्वपल्ली राधाकृष्णन प्रमुख हैं के रचयिता डॉक्टर 'एन आइडियलिस्ट व्यू ऑफ़ लाइफ़'

1.3.6 चीन में आदर्शवादी विचारधारा

नव-कन्फ्यूशियसवादी वांग यान्गमिंग यह मानता है कि पदार्थों को एक निश्चित स्वरुप प्रदान करने का कार्य मानव-मस्तिष्क ही करता है और मस्तिष्क ही सभी प्रकार विचारों का आधार है.

1.3.7 पाश्चात्य जगत में आदर्शवादी विचारधारा का विकास

पाश्चात्य अद्वैतवादी आदर्शवादी पदार्थ को नहीं, अपितु चेतना को सभी जीवों का आधार मानते हैं. अनेक्सागोरस (480 ईसा पूर्व) का यह विश्वास था कि मस्तिष्क ने ही सभी वस्तुओं की रचना की है. तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के दार्शनिक प्लेटो ने अपने दर्शन में पवित्रता तथा न्याय आदि को मूर्त रूप में देखा था. प्लेटो के दर्शन से प्रभावित नव-अफ़लातूनीवाद आदर्शवाद की एक प्रमुख शाखा है. इसके अनुसार समस्त जीवों का निर्गम एक परम तत्व से हुआ है और प्रत्येक मनुष्य का परम लक्ष्य उस परम तत्व में लीन हो जाना है. इस दर्शन के अनुसार मनुष्य परम सुख तथा पूर्णत्व प्राप्त करने में सक्षम है.हेर्मेन लोत्ज़े तथा प्रोटेस्टेंट ब्रह्मविज्ञानियों ने आदर्शवाद की इस शाखा में अपनी आस्था व्यक्त की. 'न्यू थॉट मूवमेंट', 'यूनिटी चर्च' तथा ईसाई विज्ञान के ब्रह्मविज्ञान पर भी इस आदर्शवाद का प्रभाव देखा जा सकता है.

1.3.8 जॉर्ज बर्कले ((1685-1753)

18 वीं शताब्दी में यूरोप में जॉर्ज बर्कले, बिशप ऑफ़ क्लोयने ने भौतिकवाद के विरुद्ध संशयवादी तर्क प्रस्तुत कर आदर्शवाद का पुनरुत्थान किया. बर्कले का विचार था कि वास्तविकता केवल मस्तिष्कों में विकसित विचारों का प्रतिफल है. बर्कले केवल दो पदार्थों को वास्तविक मानता है – आत्मा तथा विचार.

बर्कले की सबसे प्रसिद्द पुस्तक – ट्रीटाइज़ कन्सर्निंग दि प्रिंसिपल्स ऑफ़ ह्यूमन नॉलिज' है. बर्कले के दार्शनिक प्रयोजनों की बुनियाद धर्म है किन्तु वह इसमें दर्शन के मनोविज्ञान, गणित, भौतिक शास्त्र, आचार शास्त्र, अर्थशास्त्र तथा चिकित्सा शास्त्र को भी महत्त्व देता है. बर्कले ने अपदार्थवाद की अवधारणा का विकास किया इसको हम आत्मपरक आदर्शवाद की श्रेणी में रख सकते हैं. अपने ग्रन्थ – 'एन एसे टुवर्ड्स ए न्यू थ्योरी ऑफ़ विज़न' में बर्कले ने मानवीय अवलोकन की सीमाओं की चर्चा की है.

बर्ट्रेंड रसेल ने अपनी पुस्तक – 'दि प्रौब्लम्स ऑफ़ फिलोसोफ़ी' में बर्कले के आदर्शवाद के समर्थन में दी गयी उसकी पुनुरुक्तात्मक भूमिका पर प्रकाश डाला है. वस्तुनिष्ठ आदर्शवादी अनुभवातीत विश्व की अवधारणा में विश्वास करते हैं किन्तु वो उसे केवल मानसिक अवधारणा नहीं मानते. प्लेटो तथा गोटफ्राइड लेबनीज़ सत्तामूलक आदर्शवाद को नकारते हैं और आध्यात्मिक आदर्शवाद में विश्वास व्यक्त करते हैं.

1.3.9 बर्कले के परवर्ती आदर्शवादी विचारक

बर्कले के परवर्ती चिंतकों - ह्यूम तथा कांट की आदर्शवादी विचारधारा पर बर्कले की विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है. 19 वीं शताब्दी में जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल, एफ़. डब्लू जे. शेलिंग, आर्थर शौपेनआवर जैसे आदर्शवादियों ने दार्शनिक क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित किया. मस्तिष्क से स्वतंत्र विश्व की अवधारणा को नकारने वाले जॉर्ज बर्कले जैसे आत्मपरक आदर्शवादी प्रति-यथार्थवादी हैं और इमैनुअल कांट जैसे अनुभवातीत आदर्शवादी आध्यात्मिक आदर्शवाद के स्थान पर विश्व की ज्ञान-मीमांसक व्याख्या करते हैं.

1.4 इमानुअल कांट

1.4.1 कांट का अनुभवातीत आदर्शवाद

इमैनुअल कांट (1724-1804) को आधुनिक दर्शन का जनक कहा जाता है. कांट का मत है कि मानव-मस्तिष्क मानवीय अनुभव की संरचना तैयार करता है और विवेक नैतिकता का श्रोत है. कांट की दृष्टि में विश्व-विषयक हमारा ज्ञान, हमारे अपने अनुभवातीत विश्व-विषयक ज्ञान तथा अवधारणाओं तक ही सीमित है. कांट ने अपने अनुभवातीत आदर्शवाद को देकार्त के संशयवादी आदर्शवाद तथा बर्कले के यथार्थवाद विरोधी आत्मपरक आदर्शवाद से भिन्न दर्शाया. राजनीतिक दृष्टि से कांट इस विचार का प्रणेता है कि अनवरत शांति, वैश्विक लोकतंत्र तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से स्थापित की जा सकती है. उसका विश्वास है कि यही सार्वभौमिक इतिहास का परिणाम होगा. कांट ने अपने विचारों में बुद्धिवादियों के विचारों का तथा अनुभववादियों के विचारों का संश्लेषण किया.

1.4.2 कांट का नैतिक शुद्धता का सिद्धांत

इमानुअल कांट का मत – 'नैतिक शुद्धता का सिद्धांत' अथवा 'कर्तव्य के लिए कर्तव्य का सिद्धांत' कहा जाता है. इसे 'कठोरतावाद' (रिगौरिज्म) भी कहा जाता है. कांट अपने दार्शनिक मत –'आलोचनात्मक-दर्शन' (क्रिटिकल फ़िलोसोफ़ी) के लिए भी प्रसिद्द है. कांट यह मानता है कि यदि मनुष्य के कर्म शुद्ध होते हैं, अच्छे होते हैं तो उससे

समस्त मानव-जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है. कांट ने अपने ग्रन्थ –'थॉट्स अपॉन दि ट्रू एस्टीमेशन ऑफ़ लिविंग फोर्सेस' में रीने देकार्त तथा गौटफ्रीड विल्हेम लेबनीज़ के सत्ता सम्बन्धी विचारों का समन्वय किया था. इसी प्रकार उसने अपने ग्रन्थ – 'जनरल नेचुरल हिस्ट्री एंड थ्योरी ऑफ़ हेवन' में उसने लेबनीज़ तथा न्यूटन यांत्रिक एवं प्रयोजनवादी विचारों का समन्वय करने का प्रयास किया था.

1.4.3 कांट का नैतिक स्वाधीनता का विचार

नैतिक स्वाधीनता – कांट के विचार में मानव-प्रकृति में प्रमुख अंश नैतिक भावना का है. उसकी दृष्टि में कर्तव्य-पालन की अपेक्षा, सभी अपेक्षाओं की तुलना में शीर्षस्थ स्थान रखती है. नैतिक आदेश, निरपेक्ष होता है. नैतिक कर्तव्य से नातिक स्वाधीनता भी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है.'तुम्हें करना चाहिए', यह नैतिक कर्तव्य है. और 'तुम कर सकते हो' यह नैतिक स्वाधीनता है. कांट केवल एक चिन्तक नहीं था, उसने सुकरात तथा पाइथागोरस की भाँति अपने जीवन में भी अपने दार्शनिक विचारों को अपनाया था. यद्यपि जर्मन कवि हाइने ने उसे एक सनकी और हठी व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है किन्तु उसके प्रशंसक उसे दर्शन के क्षेत्र में एक नवीन युग का प्रवर्तक मानते हैं.

1.4.4 अनेकत्ववादी आदर्शवाद

गौटफ्राइड लेबनीज़ इसका प्रवर्तक था. उसके अनुसार अनेक व्यक्तियों के मस्तिष्क मिलकर दृश्य-जगत के अस्तित्व का आधार बनाते हैं और भौतिक-जगत का अस्तित्व संभव बनाते हैं. लेबनीज़ के आदर्शवाद को 'पैनसाइकिज़्म' कहा जाता है.

1.4.5 जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल

1.4.6 हेगेल का आदर्शवादी ऐतिहासिक सिद्धांत

आधुनिक आदर्शवादी दार्शनिकों में हेगेल ने तर्क-विधि अपनाई तो पेस्टालॉजी ने अभ्यास-विधि को अपनाया, वहीं रेने देकार्त ने सरल से जटिल की और चलने में अपनी अभिरुचि दिखाई. आदर्शवादियों की दृष्टि में साक्षात् अनुभव का अपना महत्त्व है किन्तु विश्व में हर पदार्थ, हर जीव का प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप करना असंभव है. जर्मन दार्शनिक हेगेल (1770-1831) की प्रसिद्धि एक आदर्शवादी दार्शनिक के रूप में है. हेगेल की रचनाओं में 'दि फ़िमोनोलोजी ऑफ़ स्पिरिट', दि साइंस ऑफ़ लॉजिक' 'लेक्चर्स ऑन फिलोसोफी ऑफ़ हिस्ट्री' 'रीज़न इन हिस्ट्री', 'आउटलाइन्स ऑफ़ दि फिलोसोफी ऑफ़ राइट' , 'एलीमेंट्स ऑफ़ दि फिलोसोफी ऑफ़ राइट' 'फिलोसोफी ऑफ़ माइंड' आदि प्रसिद्द हैं . हेगेल ने आदर्शवादी ऐतिहासिक सिद्धांत का विकास किया. हेगेल का विचार है कि इतिहास द्वंद्वात्मक संघर्ष की एक निरंतर होने वाली प्रक्रिया है. इसमें प्रत्येक धारणा को एक विपरीत विचार वाली प्रति-धारणा का सामना करना पड़ता है. इन दोनों के मध्य होने वाला संघर्ष अंततः संश्लेषण तक पहुँचता है.

प्रसिद्द रूमानीवादी इतिहास-दार्शनिक हर्डर ने वैश्विक-इतिहास को जो महत्त्व दिया था, उसे हेगेल और अधिक आगे बढाया था. हेगेल के इतिहास दर्शन को हर्डर के इतिहास-दर्शन की ही अगली कड़ी माना जाता है. हेगेल के अनुसार मानव मस्तिष्क अपने विवेक द्वारा स्वातंत्र्य की अधिकाधिक अनुभूति की और अग्रसर होता है और अंततः उसे विश्वात्मा की अनुभूति होती है. मानव को विश्वात्मा की अनुभूति को हेगेल एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखता है. हेगेल के अनुसार –

'इतिहास केवल घटनाओं का अन्वेषण तथा संकलन ही ही नहीं है अपितु उनके भीतर छुपी हुई कार्य-कारण की गवेषणा भी है.' हेगेल इस वैश्विक-इतिहास को सम्पूर्ण मानवता का इतिहास अर्थात मानव की बर्बर स्थिति से लेकर

उसके सभ्य होने की विकास-यात्रा का वृतांत मानता है.हेगेल का विचार है बुद्धि ही विश्व का शासन करती है इसलिए वैश्विक-इतिहास एक बुद्धि-संगत प्रक्रिया है.

हेगेल यह मानता है कि वैश्विक-इतिहास, मानव की स्वतंत्रता-प्राप्ति की यात्रा का वृतांत है. हेगेल मानव-स्वतंत्रता को 'नैतिक बुद्धि के प्रसार' के रूप में देखता है. और इसे वह सामाजिक संबंधों का वाह्य-रूप मानता है. यही सामाजिक सम्बन्ध, बढ़ते-बढ़ते, राष्ट्र के रूप में विकसित होते हैं. इस प्रकार हेगेल का इतिहास-दर्शन राष्ट्र के विकास-क्रम की गवेषणा करता है.हेगेल मनुष्य की इस स्वतंत्रता-प्राप्ति हेतु यात्रा में समाज और राष्ट्र को बाधक नहीं मानता है.हेगेल का यह विचार इतिहास को, दर्शन शास्त्र के बहुत निकट तक ले आया था.

मार्क्सवादी, प्रगतिवादी, तथा प्रत्यक्षवादी जो कि आध्यात्मवाद को नकारते थे, उन्होंने भी सभी घटनाओं के मानसिक तथा आदर्शवादी चरित्र की परिकल्पना को अपनाया.हेगेल अपने प्रसिद्द ग्रन्थ –'दि फ़िलोसोफी ऑफ़ हिस्ट्री' में इतिहास दर्शन का वैज्ञानिक अध्ययन करता है. इतिहास के दार्शनिक सिद्धांत के विषय में वह यह दर्शाता है कि ऐतिहासिक घटनाएँ न तो अचानक हो जाती हैं और न ही वो कृत्रिम परिस्थितियों के कारण होती हैं बल्कि वो अपने युग की द्योतक होती हैं तथा भविष्य में होने वाली घटनाओं की रूपरेखा भी तैयार करती हैं. हेगेल इतिहास की व्याख्या एक बौद्धिक प्रक्रिया के रूप में करता है. हेगेल के अनुसार विवेक इतिहास को संचालित करता है और विश्व का इतिहास एक बुद्धि-सांगत प्रक्रिया है. उसके विचार से दैविक योजना की दुरूह प्रक्रिया को इतिहास दर्शन के माध्यम से समझा जा सकता है. इस प्रकार हेगेल की दृष्टि में विश्वात्मा की अनुभूति ऐतिहासिक प्रक्रिया के माध्यम से हो सकती है.

इतिहास को हेगेल केवल घटनाओं का अन्वेषण तथा उनका संकलन मात्र नहीं मानता है अपितु वह उसे घटनाओं के भीतर छुपी हुई कार्य-कारण की गवेषणा मानता है. हेगेल के अनुसार विश्व-इतिहास की मूल प्रवृत्ति मानव-स्वातत्र्य का विकास है. मानव-स्वतत्रता से हेगेल का तात्पर्य नैतिक बुद्धि के प्रसार अर्थात स्वतंत्रता की चेतना से है. यह स्वत्रता की चेतना सामाजिक संबंधों को बाह्य-रूप प्रदान करती है और सामाजिक संबंधों की परिणिति राष्ट्र के रूप में होती है. राष्ट्र, नैतिक बुद्धि की चरम परिणिति होता है.हेगेल प्रकृति और इतिहास में एकता नहीं देखता है. वह प्रकृति की प्रक्रिया को चक्रात्मक (पुनरावृत्ति-योग्य) तथा इतिहास की प्रक्रिया को रेखावत मानता है. ऐतिहासिक घटनाओं में नवीनता पाई जाती है जैसे कि एक युद्ध का स्वरुप, दूसरे युद्ध के स्वरुप से भिन्न होता है.

हेगेल इतिहास को केवल विचारों का विकास मानता है और ऐतिहासिक घटनाओं को विचारों की बाह्य-अभिव्यक्ति मानता है. अर्थात इतिहास विचारों की संतति का वृतांत है. इसमें मनुष्य पहले इच्छा करता है फिर कर्म के के रूप उसे अबिव्यक्त करता है. मनुष्य के कर्म उसकी बुद्धि पर आश्रित होते हैं. हेगेल बुद्धि और भावना में भेद नहीं करता है. हेगेल के अनुसार इतिहास मूलतः तार्किक होता है. तार्किक प्रक्रिया के दंद्वात्मक और विरोधात्मक होने के कारण अर्थात वाद-प्रतिवाद तथा संवाद के क्रम पर आश्रित होने के फलस्वरूप इतिहास की प्रक्रिया द्वंद्वात्मक (डाइलेक्टिक) होती है.

1.4.7 हेगेल की सामाजिक प्रगति की विधि

अपने ऐतिहासिक प्रक्रिया सिद्धांत में हेगेल का विचार है कि संसार तथा उसके नियम स्थिर नहीं अपितु प्रगतिशील व परिवर्तनशील हैं. संसार की यह प्रगति किंचित निश्चित सिद्धांतों से संचालित होती है. हेगेल मानव-मस्तिष्क को अस्पष्ट से स्पष्ट विचारों की ओर तथा मानव-समाज को विरोधी तत्वों तथा विचारों के संघर्ष से आगे की ओर बढ़ता है. हेगेल की सामाजिक प्रगति की विधि द्वंद्वात्मक है जो कि वाद, प्रतिवाद तथा समन्वय के विचारों पर निर्भर करती है. विचारों

का यह द्वंद्व तब तक चलता रहता है जब तक कि एक वह आदर्श विचार की परिणिति तक नहीं पहुँचता है. हेगेल ऐसी आदर्श स्थिति में राष्ट्रीय-राज्य की परिकल्पना करता है. अपने ग्रन्थ में हेगेल इस बात पर 'फिलोसोफी ऑफ़ राइट' .बल देता है कि राज्य और राष्ट्र के हितों के समक्ष व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वार्थों की बलि दे देनी चाहिए

1.4.8 हेगेल के दर्शन में ईश्वर का स्थान

हेगेल का विश्वास है कि ईश्वर के मस्तिष्क की संरचना अथवा तत्वभूत वास्तविकता को जाना जा सकता है. हेगेल और कीर्कीगार्ड, इस विचार में सहमत हैं कि वास्तविकता तथा मानव, दोनों ही उतने ही अपरिपूर्ण होते हैं जितने कि हम समय में अपरिपूर्ण होते हैं, और वास्तविकता का विकास समय के माध्यम से होता है. किन्तु समय तथा शाश्वतता, समय के क्षेत्र से परे है और हेगेल का इसके विषय में विचार है कि हम इस तार्किक संरचना को जान सकते हैं.

हेगेल के चिंतन को हम प्लेटो तथा इमानुअल कांट की विस्तीर्ण परंपरा के सृजनात्मक विकास के रूप में समझ सकते हैं. चिंतकों की इस सूची में हम प्रोक्लस, मीस्टर एकहार्ट, गौटफ्राइड विल्हेम लेबनीज़, प्लोटीनस, जैकब बोहमे तथा जीन जैकस रूसो के नाम भी जोड़ सकते हैं. ये सभी चिन्तक, भौतिकतावादी चिंतकों – एपिक्यूरस, थॉमस होब्स, तथा अनुभववादी – डेविड ह्यूम से अलग विचार रखते हैं और वे स्वतंत्रता और आत्म-संकल्प को वास्तविक भी मानते हैं तथा उनमें आत्मा अथवा मस्तिष्क अथवा ईश्वरत्व के सत्तामूलक उप-लक्षण भी मानते हैं. अपने विश्वकोश में आत्मा पर विमर्श करते समय हेगेल, अरस्तू के 'ऑन दि सोल' को दार्शनिक दृष्टि से अमूल्य मानता है. 'फ़िनेमिनोलोजी ऑफ़ स्पिरिट' तथा 'साइंस ऑफ़ लॉजिक' में हेगेल कांट के स्वतंत्रता तथा नैतिकता और उनके सत्तामूलक आशय पर व्यापक प्रकाश डालता है.

हेगेल का अप्रतिबंध आदर्शवाद यह मानता है कि वास्तविकता पूर्णतया बोधगम्य है. उसका द्वंद्वात्मक आदर्शवाद, बर्कले के आत्मपरक आदर्शवाद तथा कांट एवं फिश्ते के अनुभवातीत आदर्शवाद से भिन्न है. अपने विवेक का उपयोग कर दार्शनिक, चरम ऐतिहासिक वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं.

1.4.9 हेगेल के आदर्शवादी दृष्टिकोण की आलोचना

हेगेल की द्वंद्वात्मक प्रगति और पद्धति अधूरी तथा दोष-पूर्ण थी. उसने मानसिक तत्वों, अर्थात बुद्धि एवं भावना को ऐतिहासिक प्रक्रिया में आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया. हेगेल के आदर्शवादी दृष्टिकोण के अनुसार वस्तु-जगत विचार-जगत का प्रतिबिम्ब है. उसका इतिहास दर्शन एक पक्षीय प्रतीत होता है. अब चूंकि हेगेल ने इतिहास दर्शन में राष्ट्र को प्रमुखता दी है इसलिए उसका दृष्टिकोण सांस्कृतिक कम तथा राजनीतिक अधिक हो गया है.

कीर्कीगार्ड ने हेगेल के उस दावे की आलोचना की है जिसमे कि उसने वास्तविकता को पूर्णतया समझने की प्रणाली की खोज करने की बात की है. कीर्कीगार्ड की दृष्टि में ईश्वर के वास्तविकता एक व्यवस्था हो सकती है किन्तु किसी भी मनुष्य के लिए ऐसा हो पाना संभव नहीं है क्योंकि वास्तविकता तथा मनुष्य, दोनों ही अपूर्ण हैं जब कि सभी दर्शनों में सम्पूर्णता अन्तर्निहित है. हेगेल का चरम आदर्शवाद अस्तित्व तथा विचार के अंतर को धूमिल कर देता है: हमारी नैतिक प्रकृति हमारी वास्तविकता-विषयक समझ को सीमित कर देती है.रैंके, हीगेल द्वारा प्रतिपादित इतिहास-दर्शन की कटु आलोचना करता है. उसका कहना है कि हीगेल ने इतिहास में मानव-क्रिया की भूमिका की उपेक्षा की है. जब कि मानव-क्रिया की उपेक्षा कर केवल विचार और अवधारणा के आधार पर हम प्रामाणिक इतिहास की रचना नहीं कर सकते.

व्यवस्थित आध्यात्म के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के बावजूद हेगेल ने मानव-बौद्धिकता में आस्था की ज्ञानोदय काल की परंपरा का निर्वाह किया था. डेनिश ईसाई चिन्तक सोरेन कीर्कीगार्ड ने हेगेल के तार्किक दावों को अस्वीकार किया. उसने हेगेल की मानव-संवेदनाओं से सर्वथा विहीन बौद्धिक-अवधारणा को नितांत अव्यवहारिक बताया. कीर्कीगार्ड ने मनुष्य के जीवन में चिंतन से अधिक महत्त्व अस्तित्व के लिए सतत संघर्ष को दिया. आदर्शवादी जर्मन विचारक आर्थर शौपेनऑवर ने हेगेल के विचारों का विरोध करते हुए यह दावा किया कि अबौद्धिक ही सत्यतः वास्तविक है.

कार्ल मार्क्स ने हेगेल के द्वंद्वात्मक आदर्शवाद को द्वंद्वात्मक पदार्थवाद में विकसित किया. हेगेल के ऐतिहासिक भौतिकवाद की आलोचना करते हुए कार्ल मार्क्स कहता है –

'हेगेल के लिए मानव-मस्तिष्क के चिंतन की प्रक्रिया अर्थात विचार एक स्वतंत्र कर्ता है जबकि मेरे लिए विचार, संसार का सृजन-कर्ता है और भौतिक संसार विचार का बाहरी इन्द्रिय-गम्य रूप मात्र है. इसके विपरीत मेरे लिए – विचार, इसके सिवा और कुछ नहीं कि भौतिक संसार, मानव-मस्तिष्क में प्रतिबिंबित होता है.' जे. एम. ई. मैक्तेगार्ट ने 'स्टडीज़ इन हेगेलियन कोस्मोलोजी' (1901) में यह बताया है कि आध्यात्मवाद की सामाजिक क्रिया तथा राजनीतिक क्रिया में कोई प्रासंगिकता नहीं है. मैक्तेगार्ट के विचार में हेगेल का यह मान लेना अनुचित था कि राज्य का महत्त्व, उसका निर्माण करने वाले व्यक्तियों के कल्याण के साधन-मात्र होने से कहीं अधिक है. मैक्तेगार्ट की दृष्टि में – 'दर्शन, हमारे कार्यों के लिए हमारा बहुत कम मार्गदर्शन कर सकता है.'

1.5 हेगेल के परवर्ती आदर्शवादी विचार तथा विचारक

1.5.1 फ्रेडरिक विल्हेम जोसेफ़ फौन शेलिंग

फ्रेडरिक विल्हेम जोसेफ़ फौन शेलिंग (1775-1854) एक आदर्शवादी जर्मन दार्शनिक था. वह कांट, फिख्ते तथा स्पिनोज़ा का विद्यार्थी रहा था. हेगेल तथा होल्डरलिन उसके समकालीन थे. शेलिंग की प्रमुख रचनाएँ हैं –

'आइडियाज़ फ़ॉर ए फ़िलोसोफ़ी ऑफ़ नेचर', 'दि सोल ऑफ़ दि वर्ड', 'सिस्टम ऑफ़ ट्रांसडेंटल आइडियलिज्म'.

शेलिंग संसार को बुद्धि-प्रधान समझता है और वह संसार के इतिहास को तर्क-संगत मानता है और हेगेल के नकारात्मक तर्कवाद का विरोध करता है. शेलिंग अंतर्ज्ञान को आनुभविक ज्ञान से श्रेष्ठ मानता है. वह संसार को एक कलात्मक रचना मानता है. मनुष्य का लक्ष्य भी कला की रचना करना ही मानता है. शेलिंग की दृष्टि में कला में सभी प्रकार के द्वैत आपस में सामंजस्य कर लेते हैं.

1.5.2 ज्ञान-मीमांसक आदर्शवाद

ज्ञान-मीमांसक आदर्शवाद के प्रस्तावकों में ब्रांड ब्लान्शार्द का नाम प्रमुख है.

1.5.3 वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद

वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद में अनुभव की वास्तविकता, मस्तिष्क द्वारा पदार्थ विषयक अनुभव तथा उसके विषय में अनुभवातीत अनुभूति, दोनों का ही सम्मिश्रण होती है. वस्तुनिष्ठ आदर्शवादी विचारकों में थॉमस हिल ग्रीन, जोसिया रोयस, बेनेदेतो क्रोसे तथा चार्ल्स सांडर्स पाइर्स प्रमुख हैं

1.5.4 लार्ड ऐक्टन (1834-1902)

ब्रिटिश आदर्शवादी विचारक, इतिहासकार, लार्ड ऐक्टन इतिहासकारों को सलाह देते हुए कहता है –

'नैतिक विज्ञान में पूर्वाग्रह बेईमानी है. एक इतिहासकार को अपनी जीवन-पद्धति के लिए अहम मूल्यों के प्रलोभनों-प्रभावों के विरुद्ध लड़ना होगा. उसे अपने देश, अपने वर्ग, अपने चर्च, अपने विद्यालय, अपने दल, प्रतिभावानों की सत्ता, मित्रों की व्याकुलता, इन सबके प्रलोभनों-प्रभावों के विरुद्ध लड़ना होगा. और इन प्रलोभनों-प्रभावों में जो भी उसके लिए सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण होंगे, वही उसके लिए सबसे अधिक खतरनाक होंगे. जो भी इतिहासकार इन प्रलोभनों-प्रभावों से ख़ुद को मुक्त नहीं करता वह उस ज्यूरी-सदस्य के समान होता है जो कि अपनी पसंद-नापसंद के आधार पर अपना वोट डालता है.

किसी वस्तु अथवा किसी व्यक्ति पर न्याय करते समय (अथवा अपनी राय बनाते समय) नीति का स्थान - सिद्धांत, राजनीति और राष्ट्रीयता से पहले आता है. किसी भी वस्तु, किसी भी व्यक्ति अथवा किसी भी घटना पर अपना निर्णय देते समय धार्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक मापदंड के शास्त्रसम्मत आधार के अनुसार नहीं करो, बल्कि उत्कृष्टता, ईमानदारी और अंतःकरण के आदेश के अनुसार उसका निर्णय करो. अंतःकरण को व्यवस्था तथा सफलता, इन दोनों से ऊपर रखो.

1.6 वास्तविक आदर्शवाद

वास्तविक आदर्शवाद का विकास गिवोनी जेन्टील ने किया था. वास्तविक आदर्शवाद में वास्तविकता को चिंतन की सतत प्रक्रिया बताया गया है. इसमें प्रत्येक मानव-कर्म को मानव-विचार के रूप में वर्गीकृत किया गया है क्योंकि मनुष्य का कोई भी कार्य उसके होने से पहले उसके बारे में किए गए विचार करने के परिणामस्वरुप होता है. गिवोनी जेन्टील का यह मानना है कि विचार की अवधारणा का ही वास्तविक अस्तित्व होता है और इसको चिंतन की क्रिया से परिभाषित किया जा सकता है. गिवोनी जेन्टील फ़ासीवाद का प्रबल समर्थक था. उसे फ़ासीवाद का दार्शनिक कहा जाता है. इस दर्शन में व्यक्ति का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, वह केवल समाज का एक अभिन्न अंग है. एक फ़ासीवादी राज्य में सभी नागरिक अपने नेता के प्रति समर्पित होते हैं.

1.6.1 व्यक्तिवादी आदर्शवाद

बोर्डेन पार्कर बोने ने व्यक्तिवादी आदर्शवाद को लोकप्रियता दिलाई थी. इस विचारधारा में व्यक्तियों की स्वायत्त वास्तविकता ही एकमात्र वास्तविकता है और इसे आत्म-चेतना में समझा जा सकता है.

1.7 आधुनिक वैज्ञानिकों के विचारों में आदर्शवाद

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में भौतिकशास्त्र के वैज्ञानिकों के चिंतन में आदर्शवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है. कार्ल पीयर्सन ने 'दि ग्रामर ऑफ़ साइंस' (1900) में इस पर प्रकाश डाला है. क्वांटम फ़िज़िक्स तथा आइन्स्टीन के 'सापेक्षता का सिद्धांत' में आदर्शवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है. ब्रिटिश एस्ट्रोफ़िफज़िसिस्ट आर्थर एडिंगटन 'दि नेचर ऑफ़ थे फिज़िकल वर्ड' में कहता है – 'विश्व की सामग्री, मस्तिष्क की सामग्री है.' सर जेम्स जींस के अनुसार – 'मस्तिष्क को हम पदार्थों के जगत में सहसा प्रवेश करने वाला घुसपैठिया नहीं मान सकते. हमको तो इसे पदार्थ-जगत के सर्जक तथा नियंत्रक के रूप में स्वीकार करना चाहिए.'

1.8 आदर्शवाद के अवसान के कारण

अपने आलेख 'दि डिक्लाइन ऑफ़ आइडियलिज्म' में रिबेका बाईनुइन कहती है –

"आदर्श, आदर्शवादी और आदर्शवाद" ये सभी अवास्तविकता की रंगत से से भरे हुए हैं.

रेबेका बाईनुइन आदर्शवाद के पतन के कारणों में जहाँ डार्विनवादी पदार्थवाद, व्यवहारवाद तथा जातीय नियतिवाद की गणना करती है वहीं वह ख़ुद आदर्शवाद की अपनी अव्यावहारिक और बचकानी परिकल्पनाओं को उसके पतन के

लिए ज़िम्मेदार ठहराती है. प्रत्यक्षवादियों ने आदर्शवाद के अवसान में निर्णायक भूमिका निभाई. नेबूर तथा रैंके ने वैचारिक निष्कर्षों को अस्वीकार किया और इतिहास-लेखन में तथ्यों की महत्ता को स्थापित किया.उन्नीसवीं शताब्दी, आविष्कारों तथा औद्योगिक विकास का युग था, साम्राज्य-विस्तार का युग था, भौतिक समृद्धि का युग था. इस युग में ऋषि-मुनियों वाला आत्मा का परमात्मा से मिलन का प्रवचन निरर्थक हो गया था. इस युग में कांट को एक हठी और सनकी समझा जा रहा था. हेगेल के आदर्शवाद पर चारों ओर से, विशेषकर, कार्ल मार्क्स की ओर से प्रहार हो रहे थे. इस घोर यथार्थवादी युग में आदर्शवाद की बात अब बेमानी हो चुकी थी.

किन्तु आदर्शवादी विचारधारा का कभी जड़ से उन्मूलन नहीं हुआ. हमको टॉलस्टॉय के साहित्य में आदर्शवादी भावना परिलक्षित होती है. 20 वीं शताब्दी में गाँधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व में हमको आदर्शवाद की विजय का उद्घोष सुनाई पड़ता है. आदर्शवाद उस अमर ज्योति के समान है जो मद्धम तो पड़ सकती है किन्तु कभी बुझती नहीं है.

1.9 सारांश

दर्शन के क्षेत्र में आदर्शवाद उन आध्यात्मिक दर्शनों का समूह है जिनमें कि इस विचार पर बल दिया जाता है कि वास्तविकता, जिसको कि मनुष्य जान सकता है, वह मूलतः उसके मस्तिष्क की उपज होती है. भौतिकवाद के विपरीत आदर्शवाद इस बात पर बल देता है कि भौतिक घटनाओं के पीछे मुख्यतः मानव-चेतना उत्तरदायी होती है. आदर्शवाद से हमारा प्रथम परिचय भारतीय वैदिक, चीन के नवकन्फ्यूशियसवादी- व बौद्ध दार्शनिक तथा नव-अफ़लातूनी यूनानी दार्शनिक कराते हैं.

पाश्चात्य अद्वैतवादी आदर्शवादी पदार्थ को नहीं, अपितु चेतना को सभी जीवों का आधार मानते हैं. प्लेटो ने अपने दर्शन में पवित्रता तथा न्याय आदि को मूर्त रूप में देखा था. 18 वीं शताब्दी में यूरोप में जॉर्ज बर्कले ने भौतिकवाद के विरुद्ध संशयवादी तर्क प्रस्तुत कर आदर्शवाद का पुनरुत्थान किया. 19 वीं शताब्दी में जी. जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल, एफ़. डब्लू जे. शेलिंग, आर्थर शौपेनआवर जैसे आदर्शवादियों ने दार्शनिक क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित किया.

इमैनुअल कांट का मत है कि मानव-मस्तिष्क मानवीय अनुभव की संरचना तैयार करता है और विवेक नैतिकता का श्रोत है. कांट का मत 'नैतिक शुद्धता का सिद्धांत' कहा जाता है. अनेकत्ववादी आदर्शवाद का प्रवर्तक गौटफ्राइड लेबनीज़ था.जर्मन दार्शनिक हेगेल ने आदर्शवादी ऐतिहासिक सिद्धांत का विकास किया. हेगेल के अनुसार मानव मस्तिष्क अपने विवेक द्वारा स्वातंत्र्य की अधिकाधिक अनुभूति की और अग्रसर होता है और अंततः उसे विश्वात्मा की अनुभूति होती है. मानव को विश्वात्मा की अनुभूति को हेगेल एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखता है.

हेगेल की द्वंद्वात्मक प्रगति और पद्धति अधूरी तथा दोष-पूर्ण थी. उसने मानसिक तत्वों, अर्थात बुद्धि एवं भावना को ऐतिहासिक प्रक्रिया में आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया. कीर्कीगार्ड ने हेगेल के उस दावे की आलोचना की है जिसमे कि उसने वास्तविकता को पूर्णतया समझने की प्रणाली की खोज करने की बात की है .रैंके, हीगेल द्वारा प्रतिपादित इतिहास-दर्शन की कटु आलोचना करता है. उसका कहना है कि हीगेल ने इतिहास में मानव-क्रिया की भूमिका की उपेक्षा की है. कार्ल मार्क्स ने हेगेल के द्वंद्वात्मक आदर्शवाद को द्वंद्वात्मक पदार्थवाद में विकसित किया आदर्शवादी जर्मन दार्शनिक शेलिंग संसार को बुद्धिसंगत -प्रधान समझता है और वह संसार के इतिहास को तर्क- .मानता है और हेगेल के नकारात्मक तर्कवाद का विरोध करता है

ज्ञान-मीमांसक आदर्शवाद के प्रस्तावकों में ब्रांड ब्लान्शार्द का नाम प्रमुख है.वस्तुनिष्ठ आदर्शवादी विचारकों में थॉमस हिल ग्रीन, जोसिया रोयस, बेनेदेतो क्रोसे तथा चार्ल्स सांडर्स पाइर्स प्रमुख हैं.ब्रिटिश आदर्शवादी विचारक, इतिहासकार, लार्ड ऐक्टन 'नैतिक विज्ञान में पूर्वाग्रह को बेईमानी मानता है. उसका दृष्टिकोण है कि एक इतिहासकार को किसी भी वस्तु, किसी भी व्यक्ति अथवा किसी भी घटना पर अपना निर्णय देते समय धार्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक मापदंड के शास्त्रसम्मत आधार का नहीं, अपितु अंतःकरण के आदेश का पालन करना चाहिए. वास्तविक आदर्शवाद का विकास गिवोनी जेन्टील ने किया था. उसे फ़ासीवाद का दार्शनिक कहा जाता है. बोर्डेन पार्कर बोने ने व्यक्तिवादी आदर्शवाद को लोकप्रियता दिलाई थी.

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में भौतिकशास्त्र के वैज्ञानिकों के चिंतन में आदर्शवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है. क्वांटम फ़िज़िक्स तथा आइन्स्टीन के 'सापेक्षता का सिद्धांत' में आदर्शवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है. 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही आदर्शवादी विचारधारा का अवसान होने लगा था. आदर्शवाद के पतन के कारणों में जहाँ डार्विनवादी पदार्थवाद, व्यवहारवाद तथा जातीय नियतिवाद का विकास को गिना जा सकता है वहीं ख़ुद आदर्शवाद की अपनी अव्यावहारिक और बचकानी परिकल्पनाएं अपने पतन के लिए ज़िम्मेदार थीं. नेबूर तथा रैके जैसे प्रत्यक्षवादियों ने आदर्शवाद के अवसान में निर्णायक भूमिका निभाई थी. उन्नीसवीं शताब्दी, आविष्कारों तथा औद्योगिक विकास का युग था, साम्राज्य-विस्तार का युग था, भौतिक समृद्धि का युग था. इस युग में आदर्शवाद की बात बेमानी हो गयी थी. किन्तु आदर्शवादी विचारधारा का कभी जड़ से उन्मूलन नहीं हुआ. हमको टॉलस्टॉय के साहित्य में तथा गाँधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व में आदर्शवाद की विजय का उद्घोष सुनाई पड़ता है.

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

नव-अफ़लातूनीवाद – यूनानी दार्शनिक प्लेटो के दर्शन को पुनर्स्थापित करने वाले दार्शनिकों का मत
फ़ासीवाद – अधिनायक-तंत्र का समर्थन करने वाला मत
नव-कन्फ्यूशियसवाद – चीन के प्रसिद्द दार्शनिक कन्फ्यूशियस के दर्शन को पुनर्स्थापित करने वाला मत
रिगौरिज्म – कठोरतावाद
शाश्वत – हमेशा से चला आ रहा
डिक्लाइन – पतन अथवा अवसान

1.11 अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए

1. भारतीय दर्शन में आदर्शवादी विचारधारा.
2. इमानुअल कांट का नैतिक शुद्धता का सिद्धांत
3. लार्ड ऐक्टन की आदर्शवादी विचारधारा

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 1.3.5
2. देखिए 1.4.2
3. देखिए 1.7.4

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

कालिंगवुड, आर0 जी0 - दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री, लन्दन, 1978

गूच, जी0 पी0 - दि हिस्ट्री एण्ड दि हिस्टोरियन्स ऑफ़ दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी, लन्दन, 1913

श्रीधरन, ई0 - ए टैक्स्ट बुक ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफ़ी, नई दिल्ली, 2013

कार, ई0 एच0 (अनुवादकः चक्रधर, अशोक) - 'इतिहास क्या है', नई दिल्ली, 1993

थापर, रोमिला (सम्पादक) - 'इतिहास की पुनर्व्याख्या' नई दिल्ली, 1991

बुद्धप्रकाश - 'इतिहास दर्शन' इलाहाबाद, 1962

वर्मा, लालबहादुर - 'इतिहास के बारे में', इलाहाबाद, 2000

शर्मा, रामविलास - 'इतिहास दर्शन', नई दिल्ली, 1995

टोश, जॉन – 'दि पर्सूट ऑफ़ हिस्ट्री: एम्स, मेथड्स एंड न्यू डायरेक्शंस इन दि स्टडी ऑफ़ मॉडर्न हिस्ट्री' हार्लो, 1999

रॉय एम, टोलेफ्सन –'आईडियलिज्म' ('हैण्डबुक ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री: कन्सेप्ट्स एंड इश्यूज़, संपादक: ड्यूनर, जोसफ, न्यूयॉर्क, 1967)

लाल, के. बी. – 'पाश्चात्य दर्शन, वाराणसी, 1990,

ल्यूसे ए. ए. तथा जेसप टी. ई. (संपादक) –'दि वर्क्स ऑफ़ जॉर्ज बर्कले', लन्दन, 1957

कॉलिंगवुड आर. जी. – 'दि मैप ऑफ़ नॉलिज', ऑक्सफ़ोर्ड, 1924

हेगेल, जी. डब्लू. एफ़ – साइंस ऑफ़ लॉजिक' (अंग्रेजी अनुवाद – जॉर्ज दी जियोवैनी), कैंब्रिज, 2010

कांट इमानुअल –'क्रिटिक ऑफ़ प्योर रीज़न' (अंग्रेजी अनुवाद – पॉल ग्युलेर तथा एलेन डब्लू. वुड), कैंब्रिज, 1998

सिंह, परमानन्द – 'इतिहास दर्शन' , दिल्ली, 2014

चौबे, झारखंड – 'इतिहास दर्शन', वाराणसी, 2015

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. हेगेल के आदर्शवादी ऐतिहासिक सिद्धांत का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए.

इकाई दो : आधुनिक इतिहास लेखन- प्रत्यक्षवाद

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अनुभवाश्रित ज्ञान की महत्ता

2.3.1 प्रत्यक्षवादी विचारधारा का प्रारंभिक विकास

2.3.2 इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम

2.4 कॉम्ते द्वारा प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत का विकास

2.4.1 कॉम्ते की विचारधारा पर पूर्व-विचारकों का प्रभाव

2.4.2 कॉम्ते का प्रत्यक्षवादी चिंतन

2.4.3 कॉम्ते द्वारा इतिहास की व्याख्या

2.4.4 कॉम्ते की प्रत्यक्षवादी अवधारणा की आलोचना

2.4.5 कॉम्ते के चिंतन का परवर्ती विचारकों पर प्रभाव

2.5 प्रमुख प्रत्यक्षवादी इतिहासकार

2.5.1 नेबूर से पूर्व के इतिहास-लेखन के दोष

2.5.2 बार्टहोल्ड नेबूर (1776-1831)

2.6 इतिहासकार लियोपोल्ड वान रैंके

2.6.1 रैंके की रचनाएं

2.6.2 इतिहास-लेखन में तटस्थता का महत्त्व

2.6.3 रैंके का इतिहास-दर्शन

2.6.4 समय के साथ-साथ इतिहास-दृष्टि तथा इतिहास-लेखन की तकनीक में परिवर्तन

2.6.5 रैंके के इतिहास ग्रंथों के गुण एवं दोष

2.6.5.1 प्राथमिक स्रोतों पर आधारित वस्तुनिष्ठ इतिहास

2.6.5.2 राजनीतिक इतिहास को महत्व

2.6.5.3 राजनीतिक अनुदारता

2.6.5.4 इतिहास में व्यक्तित्व की भूमिका

2.6.5.5 सार्वभौमिक इतिहास

2.6.5.6 रैंके की इतिहास विषयक अध्ययन-गोष्ठी

2.6.6 इतिहासकार के रूप में रैंके का आकलन

2.7 प्रत्यक्षवाद का आकलन

2.8 सारांश

2.8.1 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रत्यक्षवाद वह अवधारणा है जिसमें ज्ञान और विचार, निगमन की वैज्ञानिक प्रणाली पर निर्भर करते हैं. प्रत्यक्षवाद के अनुसार – 'मनुष्य का ज्ञान उसके अनुभव तक सीमित है.'प्राचीन दर्शन में प्रत्यक्षवादी विचारधारा की झलक देखी जा सकती हैयूनानी ,अतिवादी दार्शनिक सेक्सटस एम्पायरिकस ,कुतर्की दार्शनिक प्रोटागोरस . वीं शताब्दी 17 चीनी इतिहास लेखन ,दार्शनिक अरस्तू ,यूनानी इतिहासकार पोलिबियस ,इतिहासकार थ्यूसीडाइडीस ,में पाइरे बेले नामरूपवादी विलियम ओकहैम तथा के जर्मन विचारक जॉर्ज लिक्तेनबर्ग ने भी वीं शताब्दी 18 .प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण अपनाया था

फ्रांसीसी दार्शनिक अगस्ते कॉम्ते ने 'प्रैक्सियोलोजी अनुशासन' (मानव-क्रिया का निगमनात्मक अध्ययन) की स्थापना तथा प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत का विकास किया. उसने विज्ञान पर आधारित एक नए सामाजिक सिद्धांत की आवश्यकता पर बल दिया. कॉम्ते यह मानता है कि – विश्व-विषयक ज्ञान का स्रोत, अवलोकन है. कॉम्ते आध्यात्मवाद को एक आधारहीन अटकलबाज़ी समझता है. कॉम्ते ने इस बात पर बल दिया है कि इन्द्रिय-ज्ञान से परे कुछ भी वास्तविक नहीं है.

नव-प्रत्यक्षवादियों तथा उत्तर-व्यवहारवादियों ने कॉम्ते की प्रत्यक्षवादी व्याख्या को अस्वीकार कर दिया. कॉम्ते के आलोचक उसे 'मुक्त-व्यापार सिद्धांत' का पोषक मानते हैं जिसमें कि नैतिकता का कोई स्थान नहीं होता है.कॉम्ते का प्रत्यक्षवाद नितांत अव्यावहारिक नहीं है. जे. एस. मिल. रिचर्ड काँग्रीव, अर्न्स्ट मैक तथा रिचर्ड अवेनारियंस तथा हर्बर्ट स्पेंसर के विचारों पर कॉम्ते के चिंतन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है.

कॉम्ते ने अपने प्रत्यक्षवाद के माध्यम से हमको समाज, राजनीति तथा इतिहास का अध्ययन करने की एक नई दिशा, एक नई विधि दी है, एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है. प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों में नेबूर तथा रैंके प्रमुख हैं. नेबूर की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' (1811-12) से आधुनिक ऐतिहासिक प्रणाली का जन्म हुआ है.वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन के जनक, मूल्यों से मुक्त वस्तुनिष्ठता के मसीहा तथा आलोचनात्मक इतिहास-विज्ञान के संस्थापक - लियोपोल्ड वान रैंके ने इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम का विकास किया. रैंके ने अपने समकालीन इतिहासकारों की तुलना में विविध ऐतिहासिक स्रोतों का अत्यधिक विस्तृत अध्ययन किया. रैंके ने अभिलेखीय शोध हेतु अथक परिश्रम किया था. अपने शोध में उसने गौण स्रोतों को भी महत्व दिया था. रैंके ने 'हिस्ट्री ऑफ़ दि पोप्स, देयर चर्च एण्ड देयर स्टेट इन दि सिक्सटीन्थ एण्ड सेवेन्टीन्थ सेन्चुरीज़' की रचना की. जी. पी. गूच ने इस ग्रंथ में रोमन कैथोलिकों एवं प्रोटेस्टैन्टों के प्रति पूर्णरूपेण तटस्थ भाव रखने के लिए रैंके की भूरि-भूरि प्रशंसा की है.

रैंके तथ्यों की प्रस्तुति में भले ही तटस्थता का दावा करता हो किन्तु उसके इतिहास लेखन में उसकी अपनी पसन्द और नापसन्द की झलक मिल जाती है. रैंके ने 'दि ओरिजिन्स ऑफ़ दि वार ऑफ़ दि रिवोल्यूशन' में फ्रांसीसी क्रान्ति के 'स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व ' की भावना की भर्त्सना की है. वह प्रशा में सुदृढ़ राजतन्त्र का समर्थक है. रैंके द्वारा सम्पादित इतिहास सम्बन्धित पत्रिका - 'हिस्टोरिक पोलिट्ज़े ज़ीट्शरिफ़्ट' का उद्देश्य - इतिहास लेखन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना और ऐतिहासिक शोध की एक निश्चित एवं यथार्थवादी प्रणाली का प्रतिनिधित्व करना था.रैंके इतिहास लेखन में व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ता है. सार्वभौमिक इतिहास के पक्षधर रैंके ने यूरोप की सभी महा-शक्तियों का पृथक-पृथक इतिहास लिखा.

रैंके दृष्टि में अनुमान का इतिहास लेखन में कोई स्थान नहीं है और अनुमान व निष्कर्ष का अधिकार केवल पाठक का है. उसका मानना है कि इतिहासकारों को सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने की प्रवृत्ति से बचकर रहना चाहिए.रैंके का यह मानना है कि ऐतिहासिक युगों को पूर्व-निर्धारित आधुनिक मूल्यों एवं आदर्शों की कसौटी पर नहीं परखा जाना चाहिए बल्कि आनुभविक साक्ष्यों पर आधारित इतिहास के परिप्रेक्ष्य में उनका आकलन किया जाना चाहिए.रैंके इतिहास में महान विभूतियों की भूमिका को महत्वपूर्ण एवं निर्णायक मानता है. चूंकि रैंके राजनीतिक शक्ति को इतिहास का प्रमुख प्रतिनिधि मानता है, इसलिए उसने राजनीतिक इतिहास-लेखन को ही महत्त्व दिया है और इतिहास के आर्थिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक पहलू की उपेक्षा की है.

रैंके तथा उसके अनुयायियों ने समीक्षा एवं ऐतिहासिक प्रणाली के नियम स्थापित किए. रैंके इतिहास के विज्ञान का सूत्रधार है. उसके लेखन में जातीय अथवा धार्मिक पूर्वाग्रहों का कोई स्थान नहीं है. पूर्ण तटस्थता अपनाते हुए और पूर्वाग्रहों को नकारते हुए उसने तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने की एक ईमानदार कोशिश की है. यद्यपि

प्रत्यक्षवाद में अन्वेषकों को मानवीय भावनाओं को परे रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है किन्तु अध्ययन तथा अन्वेषण के दौरान ऐसा न होने देने की कोई ज़िम्मेदारी नहीं ले सकता .एक ओर यथार्थवाद और प्रत्यक्षवाद का अपना महत्व है तो दूसरी ओर आदर्शवाद का अपना महत्व है किन्तु मानव-कल्याण इन दोनों के समन्वय और पारस्परिक सामंजस्य में है जिसको कि हम आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद कहते हैं.

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य – प्रत्यक्षवादी विचारधारा के मूलभूत सिद्धांतों, अवधारणाओं तथा उसके विकास के विभिन्न चरणों से और उसके गुण एवं उसके दोषों से, आपको परिचित कराना है. इस इकाई का अध्ययन कर आप –

1. प्रत्यक्षवाद के मूलभूत सिद्धांतों तथा अवधारणाओं से परिचित हो सकेंगे.
2. अगस्ते कॉम्ते द्वारा प्रत्यक्षवाद की स्थापना उसके समाज-दर्शन तथा इतिहास-दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे.
3. कॉम्ते के विचारों का परवर्ती विचारकों पर प्रभाव के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
4. समीक्षकों द्वारा कॉम्ते के प्रत्यक्षवादी विचारों की आलोचना तथा उसके आकलन से अवगत हो सकेंगे.
5. इतिहास-लेखन में प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण के विकास में नेबूर तथा रैंके के योगदान से परिचित हो सकेंगे.
6. रैंके के इतिहास-दर्शन में निश्चयात्मक अभिगम की महत्ता से अवगत हो सकेंगे.
7. प्रत्यक्षवादी इतिहासकार की दृष्टि में तटस्थता तथा वस्तुनिष्ठता के महत्त्व को समझ सकेंगे.
8. एक इतिहासकार के रूप में रैंके का आकलन करने में सक्षम हो सकेंगे.
9. प्रत्यक्षवाद के गुण-दोषों तथा वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में उसकी उपयोगिता के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे.

2.3 अनुभवाश्रित ज्ञान की महत्ता

2.3.1 प्रत्यक्षवादी विचारधारा का प्रारंभिक विकास

आधुनिक इतिहास लेखन के अंतर्गत बुद्धिवाद, रूमानीवाद तथा प्रत्यक्षवाद का विकास हुआ. बुद्धिवाद के दार्शनिक चिंतन और रूमानीवाद की कल्पना की ऊंची उड़ान को इतिहास-लेखन के क्षेत्र में प्रायः अस्वीकार कर दिया गया और प्रत्यक्षवाद, इतिहास-लेखन का प्रमुख स्वर बन गया. प्रत्यक्षवाद के अनुसार –'मनुष्य का ज्ञान उसके अनुभव तक सीमित है.'

प्रत्यक्षवाद वह अवधारणा है जिसमें ज्ञान और विचार, निगमन की वैज्ञानिक प्रणाली पर निर्भर करते हैं. प्रत्यक्षवादी अपने निष्कर्षों में आत्मपरक दृष्टिकोण को नहीं अपनाता और अपने निर्णय के ऊपर भावुकता के बादल भी नहीं छाने देता.हर्बर्ट फ़ीगल के अनुसार – प्रत्यक्षवाद, पाश्चात्य दर्शन की वह विचारधारा है जिसमें किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना आदि का ज्ञान प्राप्त करने के श्रोत के रूप में आध्यात्मिक चिंतन अथवा अनुमान को नकारा जाता है और केवल अनुभव-जन्य ज्ञान को स्वीकार किया जाता है.

प्राचीन दर्शन में प्रत्यक्षवादी विचारधारा की झलक देखी जा सकती है. 5 वीं शताब्दी ईसा पूर्व के कुतर्की दार्शनिक प्रोटागोरस के विचारों में एक सीमा तक इस आधुनिक प्रत्यक्षवादी विचारधारा के तत्व मिलते हैं. अतिवादी दार्शनिक सेक्सटस एम्पायरिकस को भी प्रत्यक्षवाद के अग्रदूत रूप में देखा जा सकता है. 17 वीं शताब्दी में पाइरे बेले

ने प्रत्यक्षवादी विचारधारा को पुनर्जीवित किया था. मध्यकालीन नामरूपवादी ओकहैम के विलियम के विचारों में भी प्रत्यक्षवादी विचारधारा से साम्य देखा जा सकता है. 18 वीं शताब्दी के जर्मन विचारक जॉर्ज लिक्तेनबर्ग ने आध्यात्म-विरोधी प्रत्यक्षवाद की स्थापना की थी. 18 वीं शताब्दी में फ्रांसीसी ज्ञानोदय में, विवेक के महत्त्व पर बहुत बल दिया गया था और 18 वीं शताब्दी के ब्रिटिश अनुभववादियों – ह्यूम तथा बिशप जॉर्ज बर्कले, ने ज्ञान में अनुभव की महत्ता को दर्शाया था.

2.3.2 इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम

यूनानी इतिहासकार थ्यूसीडाइडीस (456-396 ईसा पूर्व) घटनाओं की तह तक जाकर तथ्यों को एकत्र करता था और वह तथ्यों को इतिहास की रीढ़ की हड्डी मानता था. यूनानी इतिहासकार पोलिबियस ने सत्य को इतिहास की आँख माना था, वह कहता था कि यदि इतिहास में से सत्य निकाल लिया जाए तो वह अंधा हो जाएगा. चीनी इतिहास लेखन में भी तथ्यों की यथार्थता पर विशेष बल दिया गया है. उन्नीसवीं शताब्दी में इतिहास लेखन के लिए प्रामाणिक तथ्यों की आवश्यकता पर ग्रैण्ड ग्राउण्ड ने लिखा था – 'मुझे तथ्य चाहिए और जीवन में हमको केवल तथ्यों की आवश्यकता है.'

2.4 कॉम्ते द्वारा प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत का विकास

2.4.1 कॉम्ते की विचारधारा पर पूर्व-विचारकों का प्रभाव

इसीदोर मारी औगास्ते फ्रांकोइस ज़ेवियर कॉम्ते (1798-1857) वह फ्रांसीसी दार्शनिक था जिसने कि 'प्रैक्सियोलोजी अनुशासन' (मानव-क्रिया का निगमनात्मक अध्ययन) की स्थापना तथा प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत का विकास किया. प्रायः उसे प्रथम विज्ञान-दार्शनिक कहा जाता है.आदर्शवादी समाजशास्त्री हेनरी सेंट साइमन के प्रभाव से कॉम्ते ने फ्रांसीसी क्रान्ति की सामाजिक व्याकुलता का उपचार करने के प्रयास में निश्चयात्मक दर्शन का विकास किया. उसने विज्ञान पर आधारित एक नए सामाजिक सिद्धांत की आवश्यकता पर बल दिया.अगस्ते कॉम्ते यह मानता है कि –'विश्व-विषयक ज्ञान का स्रोत, अवलोकन है और विज्ञान का उद्देश्य, भविष्यवाणी है.'

इमेनुअल कांट से अनुप्रेरित होकर उसका विश्वास था कि घटनाओं को अनुक्रम के नियमों में सम्मिलित करके उनकी व्याख्या की जा सकती है. कॉम्ते आध्यात्मवाद को एक आधारहीन अटकलबाज़ी समझता था क्योंकि उसमें कल्पना पर अवलोकन का नियंत्रण नहीं होता था. वैज्ञानिकों ने सावधानी के साथ तटस्थ होकर बार-बार अवलोकन कर सामान्य नियमों की खोज की. इस प्रकार के अवलोकनों को व्यवस्थित कर उनके आधार पर सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया गया और फिर उनके द्वारा सामग्री की व्याख्या की गयी. कॉम्ते की विचारधारा पर, विशेषकर उसकी समाजवादी विचारधारा पर, ज्ञानोदय काल के डेनिस दिदरो तथा जीन डी' अलेम्बर्ट के विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा था. फ्रांसीसी समाजवाद के संस्थापक – क्लौड हेनरी, कॉम्ते डी सेंट साइमन के विचारों से भी कॉम्ते बहुत प्रभावित हुआ था. अपने प्रारंभिक जीवन में वह आदर्शवादी समाजशास्त्री - कॉम्ते डी सेंट साइमन का शिष्य भी रहा था और उसी से उसने 'प्रत्यक्षवाद' का नाम ग्रहण किया था.

2.4.2 कॉम्ते का प्रत्यक्षवादी चिंतन

प्रत्यक्षवाद वह सिद्धांत है जो केवल वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त ज्ञान को ही विश्वसनीय तथा प्रामाणिक मानता है. कॉम्ते का कहना है –'कोई भी वस्तु सकारात्मक तभी हो सकती है जब उसे इन्द्रिय ज्ञान के द्वारा सिद्ध किया जा सके, अर्थात् उसे देखा, सुना, चखा, सूंघा अथवा स्पर्श द्वारा उसका अनुभव किया जा सके.'प्रत्यक्षवाद का प्रयोग यूनानी दर्शन में भी मिलता है. अरस्तू ने वैज्ञानिक पद्धति के आधार के रूप में प्रत्यक्षवाद के विचार का पोषण किया था. कॉम्ते ने 'कोर्स ऑफ़ पॉज़िटिव फ़िलोसोफ़ी' (1842) तथा 'सिस्टम ऑफ़ पॉज़िटिव पोलिटी' (1851) में प्रत्यक्षवाद की व्याख्या की है. कॉम्ते ने मानवीय ज्ञान की प्रत्येक शाखा को अपनी प्रौढ़ावस्था तक पहुँचने के तीन चरण बताये हैं –

पहले चरण में मनुष्य समस्त घटनाओं की व्याख्या अलौकिक शक्तियों (दैविक शक्तियों) के सन्दर्भ में करता है. दूसरे चरण में मनुष्य समस्त घटनाओं की व्याख्या अमूर्त तत्वों और अनुमान के आधार पर करता है.तीसरे चरण में मनुष्य यह अनुभव करने लगता है कि प्रकृति की समस्त घटनाएं प्राकृतिक नियमों से संचालित होती हैं. इस अवस्था में मानव-मस्तिष्क सृष्टि की रचना के गूढ़ रहस्यों में उलझने के स्थान पर जगत की कार्य-प्रणाली, नियम और तर्क, बुद्धि आदि की व्यावहारिक बातें सोचता है.

2.4.3 कॉम्ते द्वारा इतिहास की व्याख्या

कॉम्ते का विश्वास है कि जितनी शीघ्रता से धार्मिक तथा अभि-भौतिक विश्वासों का अंत होगा, उतनी ही शीघ्रता से मनुष्य वैज्ञानिक –चिंतन को अपना लेगा. इसी आधार पर कॉम्ते ने इतिहास की व्याख्या कर के प्रत्यक्षवाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया है. कॉम्ते ने इसी बात पर बल दिया है कि इन्द्रिय-ज्ञान से परे कुछ भी वास्तविक नहीं है. किसी व्यक्ति, किसी वस्तु अथवा किसी घटना से सम्बद्ध एक व्यक्ति के आनुभविक ज्ञान को दूसरे-तीसरे व्यक्ति के आनुभविक ज्ञान से मिलकर उसकी पुष्टि की जाती है, उसका सत्यापन किया जाता है, उसे तर्क की कसौटी पर परखा जाता है फिर उसके बाद ही उस विषय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है. इसके पश्चात् प्रत्यक्षवाद का विकास कई चरणों में हुआ. इस विचारधारा को कई नामों से जाना गया. जैसे कि – अनुभववादी आलोचन, तार्किक प्रत्यक्षवाद तथा तार्किक अनुभववाद. अंततः 20 वीं शताब्दी के मध्य में विश्लेषणात्मक दर्शन की पूर्व-विद्यमान परंपरा में इसका विलय हो गया.

एक समाजशास्त्री के रूप में कॉम्ते ने इतिहास के अध्ययन के लिए प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण अपनाया. उसका यह मानना है कि – 'एक समय ऐसा आएगा जब इतिहासकार ऐतिहासिक विकास के नियमों पर से पड़ा हुआ पर्दा उठाने में सक्षम होंगे.'कॉम्ते का अभिमत है – 'समग्र ब्रह्माण्ड अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित, व्यवस्थित, नियंत्रित तथा निर्देशित होता है. और यदि हमको इन नियमों को समझना है तो तात्विक अथवा धार्मिक आधारों पर नहीं अपितु अवलोकन, परीक्षण, निरीक्षण तथा वर्गीकरण की वैज्ञानिक प्रणालियों को अपनाकर समझना होगा.'निरीक्षण, परीक्षण और वर्गीकरण की वैज्ञानिक विधियों द्वारा निष्कर्ष निकलना, प्रत्यक्षवाद का प्रमुख गुण है. कॉम्ते का प्रत्यक्षवादी दर्शन पूर्णतया विज्ञान पर आधारित है.

एक विज्ञान के रूप में इतिहास में ऐतिहासिक विकास से सम्बद्ध सामान्य नियम बनाए जाना संभव नहीं था इसलिए प्रत्यक्षवादियों ने अन्य विषयों, यथा अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान जैसे विषयों की वैज्ञानिक

प्रणालियों को इतिहास में अपना कर ऐतिहासिक विकास की व्याख्या करने के लिए सामान्यीकरण के नियन बनाए.कॉम्ते के सामाजिक सिद्धांतों का परिणाम उसकी की अवधारणा में दिखाई पड़ा 'रिलीजन ऑफ़ ह्यूमैनिटी' जिसको कि अनीश्वरवादी मानवतावादनिरपेक्-धार्मिक मानवतावाद तथा धर्म ,ष मानवतावाद के पूर्वबोध के रूप में - ' .देखा जा सकता हैएलट्रूइज़्म) 'परोपकारिता.संभवतः कॉम्ते की ही देन है ,का शब्द (

2.4.4 कॉम्ते की प्रत्यक्षवादी अवधारणा की आलोचना

नव-प्रत्यक्षवादियों अथवा तार्किक प्रत्यक्षवादियों – मैक्स वेबर, विएना सर्किल, टी. डी. वैल्डन, मोरित्ज़ श्लिक, लुडविख वित्ज़ेस्ताइन तथा ए. जे. एयर आदि ने कॉम्ते की प्रत्यक्षवादी व्याख्या को अस्वीकार कर दिया. मैक्स वेबर ने विज्ञान, शैक्षिक ज्ञान तथा प्रत्यक्षवाद की सीमाएं बताते हुए कहा है - 'विज्ञान हमको न तो यह बताता है कि हमको क्या करना चाहिए और न ही यह बताता है कि हमारा जीने का ढंग कैसा होना चाहिए. और शैक्षिक ज्ञान भी हमारे समक्ष सृष्टि के अभिप्राय की व्याख्या करने में असमर्थ है. इसी प्रकार राजनीति-दर्शन की व्याख्या भी अनुभवात्मक दृष्टि से नहीं की जा सकती क्योंकि राजनीति के विषय में प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव अलग-अलग होता है.'उत्तर-व्यवहारवादियों ने भी प्रत्यक्षवाद के माध्यम से राजनीति-विज्ञान की व्याख्या किया जाना असंभव बताया है.कॉम्ते के आलोचक उसे 'मुक्त-व्यापार सिद्धांत' का पोषक मानते हैं इसमें नैतिकता का कोई स्थान नहीं होता है.

2.4.5 कॉम्ते के चिंतन का परवर्ती विचारकों पर प्रभाव

कॉम्ते का प्रत्यक्षवाद नितांत अव्यावहारिक नहीं है. कॉम्ते के चिंतन ने कार्ल मार्क्सजॉन स्टुअर्ट मिल तथा , जॉर्ज इलियट जैसे सामाजिक चिंतकों को अत्यधिकप्रभावित किया. रिचर्ड कॉंग्रीव, अन्र्स्ट मैक तथा रिचर्ड अवेनारियंस के विचारों पर कॉम्ते के चिंतन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है. वैज्ञानिक सत्य के एकीकरण के लक्ष्य में हर्बर्ट स्पेंसर ने कॉम्ते का अनुसरण किया. कॉम्ते की ही तरह स्पेंसर भी प्राकृतिक नियमों की सार्वभौमिकता के प्रति प्रतिबद्ध था जिसके अनुसार प्रकृति के नियम बिना किसी अपवाद के जैविक क्षेत्र पर भी उतने लागू होते हैं जितने कि अजीव क्षेत्र पर और मानव के मन पर भी उतने ही लागू होते हैं जितने कि शेष सृष्टि पर. उसकी समाजशास्त्र तथा सामाजिक विकासवाद की अवधारणानाओं ने प्रारंभिक सामाजिक सिद्धान्ती तथा प्राणिविज्ञान शास्त्री जैसे कि हैरियेट मार्तिन्यू तथा हर्बर्ट स्पेंसर का मार्ग प्रशस्त किया और एमिली दुरखीम के व्यावहारिक व वस्तुनिष्ठ सामाजिक शोध के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कीं.कॉम्ते प्रत्यक्षवाद का जनक है और उसने अपने प्रत्यक्षवाद के माध्यम से हमको समाजएक नया दृष्टिकोण प्रदान ,एक नई विधि दी है ,राजनीति तथा इतिहास का अध्ययन करने की एक नई दिशा , .किया है

2.5 प्रमुख प्रत्यक्षवादी इतिहासकार

2.5.1 नेबूर से पूर्व के इतिहास-लेखन के दोष

मध्यकाल तक इतिहास को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में मान्यता नहीं मिली थी. इतिहास को साहित्य अथवा दर्शन की एक शाखा ही माना जाता था. सत्रहवीं शताब्दी की वैज्ञानिक क्रान्ति ने इतिहास में आलोचनात्मक दृष्टिकोण का समावेश किया गया किन्तु इतिहास लेखन में अभी भी मुख्य रूप से तीन दोष विद्यमान थे -

1. समय के अनुरूप परिवर्तन के प्रति अनभिज्ञता

अठारहवीं शताब्दी तक इतिहासकारों को यह समझ नहीं थी कि समय के साथ हर युग की विशिष्टताएं बदल जाती हैं. वोल्तेयर तथा गिबन के मध्यकालीन इतिहास विषयक आकलन में इस समझ की कमी स्पष्ट दिखाई देती है.

2. प्राथमिक स्रोतों की अनुपलब्धता तथा मान्य प्रणालीगत सिद्धान्तों की अनुपस्थिति

ज्ञानोदय काल में आमतौर पर प्राथमिक स्रोत, शासकों, ड्यूकों और चर्च के आधीन होते थे इस कारण इतिहासकार इतिहास लेखन के लिए प्रायः उपलब्ध सहायक ग्रंथों से ही प्राप्त सामग्री पर निर्भर करते थे. प्राथमिक स्रोतों की उपलब्धता की स्थिति में भी इतिहासकार मान्य प्रणालीगत सिद्धान्तों की अनुपस्थिति के कारण उनका समुचित उपयोग करने में असमर्थ होते थे.

3. इतिहास के अध्ययन में संगठन एवं वर्गीकरण की कमी

सामान्यतः राजसत्ता के अपनी पसन्द के विद्वानों को ही इतिहास लेखन का दायित्व सौंपा जाता था. प्रमुख शैक्षिक संस्थाओं में इतिहास को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में मान्यता नहीं मिली थी.

2.5.2 बार्टहोल्ड नेबूर (1776-1831)

नेबूर ने इतिहास को गौण विषय से एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी. उसकी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' (1811-12) से आधुनिक ऐतिहासिक प्रणाली का जन्म माना जाता है. नेबूर ने प्राचीन रोम की राजनीतिक, विधि-सम्मत और आर्थिक संस्थाओं से सम्बद्ध प्राथमिक स्रोतों का गहन अध्ययन किया और फिर उनका आलोचनात्मक परीक्षण करने के बाद ही उसने 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' की रचना की. नेबूर इतिहासकार से यह अपेक्षा करता है कि वह ईश्वर के समक्ष सर उठाकर यह कह सके कि – 'उसने न तो जानबूझकर असत्य का आश्रय लिया है और न ही तथ्यों की गहन खोज किए बिना उन्हें प्रस्तुत किया है.'ग्रोटे, वेट्ज़, डिल्थी तथा मोमसेन ने नेबूर को सभी परवर्ती इतिहासकारों का मार्गदर्शक माना है.

2.6 इतिहासकार लियोपोल्ड वान रैंके

2.6.1 रैंके की रचनाएं

गान्टिनजेन विश्वविद्यालय की समृद्ध इतिहास-लेखन की परंपरा लियोपोल्ड वान रैंके ने आगे बधाई थी. वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन के जनक, मूल्यों से मुक्त वस्तुनिष्ठता के मसीहा तथा आलोचनात्मक इतिहास-विज्ञान के संस्थापक - रैंके ने प्रत्यक्षवादी इतिहास-लेखन में सबसे उल्लेखनीय योगदान दिया है. प्राचीन रोम के इतिहास के सन्दर्भ में बार्टहोल्ड नेबूर द्वारा ऐतिहासिक अन्वेषण की वैज्ञानिक प्रणाली का विस्तार कर रैंके ने इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम का विकास किया.

अपने ग्रंथ – 'दि हिस्ट्री ऑफ़ दि लैटिन एण्ड ट्यूटोनिक पीपुल्स फ्रॉम 1494 टु 1514' से ही रैंके ने अपने समकालीन इतिहासकारों की तुलना में विविध ऐतिहासिक स्रोतों का अत्यधिक विस्तृत अध्ययन किया. इनमें संस्मरण, दैनन्दिनी, व्यक्तिगत एवं औपचारिक पत्र, सरकारी दस्तावेज़, कूटनीतिक विज्ञप्ति और प्रत्यक्षदर्शियों का आँखो-देखा वृतान्त सम्मिलित थे. रैंके को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उसी के कारण परवर्ती काल की शैक्षिक संस्थाओं में सुव्यवस्थित अभिलेखीय शोध और स्रोत-समीक्षा के सिद्धान्तों को अपनाया जाना एक आम बात हो गई. रैंके इतिहास की महत्ता और उपयोगिता को स्वीकार करता है. 'हिस्ट्री ऑफ़ दि लैटिन एण्ड जर्मेनिक नेशन्स' में वह

कहता है -‘ आप यह समझते हैं कि इतिहास को भूतकाल का आकलन करने का तथा भविष्य के कल्याण हेतु वर्तमान को निर्दिष्ट करने का दायित्व दिया गया है. परन्तु मेरा ग्रंथ ऐसी कोई आशा नहीं रखता है. यह तो केवल यह प्रस्तुत करने की कोशिश करना चाहता है कि वास्तव में क्या घटित हुआ. रैंके के पूर्ववर्ती इतिहासकार अपने ग्रंथों की रचना करते समय बिना अभिलेखीय शोध किए हुए पूर्व-रचित ग्रंथों की हू-ब-हू नकल कर लेते थे और स्रोत-विश्लेषण का आलोचनात्मक परीक्षण भी नहीं करते थे. यहाँ यह विचारणीय है कि रैंके किस प्रकार किसी चयनित विषय पर शोध करता था. अपनी पहली ही रचना से लेकर अपनी अन्तिम रचना तक रैंके ने अभिलेखीय शोध हेतु अथक परिश्रम किया था. अपने जीवन में उसने 50,000 दस्तावेज़ों को एकत्र किया था. अपने शोध में उसने गौण स्रोतों को भी महत्व दिया था. उसके निजी पुस्तकालय में 24,000 ग्रंथ थे. रैंके ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृष्य को इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में सफलता प्राप्त की. उसका कहना था – ‘इतिहास में विशेष तथ्य का उल्लेख होता है किन्तु उसे व्यापक सन्दर्भ ही देखा जाना चाहिए.’

2.6.2 इतिहास-लेखन में तटस्थता का महत्त्व

1834 से 1836 के मध्य उसने बहु-खण्डी ‘हिस्ट्री ऑफ़ दि पोप्स, देयर चर्च एण्ड देयर स्टेट इन दि सिक्सटीन्थ एण्ड सेवेन्टीन्थ सेन्चुरीज़’ की रचना की. प्रोटैस्टेन्ट मत के अनुयायी होने के कारण उसे वैटिकन अभिलेखगार जाकर मूल स्रोतों का अध्ध्यन करने की अनुमति प्राप्त नहीं हुई किन्तु उसने इस हेतु रोम तथा वेनिस में उपलब्ध सभी निजी पत्रों का विस्तृत अध्ययन कर इस वृहद ग्रंथ की रचना की थी. रैंके ने पोप के पद को यूरोपीय सभ्यता को एकीकृत करने का श्रेय दिया है. इस पुस्तक का सार प्रति-धर्मसुधार आन्दोलन था जिसका कि रैंके पहला आधिकारिक व्याख्याकार था. जी. पी. गूच ने इस ग्रंथ में रोमन कैथोलिकों एवं प्रोटेस्टैन्टों के प्रति पूर्णरूपेण तटस्थ भाव रखने के लिए रैंके की भूरि-भूरि प्रशंसा की है.रैंके हिंसक क्रान्ति का पोषक नहीं था क्योंकि वह ईश्वर प्रदत्त विधान में विश्वास रखता था. वह तथ्यों की प्रस्तुति में भले ही तटस्थता का दावा करता हो किन्तु उसके इतिहास लेखन में उसकी अपनी पसन्द और नापसन्द की झलक मिल जाती है। ई0 एच0 कार ‘व्हाट इज हिस्ट्री’ में कहता है – ‘तथ्य वही बोलते हैं जो इतिहासकार उनसे बुलवाता है.’

रैंके द्वारा इतिहास-लेखन को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जाना तथा उसके स्वरुप को सार्वभौमिक बनाया जाना, 1859 में रैंके ने इतिहास सम्बन्धित पत्रिका ‘हिस्टोरिक पोलिट्ज़े ज़ीट्शरिफ़्ट’ का प्रकाशन किया जिसका कि उद्देश्य इतिहास लेखन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना और ऐतिहासिक शोध की एक निश्चित एवं यथार्थवादी प्रणाली का प्रतिनिधित्व करना था. रैंके ने यूरोप की सभी महा-शक्तियों का पृथक-पृथक इतिहास लिखा. इन इतिहास-ग्रंथों में – ‘दि ओटोमन एण्ड दि स्पैनिश एम्पायर्स इन दि सिक्सटींथ एण्ड सेविन्टींथ सेन्चुरीज़’, ‘हिस्ट्री ऑफ़ फ्रांस, ‘हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड’ तथा ‘दि जर्मन पावर्स एण्ड दि प्रिन्सेज़ लीग’ प्रमुख हैं. रैंके ने अपने ग्रंथ – ‘हिस्ट्री ऑफ़ फ्रांस’ में स्वयं जर्मन होते हुए भी फ्रांसीसियों के प्रति किसी भी प्रकार की दुर्भावना नहीं रखी है. अपने जीवन के अन्तिम चरण में रैंके ने सार्वभौमिक इतिहास – ‘यूनीवर्सल हिस्ट्रीः दि ओल्डेस्ट हिस्टोरिकल ग्रुप ऑफ़ नेशन्स एण्ड दि ग्रीक’ की रचना की. रैंके की एक अन्य महत्वपूर्ण रचना – ‘दि सीक्रेट ऑफ़ वर्ड हिस्ट्रीः सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑन दि आर्ट एण्ड साइंस ऑफ़ हिस्ट्री’ है.

2.6.3 रैंके का इतिहास-दर्शन

यूनानी इतिहासकार थ्यूसीडाइडीस (456-396 ईसा पूर्व) घटनाओं की तह तक जाकर तथ्यों को एकत्र करता था और वह तथ्यों को इतिहास की रीढ़ की हड्डी मानता था. यूनानी इतिहासकार पोलिबियस ने सत्य को इतिहास की आँख माना था, वह कहता था कि यदि इतिहास में से सत्य निकाल लिया जाए तो वह अंधा हो जाएगा. चीनी इतिहास लेखन में भी तथ्यों की यथार्थता पर विशेष बल दिया गया है. उन्नीसवीं शताब्दी में इतिहास लेखन के लिए प्रामाणिक तथ्यों की आवश्यकता पर ग्रैण्ड ग्राउण्ड ने लिखा था – 'मुझे तथ्य चाहिए और जीवन में हमको केवल तथ्यों की आवश्यकता है.'

रैंके ने स्रोतों की विश्वसनीयता अर्थात् उनकी निश्चयात्मकता नितान्त आवश्यक माना है. उसकी दृष्टि में अनुमान का इतिहास लेखन में कोई स्थान नहीं है और अनुमान व निष्कर्ष का अधिकार केवल पाठक का है. उसका मानना है कि इतिहासकारों को सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने की प्रवृत्ति से बचकर रहना चाहिए. रैंके इतिहास और दर्शन शास्त्र की घनिष्टता के भी विरुद्ध है। वह तथ्यों को बुद्धि की कसौटी पर परख कर ही उनको इतिहास लेखन के लिए उपयुक्त मानता है. उसकी दृष्टि में इतिहासकार का यह धर्म है कि वह तथ्यों को उसी रूप में प्रस्तुत करे जैसे कि वो वास्तव में थे. इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम का जनक रैंके प्राथमिक स्रोतों की प्रामाणिकता के बिना उन्हें स्वीकार नहीं करता है. विवेचनात्मक ऐतिहासिक विज्ञान का पथप्रदर्शक रैंके कहता है -

'मैं उस समय की आहट सुन रहा हूँ जब हम आधुनिक इतिहास को विवरणों (भले वो समकालीन भी क्यों न हों) पर आधारित करने के स्थान पर प्रत्यक्ष-दर्शियों के बयानों और प्रामाणिक व मौलिक दस्तावेज़ों के आधार पर लिखेंगे.'

2.6.4 समय के साथ-साथ इतिहास-दृष्टि तथा इतिहास-लेखन की तकनीक में परिवर्तन

इतिहास के तकनीकी दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक काल अपने परवर्ती काल की तुलना में पिछड़ा हुआ होता है. सत्रहवीं शताब्दी में इतिहासकारों का यह विश्वास था कि यह पाश्चात्य सभ्यता की नियति थी कि वह कपोल-कल्पनाओं का विनाश करे, सांस्कृतिक स्मरणों को मिटा दे और इतिहास को अप्रसांगिक बना दे. परन्तु रैंके इसे स्वीकार नहीं करता है. उसका यह मत है कि –'हम सावधानी व साहस के साथ विशिष्ट से सामान्य की ओर बढ़ सकते हैं किन्तु ऐसा कोई मार्ग नहीं है जिससे कि हम सामान्य से विशिष्ट की ओर बढ़ सकें.' उसने कहा था – 'प्रत्येक युग ईश्वर के निकट है.''

इस कथन से उसका तात्पर्य यह था कि इतिहास का प्रत्येक युग विशिष्ट है और उसको उसी के परिप्रेक्ष्य में समझना चाहिए तथा केवल उन सामान्य विचारों की खोज का प्रयास करना चाहिए जिन्होंने कि उस काल को जीवन्त बनाया था. रैंके ने किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को उसी के ऐतिहासिक सन्दर्भ के अन्तर्गत ही समझने का प्रयास किया. ऐतिहासिक तथ्यों (जैसे संस्था, विचार आदि) की प्रकृति को समझने के लिए उनके ऐतिहासिक विकास और कालान्तर में उनमें आए हुए परिवर्तनों को समझना आवश्यक था. रैंके का यह मानना है कि ऐतिहासिक युगों को पूर्व-निर्धारित आधुनिक मूल्यों एवं आदर्शों की कसौटी पर नहीं परखा जाना चाहिए बल्कि आनुभविक साक्ष्यों पर आधारित इतिहास (जैसा कि वास्तव में हुआ था) के परिप्रेक्ष्य में उनका आकलन किया जाना चाहिए.

रैंके न तो रोमानी आन्दोलन का अनुकरण करता है, न दैवकृत इतिहास की रचना करता है और न ही सामाजिक डार्विनवाद से सहमत होता है. वह बुद्धिवाद व यथार्थवाद की महाद्वीपीय परम्परा का अनुगमन करता है. इतिहासकार के रूप में रैंके पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों और धारणाओं को नकार कर मूल स्रोतों के श्रम-साध्य उपयोग द्वारा तथ्यों का बिना लिपा-पुता मौलिक स्वरूप प्रस्तुत करता है.

रैंके हीगेल द्वारा प्रतिपादित इतिहास दर्शन की कटु आलोचना करता है. उसका कहना है कि हीगेल ने इतिहास में मानव-क्रिया की भूमिका की उपेक्षा की है. जब कि मानव-क्रिया की उपेक्षा कर केवल विचार और अवधारणा के आधार पर हम प्रामाणिक इतिहास की रचना नहीं कर सकते.

2.6.5 रैंके के इतिहास ग्रंथों के गुण एवं दोष

2.6.5. 1 प्राथमिक स्रोतों पर आधारित वस्तुनिष्ठ इतिहास

रैंके का यह मत है कि इतिहासकार का यह दायित्व है कि वह प्राथमिक स्रोतों के आधार पर ऐतिहासिक तथ्यों की सत्यता का परीक्षण कर उन्हें ज्यों का त्यों प्रस्तुत करे. तथ्यों का वस्तुनिष्ठ पुनर्सर्जन रैंके के इतिहास-दर्शन की विशिष्टता है और वह इतिहासकार से यह अपेक्षा करता है कि वह अपने काल के मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में भूतकाल की घटनाओं का आकलन नहीं करेगा.

2.6.5.2 राजनीतिक इतिहास को महत्व

चूंकि रैंके राजनीतिक शक्ति को इतिहास का प्रमुख प्रतिनिधि मानता है, इसलिए उसने अपने इतिहास ग्रंथों में सामाजिक एवं आर्थिक बलों की उपेक्षा कर राजाओं और अन्य राजनीतिक नेताओं के कार्यों को, अर्थात् राजनीतिक इतिहास को सर्वाधिक महत्व दिया है। रैंके पर बीसवीं शताब्दी के इतिहासकारों द्वारा यह आरोप लगाया जाता है कि उसने राजनीतिक इतिहास, विशेषकर महा-शक्तियों के राजनीतिक इतिहास को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है परन्तु अपने लेखन में उसने सांस्कृतिक इतिहास को भी महत्व दिया है. 'हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लैण्ड' में उसने महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम के शासन काल के साहित्य पर एक सम्पूर्ण अध्याय लिखा है.

2.6.5.3 राजनीतिक अनुदारता

अपने ग्रंथ – 'दि ओरिजिन्स ऑफ़ दि वार ऑफ़ दि रिवोल्यूशन' में रैंके ने फ्रांसीसी क्रान्ति की भर्त्सना की है और उसको प्रशा के सन्दर्भ में उपयुक्त नहीं माना है. प्रशा के लिए वह सुदृढ़ राजतन्त्र को ही उपयुक्त मानता था और प्रशा की प्रजा से वह यह अपेक्षा करता था कि वह प्रशियन राज्य के प्रति स्वामिभक्त रहे. 2.4.3.4 4.2.6.5.4 इतिहास में धर्म का स्थानरंके इतिहास को धर्म मानता है अथवा धर्म और इतिहास के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध देखता है. वह इतिहास को ईश्वरीय लीला के रूप में देखता है.

2.6.5.4 इतिहास में व्यक्तित्व की भूमिका

रैंके इतिहास में महान विभूतियों की भूमिका को महत्वपूर्ण एवं निर्णायक मानता है.

2.6.5.5 सार्वभौमिक इतिहास

रैंके इतिहास लेखन में व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ता है. वह विभिन्न देशों के इतिहास की विशिष्टताओं को सार्वभौमिक इतिहास की आवश्यक कड़ियां मानकर सार्वभौमिक इतिहास की ओर बढ़ता है.

2.6.5.6 रैंके की इतिहास विषयक अध्ययन-गोष्ठी

रैंके की अध्ययन गोष्ठी की तकनीक ने इतिहास के उन्नत विद्यार्थियों को ऐतिहासिक स्रोतों के आलोचनात्मक अध्ययन की प्रणाली में एक क्रान्ति का सूत्रपात किया।

2.6.6 इतिहासकार के रूप में रैंके का आकलन

अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों पर रैंके की तकनीक का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। रैंके तथा उसके अनुयायियों - थियोडोर मामसे, जॉन गुस्टाव ड्रायसेय, फ्रेडरिक विल्हेम शिरमाकर और हेनरिक वान ट्रीट्स्के ने समीक्षा एवं ऐतिहासिक प्रणाली के नियम स्थापित किए. जर्मन विचारधारा ने इतिहास के औपचारिक शास्त्रीय अध्ययन की स्थापना की. रैंके ने अपनी कक्षाओं में अध्ययन गोष्ठी की प्रणाली प्रारम्भ की और अभिलेखीय शोध एवं ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के विश्लेषण पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की. इतिहास लेखन में पूर्ण तटस्थता का अनुचित दावा करने के बावजूद रैंके का यह मानना था कि हर ऐतिहासिक तथ्य, काल और घटना की अपनी वैयक्तिकता होती है और यह इतिहासकारों का काम है कि वह इनके सार को स्थापित करे. इस गुरुतर कार्य के लिए इतिहासकारों को उस विशिष्ट युग में स्वयं को उतारना होगा और उसी समय के मूल्यों के अनुरूप उसका आकलन करना होगा. रैंके के शब्दों में – 'इसके लिए इतिहासकारों को अपने निजी व्यक्तित्व की आहुति देनी होगी.'

रैंके इतिहास के विज्ञान का सूत्रधार है. रैंके ने किसी समकालीन ग्रंथ का परीक्षण करते समय उसके लेखक के पद, उसके द्वारा अपने ग्रंथ की रचना हेतु स्रोत सामग्री। एकत्र करने की उसकी सामर्थ्य, उसकी मानसिकता तथा उसकी निजी निष्ठा का भी आलोचनात्मक परीक्षण किया और साथ ही साथ उसके द्वारा उपलब्ध जानकारी का अन्य समकालीन ग्रंथों में उपलब्ध जानकारी के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी किया.रैंके ने स्वयं ईसाई होते हुए भी अन्य धर्मावलम्बियों की उपलब्धियों की कभी भी उपेक्षा नहीं की. उसका कहना था – 'मैं पहले इतिहासकार हूँ और बाद में ईसाई हूँ.'

रैंके को इसका श्रेय जाता है कि उसने इतिहास लेखन में आत्मपरकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता को महत्व दिया. उसके लेखन में जातीय अथवा धार्मिक पूर्वाग्रहों का कोई स्थान नहीं है. पूर्ण तटस्थता अपनाते हुए और पूर्वाग्रहों को नकारते हुए उसने तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने की एक ईमानदार कोशिश की है.

2.7 प्रत्यक्षवाद का आकलन

प्रत्यक्षवाद का विश्वास है कि अवलोकन करने वाला वस्तुनिष्ठ अनुमान तथा निष्कर्ष तक तभी पहुंच सकता है जब कि वह स्वयं वस्तुनिष्ठ हो और अपनी भावनाओं के वशीभूत न हो. हालांकि मानवीय व्यवहार स्वाभाविक रूप से भावनात्मक प्रतिक्रियाओं से परिपूर्ण होता है. यद्यपि प्रत्यक्षवाद में अन्वेषकों को मानवीय भावनाओं को परे रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है किन्तु अध्ययन तथा अन्वेषण के दौरान ऐसा न होने देने की कोई ज़िम्मेदारी नहीं ले

सकता.किंचित विद्वान प्रत्यक्षवाद की इसलिए आलोचना करते हैं कि यह विश्वास करता है कि हर वस्तु को मापा जा सकता है और उसकी गणना की जा सकती है, ऐसे जैसे कि प्रत्येक वस्तु अटल हो.

प्रत्यक्षवादी वही मानते हैं, जो वह देखते हैं और ऐसी घटनाओं की अनदेखी करते हैं जिनकी कि कभी व्याख्या ही न की जा सके. उनका यह विश्वास उस पार्श्वीय चिंतन का उन्मूलन कर देता है जो कि अप्रत्यक्ष रूप से समस्यायों के समाधान खोजने की रचनात्मक प्रक्रिया है. प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों की दृष्टि में मानव-मस्तिष्क तथा प्रकृति में कोई मूलभूत अंतर नहीं है और ऐतिहासक प्रक्रिया एवं प्राकृतिक प्रक्रिया भी एक ही समान होती है. प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों ने आनुभविक विज्ञान की प्रणाली को अपनाया था, उन्होंने परानुभूति तथा आत्मानुभूति को अवैज्ञानिक मानकर अस्वीकार किया कॉलिंगवुड के शब्दों में –'यह सवाल कि – 'तथ्य वैसे ही हैं जैसा कि उनके बारे में कहा जा रहा है', प्रत्यक्षवादी के लिए कभी भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न नहीं रहा है क्योंकि वह कभी भी अपनी आँखों के सामने तथ्यों पुनरुत्पन्न कर सकता है.'

प्रत्यक्षवादी ऐतिहासिक ज्ञान का वस्तुनिष्ठ होना आवश्यक माना गया और इतिहासकार को यह अनुमति नहीं दी गयी कि वह तथ्यों पर अपना निर्णय दे सके. प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों ने प्रचुर मात्रा में सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्यों को एकत्र किया किन्तु उन्होंने यदा-कदा ही सामान्यीकरण के नियमों का प्रतिपादन किया. उनकी प्रणाली ने उन्हें राजनीतिक इतिहास तक ही सीमित कर दिया क्योंकि उनमें इतिहास की अन्य शाखाओं को समझ पाने की और उनसे सम्बंधित तथ्यों को एकत्र करने की क्षमता ही नहीं थी. कॉलिंगवुड के शब्दों में –'प्रत्यक्षवाद की विरासत है – एक तरफ़ सूक्ष्म समस्यायों के निदान के ऊपर महारत और दूसरी तरफ़ बड़ी समस्यायों का निराकरण न कर पाने की दुर्बलता.'

एक ओर यथार्थवाद और प्रत्यक्षवाद का अपना महत्त्व है तो दूसरी ओर आदर्शवाद का अपना महत्त्व है किन्तु मानव-कल्याण इन दोनों के समन्वय और पारस्परिक सामंजस्य में है जिसको कि हम आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद कहते हैं. इस आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के दर्शन हमको विचारकों, साहित्यकारों तथा इतिहासकारों में पहले भी हुए हैं, अब भी होते हैं और आगे भी होते रहेंगे.

2.8 सारांश

प्रत्यक्षवाद वह अवधारणा है जिसमें ज्ञान और विचार, निगमन की वैज्ञानिक प्रणाली पर निर्भर करते हैं. प्रत्यक्षवाद के अनुसार – 'मनुष्य का ज्ञान उसके अनुभव तक सीमित है.'प्राचीन दर्शन में प्रत्यक्षवादी विचारधारा की झलक देखी जा सकती है.कुतर्की दार्शनिक प्रोटागोरसयूनानी ,अतिवादी दार्शनिक सेक्सटस एम्पायरिकस , 17 चीनी इतिहास लेखन ,दार्शनिक अरस्तू ,यूनानी इतिहासकार पोलिबियस ,इतिहासकार थ्यूसीडाइडीसवीं शताब्दी में पाइरे बेले 18 नामरूपवादी विलियम ओकहैम तथा ,वीं शताब्दी के जर्मन विचारक जॉर्ज लिक्तेनबर्ग ने भी प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण अपनाया था ने ,ह्यूम तथा बिशप जॉर्ज बर्कले – ब्रिटिश अनुभववादियों .भी ज्ञान में अनुभव की महत्ता को दर्शाया था .

फ़्रांसीसी दार्शनिक अगस्ते कॉम्ते ने कि 'प्रैक्सियोलोजी अनुशासन' (मानव-क्रिया का निगमनात्मक अध्ययन) की स्थापना तथा प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत का विकास किया. उसने विज्ञान पर आधारित एक नए सामाजिक सिद्धांत की आवश्यकता पर बल दिया. कॉम्ते यह मानता है कि – विश्व-विषयक ज्ञान का स्रोत, अवलोकन है. कॉम्ते आध्यात्मवाद को एक आधारहीन अटकलबाज़ी समझता है. कॉम्ते ने 'कोर्स ऑफ़ पॉज़िटिव फ़िलोसोफ़ी' तथा सिस्टम ऑफ़ पॉज़िटिव पोलिटी' में प्रत्यक्षवाद की व्याख्या की है. कॉम्ते ने इस बात पर बल दिया है कि इन्द्रिय-ज्ञान से परे कुछ भी वास्तविक नहीं है. उसके सामाजिक सिद्धांतों का परिणाम उसकी 'रिलीजन ऑफ़ ह्यूमैनिटी' की अवधारणा में दिखाई पड़ा जिसको कि अनीश्वरवादी मानवतावाद, धार्मिक मानवतावाद तथा धर्म-निरपेक्ष मानवतावाद के पूर्व-बोध के रूप में देखा जा सकता है.

नव-प्रत्यक्षवादियों अथवा तार्किक प्रत्यक्षवादियों – मैक्स वेबर, विएना सर्किल, टी. डी. वैल्डन, मोरित्ज़ श्लिक, लुडविख वित्ज़ेस्ताइन तथा ए. जे. एयर आदि ने कॉम्ते की प्रत्यक्षवादी व्याख्या को अस्वीकार कर दिया. उत्तर-व्यवहारवादियों ने भी प्रत्यक्षवाद के माध्यम से राजनीति-विज्ञान की व्याख्या किया जाना असंभव बताया है. कॉम्ते के आलोचक उसे 'मुक्त-व्यापार सिद्धांत' का पोषक मानते हैं इसमें नैतिकता का कोई स्थान नहीं होता है. कॉम्ते का प्रत्यक्षवाद नितांत अव्यावहारिक नहीं है. जे. एस. मिल. रिचर्ड काँग्रीव, अर्न्स्ट मैक तथा रिचर्ड अवेनारियंस तथा हर्बर्ट स्पेंसर के विचारों पर कॉम्ते के चिंतन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है.

कॉम्ते ने अपने प्रत्यक्षवाद के माध्यम से हमको समाज, राजनीति तथा इतिहास का अध्ययन करने की एक नई दिशा, एक नई विधि दी है, एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है.मध्यकालीन इतिहास लेखन में मुख्य रूप से तीन दोष - समय के अनुरूप परिवर्तन के प्रति अनभिज्ञता, प्राथमिक स्रोतों की अनुपलब्धता तथा मान्य प्रणालीगत सिद्धान्तों के अध्ययन में संगठन एवं वर्गीकरण की कमी, विद्यमान थे.नेबूर की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' (1811-12) से आधुनिक ऐतिहासिक प्रणाली का जन्म हुआ है. नेबूर ने प्राचीन रोम की राजनीतिक, विधि-सम्मत और आर्थिक संस्थाओं से सम्बद्ध प्राथमिक स्रोतों का गहन अध्ययन किया और फिर उनका आलोचनात्मक परीक्षण करने के बाद ही उसने 'हिस्ट्री ऑफ़ रोम' की रचना की.

वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन के जनक, मूल्यों से मुक्त वस्तुनिष्ठता के मसीहा तथा आलोचनात्मक इतिहास-विज्ञान के संस्थापक - लियोपोल्ड वान रैंके ने इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम का विकास किया. रैंके ने अपने समकालीन इतिहासकारों की तुलना में विविध ऐतिहासिक स्रोतों का अत्यधिक विस्तृत अध्ययन किया. इनमें संस्मरण, दैनन्दिनी, व्यक्तिगत एवं औपचारिक पत्र, सरकारी दस्तावेज़, कूटनीतिक विज्ञप्ति और प्रत्यक्षदर्शियों का आँखो-देखा वृतान्त सम्मिलित थे. रैंके ने अभिलेखीय शोध हेतु अथक परिश्रम किया था. अपने शोध में उसने गौण स्रोतों को भी महत्व दिया था.

रैंके ने 'हिस्ट्री ऑफ़ दि पोप्स, देयर चर्च एण्ड देयर स्टेट इन दि सिक्सटीन्थ एण्ड सेवेन्टीन्थ सेन्चुरीज़' की रचना की. जी. पी. गूच ने इस ग्रंथ में रोमन कैथोलिकों एवं प्रोटेस्टैन्टों के प्रति पूर्णरूपेण तटस्थ भाव रखने के लिए रैंके की भूरि-भूरि प्रशंसा की है.रैंके तथ्यों की प्रस्तुति में भले ही तटस्थता का दावा करता हो किन्तु उसके इतिहास लेखन में उसकी अपनी पसन्द और नापसन्द की झलक मिल जाती है. रैंके ने 'दि ओरिजिन्स ऑफ़ दि वार ऑफ़ दि

रिवोल्यूशन' में फ्रांसीसी क्रान्ति के 'स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व ' की भावना की भर्त्सना की है. वह प्रशा में सुदृढ़ राजतन्त्र का समर्थक है.

रैंके द्वारा सम्पादित इतिहास सम्बन्धित पत्रिका - 'हिस्टोरिक पोलिट्ज़े ज़ीट्शरिफ़्ट' का उद्देश्य - इतिहास लेखन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना और ऐतिहासिक शोध की एक निश्चित एवं यथार्थवादी प्रणाली का प्रतिनिधित्व करना था.रैंके इतिहास लेखन में व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ता है. सार्वभौमिक इतिहास के पक्षधर रैंके ने यूरोप की सभी महा-शक्तियों का पृथक-पृथक इतिहास लिखा. रैंके की दृष्टि में अनुमान का इतिहास लेखन में कोई स्थान नहीं है. उसका मानना है कि इतिहासकारों को सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने की प्रवृत्ति से बचकर रहना चाहिए. रैंके का यह मानना है कि ऐतिहासिक युगों को पूर्व-निर्धारित आधुनिक मूल्यों एवं आदर्शों की कसौटी पर नहीं परखा जाना चाहिए बल्कि आनुभविक साक्ष्यों पर आधारित इतिहास के परिप्रेक्ष्य में उनका आकलन किया जाना चाहिए.

रैंके इतिहास में महान विभूतियों की भूमिका को महत्वपूर्ण एवं निर्णायक मानता है. चूंकि रैंके राजनीतिक शक्ति को इतिहास का प्रमुख प्रतिनिधि मानता है, इसलिए उसने राजनीतिक इतिहास-लेखन को ही महत्त्व दिया है और इतिहास के आर्थिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक पहलू की उपेक्षा की है.रैंके तथा उसके अनुयायियों ने समीक्षा एवं ऐतिहासिक प्रणाली के नियम स्थापित किए. रैंके के लेखन में जातीय अथवा धार्मिक पूर्वाग्रहों का कोई स्थान नहीं है. पूर्ण तटस्थता अपनाते हुए और पूर्वाग्रहों को नकारते हुए उसने तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने की एक ईमानदार कोशिश की है.

यद्यपि प्रत्यक्षवाद में अन्वेषकों को मानवीय भावनाओं को परे रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है किन्तु अध्ययन तथा अन्वेषण के दौरान ऐसा न होने देने की कोई ज़िम्मेदारी नहीं ले सकता. प्रत्यक्षवाद में यह विश्वास किया जाता है कि हर वस्तु को मापा जा सकता है और उसकी गणना की जा सकती है किन्तु ऐसा हो पाना संभव नहीं है.एक ओर यथार्थवाद और प्रत्यक्षवाद का अपना महत्व है तो दूसरी ओर आदर्शवाद का अपना महत्व है किन्तु मानव-कल्याण इन दोनों के समन्वय और पारस्परिक सामंजस्य में है जिसको कि हम आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद कहते हैं.

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. प्रत्यक्षवादी विचारधारा का प्रारंभिक विकास
2. कॉम्ते का इतिहास-दर्शन
3. इतिहासकार के रूप में रैंके का आकलन

2.8.1 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 2.3.1 प्रत्यक्षवादी विचारधारा का प्रारंभिक विकास
2. देखिए 2.4.3 कॉम्ते द्वारा इतिहास की व्याख्या
3. देखिए 2.6.6 इतिहासकार के रूप में रैंके का आकलन

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

इन्द्रिय ज्ञान – देखने, सुनने, चखने, सूंघने तथा स्पर्श करने से प्राप्त ज्ञान

कोर्स ऑफ़ पॉज़िटिव फ़िलोसोफ़ी – प्रत्यक्षवादी दर्शन का मार्ग

सिस्टम ऑफ़ पॉज़िटिव पोलिटी – प्रत्यक्षवादी राज्य-तंत्र की व्यवस्था

रिलीजन ऑफ़ ह्यूमैनिटी – मानवता का धर्म

सार्वभौमिक इतिहास – जातीय, धार्मिक तथा राष्ट्रीय, संकीर्णताओं से ऊपर उठकर लिखा जाने वाला वैश्विक इतिहास

व्यष्टि से समष्टि - व्यक्तिगतता से विश्व-व्यापकता

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

कालिंगवुड, आर0 जी0 - दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री, लन्दन, 1978

गूच, जी0 पी0 - दि हिस्ट्री एण्ड दि हिस्टोरियन्स ऑफ़ दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी, लन्दन, 1913

इगर्स, जॉर्ज जी0, जेम्स, एम0 पावेल - लियोपोल्ड रैंके एण्ड दि शेपिंग ऑफ़ दि हिस्टोरिकल डिसिप्लिन, न्यूयार्क, 1990

श्रीधरन, ई0 - ए टैक्स्ट बुक ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफ़ी, नई दिल्ली, 2013

लियोपोल्ड वान रैंके (सम्पादनः राजर वाइन्स) - 'दि सीक्रेट ऑफ़ वर्ड हिस्ट्रीः सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑन दि आर्ट एण्ड साइंस ऑफ़ हिस्ट्री', न्यूयार्क, 2010

लियोपोल्ड वान रैंके (सम्पादनः इगर्स, जॉर्ज, जी0) - 'दि थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस ऑफ़ हिस्ट्री', न्यूयार्क, 2011

कार, ई0 एच0 (अनुवादकः चक्रधर, अशोक) - 'इतिहास क्या है', नई दिल्ली, 1993

थापर, रोमिला (सम्पादक) - 'इतिहास की पुनर्व्याख्या' नई दिल्ली, 1991

बुद्धप्रकाश - 'इतिहास दर्शन' इलाहाबाद, 1962

वर्मा, लालबहादुर - 'इतिहास के बारे में', इलाहाबाद, 2000

शर्मा, रामविलास - 'इतिहास दर्शन', नई दिल्ली, 1995

टोश, जॉन – 'दि पर्सूट ऑफ़ हिस्ट्री: एम्स, मेथड्स एंड न्यू डायरेक्शंस इन दि स्टडी ऑफ़ मॉडर्न हिस्ट्री' हार्लो, 1999

लाल, के. बी. – 'पाश्चात्य दर्शन, वाराणसी, 1990,

कॉम्ते, औगस्ते –'पॉज़िटिव फ़िलोसोफ़ी' (अंग्रेजी अनुवाद – मार्तेन्यू, एच., लन्दन, 1961

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

अगस्ते कॉम्ते की प्रत्यक्षवादी अवधारणा का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए.

आधुनिक इतिहास लेखन–मार्क्सवाद

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 कार्ल मार्क्स

- 3.2.1 जीवन और कृतियाँ
- 3.2.2 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
- 3.2.3 ऐतिहासिक भौतिकवाद
- 3.2.4 आर्थिक निर्धारणवाद

3.3 इतिहास के चरण

- 3.3.1 समाज की द्वन्दात्मक गति : वर्ग संघर्ष
- 3.3.2 अधिशेष मूल्य का सिद्धान्त
- 3.3.3 मार्क्स की राज्य की अवधारणा
- 3.3.4 सामाजिक क्रांति
- 3.3.5 अभिनव समाज

3.4 मार्क्सवादी इतिहास लेखन की समस्याएँ

- 3.4.1 इतिहास में चेतना और पदार्थ
- 3.4.2 सामाजिक संचरना और वर्ग संघर्ष
- 3.4.3 पूंजीवाद और उपनिवेशवाद
- 3.4.4 समाजवाद का इतिहास लेखन

3.5 मार्क्सवाद का इतिहास लेखन पर प्रभाव

- 3.5.1 बहुमूल्य संशोधन
- 3.5.2 दो आधारभूत योगदान
- 3.5.3 इतिहास लेखन पर मार्क्सवाद का प्रेरक और मुक्तकारी प्रभाव
- 3.5.4 भौतिकवादी मीमांसा कारणमूलक व्याख्या में सहायक

3.6 मार्क्सवाद की महत्वता के कारण

- 3.6.1 समाज के अध्ययन के रूप में इतिहास की धारणा
- 3.6.2 आर्थिक और सामाजिक इतिहास का प्रमुख विषयों के रूप में विकास
- 3.6.3 सामान्य जन की भूमिका

3.7 पूर्ण इतिहास

3.8 सारांश

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना :

वर्तमान में मानव जीवन का कोई भी भाग विज्ञान के प्रभाव से अछूता नहीं है क्योंकि यह काल विज्ञान के युग के नाम से जाना जाता है। इस समय के समाज में जो भ्रांतियां विद्यमान थीं, उन्हें भी अस्तित्वहीन और निर्मूल सिद्ध करने में विज्ञान का विशिष्ट योगदान है। पुनर्जागरण ने यूरोप में नवीन चेतना की जागृति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कापरनिक्स और गैलिलियो जैसे वैज्ञानिकों ने विज्ञान को जो ठोस आधार प्रदान किया, उस पर भावी पीढ़ी के वैज्ञानिकों ने अपने ठोस प्रयासों के माध्यम से भव्य भवनों का निर्माण किया तथा चिंतन की गति को नवीन दिशा प्रदान की। वैज्ञानिकों का प्रमुख उद्देश्य समाज, धर्म एवं प्रकृति में विद्यमान मिथकों को दूर करना है। इसी श्रृंखला में वैज्ञानिकों एवं समाज वैज्ञानिकों ने अपनी आलोचना और विश्लेषण का मुख्य विषय दर्शन और इतिहास को बनाया। परिणामस्वरूप विद्वानों द्वारा इन विषयों को वैज्ञानिकता एवं तार्किकता के मजबूत आधार मिले। इन्हीं में से एक विद्वान कार्ल मार्क्स थे।

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- मार्क्सवाद और मार्क्सवादी इतिहास दर्शन
- द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद
- मार्क्सवादी इतिहास के चरण
- मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त
- मार्क्सवादी इतिहास लेखन की समस्याएँ
- मार्क्सवाद का इतिहास लेखन पर प्रभाव

3.2 कार्ल मार्क्स (1818–1883)

3.2.1 जीवन और कृतियाँ :

मार्क्स ने इतिहास के संदर्भ में सामान्य विधान और व्यापक प्रतिमान विकसित कर नए अभिगम का सूत्रपात किया। मार्क्स ने इतिहास के प्रति प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण को एक अधिक उच्च दार्शनिक स्तर प्रदान किया जिसे 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' कहते हैं।

मार्क्स का जन्म जर्मनी में राइनलैंड के ट्रायर शहर में हुआ था और वे एक विधिवेत्ता के पुत्र थे। उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय में कानून और विधिशास्त्र की पढ़ाई की किंतु इतिहास और दर्शनशास्त्र में भी उन्होंने गहरी रूचि ली। सन् 1841 में विश्वविद्यलाय छोड़ने के बाद वे तत्कालीन आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था के तीव्र आलोचक हो गए और शीघ्र ही उन्हें अपनी मातृभूमि को त्यागकर पहले फ्रांस फिर बेल्जियम और अंततः इंग्लैण्ड में शरण लेनी पड़ी। वे उन लोगों में से थे जिन्होंने फर्स्ट इंटरनेशनल (1864 ई.) की स्थापना की और उसके बाद समाजवादी आंदोलन के सबसे सशक्त व्यक्तित्व बन गए। मार्क्स के कठिन और उथल–पुथल भरे जीवन की दो अत्यन्त अनुकूल व सकारात्मक घटनाऐं थीं– 1843 में जेनी वॉन वेस्टफालेन से उनका विवाह और उसी वर्ष फ्रेडरिक एंगेल्स के साथ उनका परिचय। जेनी जीवन पर्यन्त एक निष्ठावान पत्नी बनी रहीं और उनके कार्य में समर्पित सहयोगी की भूमिका निभाई। एंगेल्स के साथ मार्क्स की मित्रता उनके जीवन और संघर्ष के दौरान अनमोल सिद्ध हुई। वस्तुतः उनका पारस्परिक सहयोग इतिहास के सर्वाधिक रचनात्मक सहकार्यों में से एक था।

जीवन तथा इतिहास की भौतिकवादी धारणा की व्याख्या करने वाली प्रथम दो कृतियां द होली फैमिली (1845) और द जर्मन आइडियोलॉजी (1848) थी। ये दोनों पुस्तकें मार्क्स ने

एंगेल्स के सहयोग से लिखीं। 1848 में द कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो प्रकाशित हुई जो मार्क्सवाद के मूल तत्वों की पहली सुव्यवस्थित और संतुलित अभिव्यक्ति थी। यह भी मार्क्स और एंलेल्स द्वारा संयुक्त रूप से लिखी गई। मार्क्स की पुस्तक द क्रिटीक ऑफ पालिटिकल इकोनॉमी (1859) एक उत्कृष्ट रचना है जिसके बारे में एंगेल्स ने बाद में लिखाः ''जिस प्रकार डार्विन ने जैविकीय प्रकृति के विकास के नियम की खोज की उसी तरह मार्क्स ने मानव इतिहास के विकास के नियम की खोज की।'' दास केपिटल (1867–94) उनके जीवकाल की सबसे महत्वपूर्ण रचना और वैज्ञानिक साम्यवाद की प्रधान कृति थी। जब मार्क्स का निधन हुआ तो एंगेल्स ने कहा ''मानवजाति एक मस्तिष्क से वंचित हो गई और वह भी एक ऐसे मस्तिष्क से जो हमारे समय का महानतम मस्तिष्क था।''

3.2.2. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद :

मार्क्स के लिए भौतिक और सामाजिक विज्ञान ही ज्ञान की एक मात्र विद्या है। भौतिक जीवन में उत्पादन सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के सामान्य लक्ष्ण निश्चित करता है। आर्थिक जीवन के परिवर्तन से विराट ऊपरी ढांचा न्यूनाधिक शीघ्रता से रूपान्तरिक हो जाता है। मार्क्स ने इतिहास का प्रारूप आर्थिक परिवर्तनों में देखा जिसके केन्द्र में अनेक संघर्षरत वर्ग होते थे। अब तक के सभी समाजों का इतिहास मूलतः वर्ग–संघर्ष का इतिहास है। इस दृष्टि से मार्क्स हीगल से प्रभावित हैं और उनका द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इतिहास की नई व्याख्या है। मार्क्स ने सामाजिक–आर्थिक व्यवस्थाओं की ऐतिहासिकता और विचारों की समाज–सापेक्षता प्रतिपादित कर एक नई ऐतिहासिक विद्या और पद्धति का आविष्कार किया।

मार्क्स और एंलेल्स द्वारा विकसित जीवन और इतिहास संबंधी दृष्टिकोण, जिसने मार्क्सवाद को एक एकीकृत, बाध्यकारी और गतिमान सिद्धान्त का रूप दे दिया, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का दर्शन है। मार्क्स हीगल का सबसे महत्वपूर्ण अनुयायी भी था और विरोधी भीं अनुयायी इसलिए कि उसने द्वन्द्वात्मक पद्धति को स्वीकार किया और विरोधी इसलिए कि उसने विज्ञानवाद को भौतिकवाद से विस्थापित किया। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मानव जीवन की परिवर्तनशील भौतिक दशाओं में ऐतिहासिक प्रक्रिया के सारात्व की खोज करता है। युवा हीगलवादियों के समूह को निकटता से अनुभव करते हुए मार्क्स, हीगल की चिंतन प्रणाली की ओर आकृष्ट हुए। इस चिंतन प्रणाली द्वारा आंतरिक नियमितताओं, इसकी पूर्णता तथा विश्व दृष्टि के आधार पर यथार्थ की व्याख्या करने के प्रयास ने विशेषकर उन्हें आकर्षित किया। किंतु द्वन्द्वात्मकता की रचनात्मक रूप से आमूल परिवर्तनवादी पद्धति ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया। द्वन्द्वात्मकता से हीगल और मार्क्स का आशय यह था कि सब कुछ गतिशीलता और विकास की स्थिति में है और सभी परिवर्तन परस्पर विरोधी तत्वों के संघर्ष और टकराव से जन्म लेते हैं। इससे ज्ञात होता है कि इतिहास और वस्तुतः सभी यथार्थ कालप्रवाह उन घटनाओं के एकल तथा सार्थक प्रकटीकरण के माध्यम से, जो अनिवार्य तार्किक एवं निर्धारक प्रकृति के होते हैं, विकास की प्रक्रिया को दर्शाते हैं और प्रत्येक घटना सशक्त एवं पर्याप्त कारण से सही क्रम में घटती है न कि संयोगवश। इस प्रकार इतिहास जिस रूप में सामने आया है उससे भिन्न नहीं हो सकता था।

किंतु मार्क्स ने हीगल की द्वन्द्वात्मकता सम्बन्धी संकल्पना के आदर्शवादी आधार से पूरी तरह असहमति जताई जिसने सामाजिक परिवर्तन में विचारों की प्राथमिकता पर बल दिया। जहाँ हीगल ने पूर्ण या निरपेक्ष विचार के आत्योन्नयन के लिए द्वन्द्वात्मकता की संकल्पना का प्रयोग किया, मार्क्स ने यह तर्क दिया कि विचार स्वयं जीवन की एक अन्य अधिक आधारभूत सत्ता की परिणति है और इसका प्रतिलोम सत्य नहीं है। सामाजिक यथार्थ यह है कि मानवजीवन में आधारभूत तत्व भौतिकवादी या आर्थिक हैं। मानव के विचार हों इसके लिए

सबसे पहले उसका अस्तित्व में होना अनिवार्य है। परन्तु यह सच नहीं है कि मनुष्य जिस संसार में रहता है उसका सृजन करने के लिए सर्वप्रथम उसके पास विचार होने चाहिए। दूसरी ओर उनके समाज का स्वरूप और विशेषकर उनकी आर्थिक संस्थाऐं उन्हें कुछ निश्चित विचारों को प्रणयन–प्रवर्तन करने की स्थिति में लाती हैं। मार्क्स ने लुडविग फॉयरबाख के इस भौतिकवादी दृष्टिकोण का पुरजोर समर्थन किया कि चिंतन जीवन से उद्‌भूत होता है न कि जीवन चिंतन से और इस सिद्धान्त का इतिहास के संदर्भ में प्रयोग करते हुए अपनी चिंतन प्रणाली की नींव रखी। आर्थिक और सामाजिक दशाऐं जड़ हैं और विचार वृक्ष। हीगल के दर्शन में द्वन्द्वात्मकता सिर के बल खड़ी थी क्योंकि विचारों को जड़ और परिणामी मानवीय गतिवधि को वृक्ष माना गया। मार्क्स ने तथाकथित रूप से यह कहा कि उसने हीगल को सिर के बल खड़ा पाया और जिसे उसने पुनः अपने पैरों पर खड़ा कर दिया। द जर्मन आइडियोलॉजी में स्पष्ट रूप से यह घोषणा की गई कि ''जीवन चेतना द्वारा निर्धारित नहीं होता, बल्कि चेतना जीवन द्वारा निर्धारित होती है।''

3.2.3 ऐतिहासिक भौतिकवाद :

मानव जवीन के भौतिक आधार पर अपनी परिचर्चा को आगे बढ़ाते हुए मार्क्स ने एक भव्य दार्शनिक संरचना का निर्माण किया जिसके लिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद या इतिहास की भौतिकवादी धारणा जैसे भिन्न–भिन्न पदों का प्रयोग किया गया है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के सारतत्वों को कई उपशीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है।

3.2.4 आर्थिक निर्धारणवाद :

द होली फैमिली में मार्क्स ने लिखा था कि ''इतिहास अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयासरत मनुष्य की गतिविधि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'' इस गतिविधि का मूल आर्थिक है और आर्थिक निर्धारणवाद का सिद्धान्त यह विचार प्रस्तुत करता है कि भौतिक उत्पादन मानवजाति के इतिहास का आधार है और उस इतिहास के किसी अंश को उस काल के उद्योग के ज्ञान के बिना समझा नहीं जा सकता है। आर्थिक उत्पादन की शक्तियां एवं सम्बन्ध धर्म, दर्शनों, सरकारों और नैतिक नियमों के उस स्वरूप को निर्धारित करते हैं जिसे सभी मनुष्य स्वीकार करते हैं। द क्रिटीक ऑफ पॉलिटिकल इकानॉमी का संक्षेप सार है कि इतिहास का आधारभूत कारणमूलक कारक हमेशा आर्थिक कारक ही होता है।

3.3 इतिहास के चरण :

मार्क्स ने यह तर्क दिया है कि इतिहास, जिसका अभिप्राय अतीत है, विभिन्न चरणों की शृंखला के माध्यम से सामने आया है– एशियाटिक, पुरातन, सामंती और आधुनिक बुर्जुआ। इनमें से प्रत्येक चरण उन प्रचलित दशाओं द्वारा निर्धारित होता है जिनके तहत धन का उत्पादन होता है। दास स्वाभित्व पर आधारित किसी अर्थव्यवस्था में धन का उत्पादन दासों के स्वामित्व से होता था, सामंती चरण में भूमि का स्वामित्व धन उत्पादन का स्रोत था, बुर्जुआ काल में धन फैक्ट्रियों के स्वामित्व से उत्पादित हुआ। इन भिन्न–भिन्न चरणों में से प्रत्येक चरण अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप एक विचारधारा और अधिसंरचना विकसित करता है।

3.3.1 समाज की द्वंद्वात्मक गति–वर्ग संघर्ष :

एक चरण से दूसरे चरण में विकास के लिए गत्यात्मक शक्ति सदैव विद्यमान वर्ग संघर्ष है। इतिहास द्वंद्वात्मक गति में मानव समाज है। द्वंद्वात्मक गति के मूल में आर्थिक वर्गों के परस्पर विरोधी हित होते हैं जो उत्पादन की प्रचलित पद्धति द्वारा उत्पन्न होते हैं। उथल–पुथल से भरे संसार में वर्ग एकमात्र स्थायी यथार्थ है। द कम्पयुनिस्ट मेनिफेस्टो में यह घोषणा की गई

है कि ''अब तक अस्तित्व में रहे सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।'' वर्ग स्वयं उन विशिष्ट स्थितियों, जिनके अंतर्गत धन का उत्पादन होता है, से खास समूहों के संबंध द्वारा निर्धारित होते हैं। वर्ग की सदस्यता कुछ निश्चित सामान्य भौतिक हितों द्वारा निर्धारित होती है जो विभिन्न व्यक्तियों के समूह रूप में पाए जाते हैं। यह साधारणतः उत्पादन के साधनों के स्वामित्व या गैर–स्वामित्व के सम्बन्धों पर आधारित होते हैं। निजी सम्पत्ति की प्रस्थापना के बाद से समाज दो परस्पर विद्वेषपूर्ण आर्थिक वर्गों में बंटा रहा है– शोषक और शोषित। दास स्वामित्व वाले प्राचीन विश्व में दास–स्वामियों का हित दासों के हित के विरुद्ध था, सांमती चरण में सामंत का हित भूदासों के हित के विरुद्ध था, हमारे अपने काल में पूंजीवादी वर्ग का हित कामगर वर्ग के हित के विरुद्ध है। इतिहास वर्ग संघर्ष की एक कहानी है।

3.3.2 अधिशेष मूल्य का सिद्धान्त :

दास केपिटल में मार्क्स ने कहा कि श्रम और पूंजी के मध्य पारस्परिक विरोध का मूल कारण यह है कि पूंजीवाद अधिशेष मूल्य को हथियाने में समर्थ है जो श्रम द्वारा उत्पन्न होता है और इसलिए इसे श्रम के हिस्से में जाना चाहिए। मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि श्रम सभी संपत्ति का स्रोत है। अधिशेष मूल्य वह मूल्य है जो श्रम द्वारा उपकरणों, कच्चे माल और स्वयं अपने जीवन–यापन से अधिक राशि के रूप में उत्पादित होता है। किन्तु उत्पादन के साधनों पर अपने स्वामित्व और नियंत्रण द्वारा पूंजीवादी श्रम को उसके द्वारा सृजित धन से वंचित कर देते हैं।

3.3.3 मार्क्स की राज्य की अवधारणा :

हीगल के अनुसार राज्य एक सर्वोच्च संस्था है। वह राज्य को इस पृथ्वी पर ईश्वर का अवतार स्वीकार करता है परन्तु मार्क्स की मान्यता है कि राज्य एक वर्ग का दूसरे वर्ग के दमन और शोषण का यन्त्र है। मार्क्स राज्य को वर्ग–संघर्ष की उत्पत्ति और अभिव्यक्ति मानता है। आधुनिक राज्य बुर्जुआ वर्ग की एक समिति है जिसका उद्देश्य उसे सर्वधारा वर्ग के विद्रोह से बचाना है जो शोषण की इस प्रक्रिया से पीड़ित होते हैं।

3.3.4 सामाजिक क्रांति :

मार्क्स क्रांति को सामाजिक प्रगति का एक सशक्त चालक मानते थे। द क्रिटीक ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी में उन्होंने यह तर्क दिया कि प्रत्येक ऐतिहासिक युग के अंत में एक ऐसा बिंदु आता है जब नई उत्पादक शक्तियां पहले से विद्यमान वर्ग सम्बन्धों या सम्पत्ति सम्बन्धों के साथ संघर्ष करती हैं। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप सामाजिक क्रांति होती है। प्राचीन विश्व में कई दास विद्रोह और मध्यकाल में किसानों के विद्रोह हुए। 1642 में इंग्लैंड में, 1789 में फ्रांस में और 1848 में जर्मनी में जब सामंती समाज बुर्जुआ या मध्यम वर्ग द्वारा प्रतिस्थापित हुआ तो सामाजिक क्रांति हुई। पूंजीवाद के विकास और इसके द्वंद्वात्मक प्रतिलोम सर्वधारा के साथ अधिक निकट और जटिल संघटन के फलस्वरूप सामाजिक क्रांति का होना निश्चित है। अंतिम चरण सर्वधारा वर्ग द्वारा पूंजीवादी वर्ग का उन्मूलन है जब सर्वधारा उत्पादन के साधनों पर अधिकार कर लेता है और निजी सम्पत्ति को पूरी तरह समाप्त कर देता है। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में प्रत्येक चरण भौतिक उत्पादन की बाध्यताओं द्वारा अपरिहार्य बना दिया जाता है।

3.3.5 अभिनव समाज :

समाजिक क्रांति के लाभों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए पूंजीवादी वर्ग को उखाड़ फेंकने के बाद सर्वधारा वर्ग का एक अधिनायकवाद स्थापित किया जायगा। द कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो एक आदर्श स्थिति या 'यूटोपिया' की कल्पना करता है जिसमें एक वर्गविहीन समाज

के अंदर राज्य की संस्था का पूरी तरह लोप हो जाएगा। इसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार योगदान करेगा और इससे अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के साधन प्राप्त करेगा।

3.4 मार्क्सवादी इतिहास लेखन की समस्याऐं :

मार्क्स ने अपनी एक स्थापना देते हुए कहा था, ''दार्शनिकों ने अब तक इस संसार की सिर्फ व्याख्या की है। प्रश्न इसे बदलने का है।'' मार्क्सवाद अतीतबोध और वर्तमान समय के व्यवहार के बीच एक सहज सम्बन्ध देखता है। इस सम्बन्ध से यह संकेत मिलता है कि दोनों के बीच अनवरत अतःक्रिया चलती रहती है। जैसे–जैसे समय बीतता जाता है और इतिहास लम्बा होता जाता है वैसे–वैसे हमारा वर्तमान कालीन अनुभव हमारे सामाजिक– क्रियाकलापों की संभावनाओं तथा सीमाओं को स्पष्ट करता जाता है तो हम अपने अतीत की ओर मुड़ने लगते हैं। और हमें उनका नया बोध प्राप्त होता है। मार्कब्लाख फ्रांसीसी क्रांति को फ्रांसीसी कृषि इतिहास की निरन्तरता में देखते हैं, विच्छिन्नता में नहीं। यह दृष्टि उन्हें 1917 की रूसी क्रांति के बाद प्राप्त हुई। उसी प्रकार चीनी क्रांति एक महान क्रांति थी और 1949 में उसकी सफलता के बाद, हमें सोवियत किसानों की लामबंदी की सीमाओं के संदर्भ में एक नया बोध प्राप्त हुआ। अतीत और वर्तमान की एकता के संदर्भ में मार्क्सवादी इतिहासलेखन की यह बुनियादी जिम्मेदारी है कि वह अनुसंधान और पुनःअनुसंधान के लिए नए–नए पक्षों का उद्घाटन करता रहे और नए–नए प्रश्नों और उनके उत्तर तलाशना जारी रखे। 1917 के बाद के समाजवादी समाजों के इतिहास के संदर्भ में इसकी आवश्यकता को अधिक स्पष्ट ढंग से समझा जा सकता है। जाहिर है कि समाजवाद के विषय में इतिहास का अध्ययन सार्थक ढंग से केवल उस सूचना के आधार पर नहीं किया जा सकता जो मार्क्सवाद के क्लासिकीय ग्रंथ हमें उपलब्ध कराते हैं। समाजवाद का लम्बा तथा जटिल इतिहास न केवल समाजवादी देशों की जनता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है बल्कि उन सबके लिए भी महत्वपूर्ण है जो अपने–अपने समाजों को समाजवाद का रूप देना चाहते हैं।

विकसित ज्ञान ने हमें स्वभावतः यह दायित्व सौंपा है कि हम उपलब्ध सूचना के आधार पर पुरानी व्याख्याओं की जांच पड़ताल करें। यह एक निरन्तर प्रक्रिया है। हमें इतिहास के प्रति धर्म शास्त्रीय दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए। सामान्यतः मार्क्सवादी शिक्षा दी जाती है कि जब मनुष्य संसार में आया तो वह आदिम ढंग का साम्यवादी था। इस आदिम साम्यवाद के बाद दास प्रथा आई। उसके बाद सामंतवाद आया, फिर पूंजीवाद और चाहें जो हो, उसी क्रम में समाजवाद भी आएगा। यह तो एक प्रकार का धर्मशास्त्र है, मार्क्सवाद नहीं। मार्क्सवाद हमें यह शिक्षा देता है कि हम वास्तविक जीवन से जुड़ें। हमारा जो वास्तविक अतीत है और अतीत के विषय में हमारा जो ज्ञान है, वह हमारे अनुभव के समृद्ध होने के साथ–साथ ही विकसित होता जाता है।

हमेशा ही प्रतिद्वंदी व्याख्याऐं जन्म लेती रहती हैं। हो सकता है इस प्रतिद्वंदी व्याख्याओं का आधार वर्ग–दृष्टि न हो, किन्तु बुर्जुआ कहकर उनकी उपेक्षा करना बहुत विश्वसनीय नहीं होगा। हमें विरोधी विचारधाराओं की चुनौती का मुकाबला करना चाहिए और उनका विरोध करना चाहिए। यदि मार्क्सवाद को शून्य में रहने की सुविधा होती तथा किसी मार्क्सवादी को किसी विवाद में न फँसना पड़ता तो बहुत अच्छा होता। किन्तु इससे हम किसी को शिक्षित नहीं कर सकते। यदि आप किसी को आश्वस्त करना चाहते हैं तो आपको तर्क करना ही होगा और यदि आप तर्क करते हैं तो फिर दूसरे के तर्क को भी सुनना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुछ और बुनियादी चुनौतियां भी हैं। ग्रामशी ने बुखारिन की साम्यवाद पर लिखी ए.बी.सी श्रृंखला की आलोचना करते हुए लिखा था कि विचारों के युद्ध में, किसी सामान्य युद्ध के विपरीत, आपको अपने शत्रु के सर्वाधिक शक्तिशाली गढ़ पर प्रहार करना चाहिए, कमजोर ठिकानों पर नहीं।

इसके लिए अनवरत तैयारी तथा आत्मपरीक्षण की आवश्यकता होती है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के विस्तार तथा परिमार्जन की आवश्यकता होती है।

3.4.1 इतिहास में चेतना और पदार्थ :

मार्क्सवादी इतिहास लेखन के विषय में सामान्य रूप से जो भ्रामक धारणा बनी है उसका एक कारण तो वह पाठ्य–पुस्तकीय दृष्टिकोण है जिसके तहत मार्क्सवाद को नियतिवाद के पर्याय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जहाँ एक ओर मार्क्सवादियों ने इस मान्यता का विरोध किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने ऐतिहासिक भौतिकवाद की व्याख्या, उसी नियतिवादी शब्दावली में की है। हमें बताया जाता है कि किसी विशेष युग की प्रौद्योगिकी (उत्पादन की शक्तियाँ) उस युग के सामाजिक संबंधों (उत्पादन संबंधों) को निर्धारित करती है। ये दोनों मिलकर उत्पादन पद्धति का निर्माण करते हैं और उत्पादन पद्धति विचार जगत और सांस्कृति अधिरचना का निर्माण करती है। मार्क्स कहता है कि मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना का निर्धारण करता है। यह तो ठीक है कि तकनीक वर्गीय संबंध, उत्पादन पद्धति तथा संस्कृति की अंतःक्रिया निर्णायक रूप से महत्वपूर्ण है किन्तु यह कैसे कहा जा सकता है कि सम्बन्धों का एक पक्ष शेष सम्बन्धों के समीकरण का निर्धारण करेगा। कहा जाता है कि मार्क्सवाद पूंजीवाद की ही देन है। यदि पूंजीवाद ने मजदूर वर्ग को पैदा न किया होता तो उसकी उत्पत्ति भी सम्भव नहीं थी। किंतु यह सिद्ध करना बहुत मुश्किल होगा कि मार्क्स के बहुआयामी विचार अनिवार्य रूप से अथवा स्वतःस्फूर्त रूप से पूंजीवाद द्वारा उद्‌भुत परिस्थितियों की ही देन हैं। हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि पूंजीवाद ने मार्क्सवाद की पृष्ठभूमि तैयार की थी, किन्तु संरचना नहीं।

पदार्थ तकनीक को जन्म नहीं देता। मानव विचार ही उसको उत्पन्न करते हैं जो कुशलता, दक्षता तथा विज्ञान के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। मार्क्स यह मानकर चलते थे कि भविष्य में विचारों का महत्व बढ़ता जायगा। जब उन्होंने यह कहा कि भविष्य में मानव जाति आवश्यकता की परिधि को लांघकर स्वतन्त्रता के क्षेत्र में पहुँच जायगी तो यह विश्वास और दृढ़ होता है कि मार्क्स उत्सुकतापूर्वक यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि अंततः एक न एक दिन विचार पदार्थ पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेंगें। विचारों का यह वर्चस्व किसी अध्यात्मवादी गतिविधि के माध्यम से नहीं, अपितु उस प्रचुर भौतिक सम्पदा के द्वारा स्थापित होगा जिसे साम्यवाद के तहत उत्पादित करना संभव होगा।

वस्तुतः मार्क्सवाद भौतिकवादी नियतिवाद से अलग हटकर अतीत की व्याख्या भौतिक जगत के साथ उसके वास्तविक सम्बन्धों के संदर्भ में करता है और यह आशा करके चलता है कि एक न एक दिन मानवता की ही सार्वभौमिक सत्ता स्थापित होगी। यह सत्ता समाजवाद और साम्यवाद के तहत की जाने वाली प्रगति द्वारा स्थापित की जा सकेगी। यह प्रगति सामाजिक विकास के दो स्तरों वर्तमान और भविष्य पर घटित होगी।

3.4.2 सामाजिक संरचना और वर्ग संघर्ष :

अब तक मौजूद समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। कम्युनिस्ट घोषणापत्र के गूंजते हुए ये शब्द, ऐसा लगता है कि मार्क्सवादी इतिहासकारों की उन लंबी–लंबी बहसों में कहीं खो गए जो 'उत्पादन पद्धति', 'सामाजिक संरचना' और विशेष रूप से 'सामंतवाद' को लेकर चलती रही हैं।

मार्क्स एक महान सिद्धान्तवेता, पद्धतिकार तथा श्रेष्ठ तर्कशास्त्री थे। उनका वैचारिक प्रारूप बड़ा सुव्यवस्थित था। उनका ग्रंथ कैपिटल किस प्रकार पूंजीवादी संचय की ऐतिहासिक प्रवृत्ति के साथ समाप्त होता है। वे उसे क्रांति का आह्‌वान करते हुए समाप्त करते हैं। कैपिटल

में उनका विश्लेषण एक विशेष निष्कर्ष की ओर ले जाता है अर्थात् पूंजीवाद वर्ग को उखाड़ फेंकना।

सामाजिक संरचनाओं को परिभाषित करने का प्रश्न इसलिए उठता है कि बिना वर्गों को पहचाने आप वर्ग संघर्ष का अध्ययन नहीं कर सकते तथा वर्गों का संबंध उन रूपाकारों से होता है जिन्हें हम सामाजिक संरचना कहते हैं। सामाजिक संरचनाऐं, क्रमागत सामाजिक संगठनों का निर्माण करती हैं।

3.4.3 पूंजीवाद और उपनिवेशवाद :

मार्क्स ने न्यूयार्क ट्रिब्यून के लेखों, कैपिटल तथा अन्य रचनाओं में उपनिवेशों और इंग्लैंड में पूंजीवाद के उद्‌भव के बीच सम्बन्ध पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने पूंजी के प्राथमिक अथवा आदिम संचय के सिद्धान्त का निरूपण यह व्याख्यायित करने के लिए किया कि किस प्रकार उपनिवेशीय पूंजी से औद्योगिक क्रांति का जन्म हुआ।

उन्नीसवीं सदी के उपनिवेशवाद के मार्क्सवादियों में त्रुटि दिखाई पड़ती है। एक सीमा तक इसका कारण लेनिन की पुस्तक इंपीरियलिज़्म : द हाइएस्ट स्टेज ऑफ कैपीटलिज़्म की असाधारण लोकप्रियता रही है। उक्त पुस्तक से यह ध्वनि निकलती है कि साम्राज्यवाद पूंजीपतियों की उस स्पर्धा का एक माध्यम था जिसके तहत वे बाहरी इलाकों और धन को हड़पने में मशगूल थे और यह कि वह वित्तीय पूंजी तथा इजारेदारी के विकास के साथ अस्तित्व में आया। निःसंदेह लेनिन ने यहाँ तक कहा कि जब ग्रेट ब्रिटेन में स्वतन्त्र प्रतियोगिता अपने सर्वोच्च शिखर पर थी तो ब्रिटेन के प्रमुख राजनीतिक उसकी औपनिवेशिक नीति के विरुद्ध थे और उनका मत था कि ग्रेट ब्रिटेन से उपनिवेशों की पूर्ण मुक्ति अनिवार्य और वांछनीय है। यह दृढ़ विश्वास से कहा जा सकता है कि लेनिन ने यह नहीं लिखा होता है यदि उन्हें यह जानकारी होती कि मार्क्स उसी काल के मुक्त व्यापारियों (फ्री ट्रेडर्स) के उपनिवेश विरोधी व्यवसायों को स्वस्थ संदेह की दृष्टि से देख रहे थे। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र व्यापारिक पूंजीवाद के संदर्भ में उपनिवेशों की क्या भूमिका होती है ? यह भी मार्क्सवादियों के लिए एक साधारण सैद्धान्तिक समस्या है।

3.4.4 समाजवाद का इतिहासलेखन :

मार्क्सवादी इतिहास लेखन की एक स्वीकृत कमजोरी यह है कि इसमें समाजवादी समाजों के इतिहास का विश्लेषण नहीं मिलता। ये समाज 1917 की रूसी क्रांति के साथ अस्तित्व में आए थे। जिस प्रकार हमें मार्क्स के सुप्रसिद्ध ग्रंथ कैपिटल में पूंजीवादी समाज की गति के नियमों को समझने का एक सैद्धान्तिक प्रारूप मिलता है, वैसा प्रारूप समाजवाद के संदर्भ में नहीं मिलता।

3.5 मार्क्सवाद (ऐतिहासिक भौतिकवाद) का इतिहास लेखन पर प्रभाव :

ट्रायर हाई स्कूल में इतिहास मार्क्स का सबसे कमजोर विषय था। जर्मन इतिहासकार ट्रीस्के ने लिखा कि मार्क्स में ''एक विद्वान विवेक का पूरी तरह अभाव था'' और वे शोधकार्य आरम्भ होने से पहले यह जानते थे कि वे नया सिद्ध करना चाहते थे। ए.जे.पी. टेलर इसी धारणा को इंगित करते हुए प्रतीत होते हैं जब वे कहते हैं कि मार्क्स ने पहले से यह निर्णय ले लिया था कि वे क्या खोजना चाहते थे। मार्क्सवादी योजना के बारे में आर्थर मार्विक का मानना है कि यह वास्तविक अर्थ में अनैतिहासिक है क्योंकि इतिहास की घटनाओं के सटीक अध्ययन से पूर्व ही यह ऐतिहासिक विकास की विराट प्रणाली प्रस्तुत कर देता है। ऐतिहासिक पड़ताल को अद्वितीय और विशिष्ट तथ्यों से अनिवार्यतः आरम्भ होना चाहिए। मार्विक इस बात को लेकर आश्चर्यचकित है कि क्या मार्क्सवादी योजना अतीत को इसके अंदर से तथा इसकी अपनी शर्तों

पर देख पाती है! क्या ऐतिहासिक घटनाओं का केवल आसान सामग्री के रूप में प्रयोग नहीं किया गया है ताकि मार्क्सवादी सिद्धान्त को दृष्टांतों के साथ अभिव्यक्त किया जा सके।

मार्क्स ने यह विचार व्यक्त किया कि सामाजिक विकास के विधानों का प्रतिपादन और इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन की पूर्वपेक्षा संभव है। मार्क्स की द्वंदात्मकता सम्बन्धी संकल्पना भविष्यवाणियों और अतीत में हुईं सभी घटनाओं की व्याख्याओं से ओत–प्रोत है। किंतु जॉन ह्विट्टैम मार्क्स की उन भविष्यवाणियों की सूची प्रदान करते हैं जिनकी पुष्टि तथ्यों द्वारा नहीं हो सकती है। सर्वधारा निरन्त अधिकाधिक निर्धन नहीं हुआ। 1840 के दशक में मार्क्स ने जो कुछ देखा वह औद्योगिक विकास का मात्र आरम्भिक चरण था। पूँजीवाद के भीतर व्याप्त अंतर्विरोध समय–समय पर समाप्त होते रहे। मार्क्स का यह विश्वास कि क्रांति ब्रिटेन या संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे किसी उन्नत समाज में होगी कभी साकार नहीं हो सका, मार्क्सवादी क्रांतियाँ जब कभी हुईं हो मुख्यतः रूस, चीन, यूगोस्लाविया और क्यूबा जैसे कृषक समाजों में और उन परिस्थितियों में जो मार्क्स द्वारा पूर्वपेक्षित परिस्थितियों से भिन्न थी। उनकी यह धारणा थी कि मुक्त व्यापार का पूरे विश्व में प्रसार होगा गलत सिद्ध हुई और साथ ही उनका यह विचार भी सही साबित नहीं हो पाया कि यह अंतर्राष्ट्रीयतावाद के लिए सहायक होगा जो राष्ट्रवाद से अधिक सशक्त रूप में सामने आयगा। 1870 के दशक में टैरिफ की दीवारें खड़ी हो गईं और विश्व के कामगर एकजुट नहीं हो जाए बल्कि यूरोप के युद्ध के मैदानों में राष्ट्रीय हित के लिए एक–दूसरे से लड़ते रहे।

उपर्युक्त मूल्यांकन के बावजूद मार्क्स और एंगेल्स ने इतिहास लेखन पर जो प्रभाव निरन्तर डाला है वह बहुत महत्वपूर्ण है। पहले जिन ए.जे.पी. टेलर की चर्चा है उन्होंने ही यह भी लिखा है कि द कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो के कारण ''प्रत्येक व्यक्ति जब भी सोचता है तो राजनीति और समाज के सम्बन्ध में उसकी सोच बिल्कुल भिन्न होती है।'' मार्क्स–एंगेल्स योजना ने वस्तुतः पूंजीवाद की एक समालोचना को ऐतिहासिक विकास के एक सामान्य सिद्धान्त से संयोजित कर दिया। 1840 के दशक में पूंजीवाद की असमानताओं के बारे में मार्क्स के अवलोकन अनिवार्यतः सही थे जिसकी पुष्टि एंगेल्स की पुस्तक कंडीशन ऑफ द इंग्लिश वर्किंग क्लास (1845) में हुई। मार्क्स सामान्य पेशेवर इतिहासकार नहीं हैं इसके बावजूद उनकी दो रचनाऐं– द क्लास स्ट्रगल इन फ्रांस और द एटींथ ब्रूमेयर ऑफ लुई बोनापार्ट कालजयी साबित हुई। मार्क्सवाद ने तत्कालीन इतिहास लेखन को सबसे कठोर चुनौती दी।

3.5.1 बहुमूल्य संशोधन :

मार्क्सवादियों ने रैंकवादी पद्धति के अनुसार केवल तथ्यों के संकलन पर आधारित इतिहास में बहुमूल्य संशोधन किया। विदित है कि रैंक की पद्धति ने तथ्यों के सारभूत अंतर्संबधों पर कम ध्यान दिया। लेनिन के अनुसार– मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद वैज्ञानिक चिंतन में एक महान उपलब्धि था। इतिहास और राजनीति सम्बन्धी दृष्टिकोणों में पहले जो अव्यवस्था और स्वेच्छाचारिता दिखाई देती थी वह असाधारण रूप से सशक्त और सुसंगत वैज्ञानिक सिद्धान्त द्वारा प्रतिस्थापित कर दी गई। यह इस तथ्य को दर्शाता है कि कैसे उत्पादक शक्तियों के परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन की एक प्रणाली से एक अन्य और उच्चतर प्रणाली विकसित होती है।

3.5.2 दो आधारभूत योगदान :

नवजागरण और प्रथम विश्वयुद्ध के बीच के काल के अन्य यूरोपीय चिंतकों की भांति मार्क्स और एंगेल्स ने मानव प्रगति में विश्वास व्यक्त किया, किन्तु वे दूसरों से इस मायने में भिन्न थे कि उन्होंने उत्पादन की पद्धति को प्रगति का प्रमुख नियंता माना। द्वंदात्मक भौतिकवाद के गव्यात्मक रूवरूप के माध्यम से ही मार्क्सवाद ने इतिहास लेखन को प्रभावित

किया है। इस सिद्धान्त की केन्द्रीय धारणा यह है कि मानव इतिहास की समझ का सारभूत तत्व मनुष्य की उत्पादक गतिविधि है जो संघर्षों को जन्म देती है। जिनके द्वारा कोई समाज विकसित होता है। उत्पादन की पद्धति की खोजबीन और आधारभूत सामाजिक सत्ता के रूप में वर्ग द्वारा विश्लेषण ऐतिहासिक अध्ययनों का मार्क्स और एंगेल्स के दो मूलभूत अवदान हैं। मौलिक महत्व की इस अंतर्दृष्टि से मार्क्सवादी और गैर–मार्क्सवादी दोनों समान रूप से लाभान्वित हुए हैं। सच तो यह है कि गैर–मार्क्सवादी के लिए यह अधिक लाभप्रद रही है। मैक्स–वेबर जैसे समाजशास्त्रियों और सी.ए. बेयर्ड जैसे इतिहासकारों ने मार्क्स के प्रति अपने आभार व्यक्त किए हैं। वस्तुतः उत्पादन की पद्धति की पड़ताल और वर्ग विश्लेषण आज के ऐतिहासिक शोध में उतने सावंत्रिक कार्य हो गए हैं कि विद्वानों ने विशेष रूप से आभार या कृतज्ञता व्यक्त करना ही छोड़ दिया है। इन जुड़वा सिद्धान्तों से सम्बद्ध एक आवश्यक घटक अधिशेष मूल्य का सिद्धान्त है जो ऐतिहासिक विश्लेषण एवं पुनर्प्रस्तुति के एक उपकरण के रूप में सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तनों अर्थात् ऐतिहासिक परिवर्तनों की व्याख्या करने के लिए व्यापक तौर पर प्रयुक्त हुए हैं। मार्क्सवाद का संशयवादी और कल्पनाशील अनुप्रयोग अत्यन्त लाभकारी हो सकता है। यह सच है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद एक मूल्यवान पद्धति प्रदान कर सकता है। ऐतिहासिक विश्लेषण का आधार–अधिसंरचना मॉडल अतीत की एक समुचित समझ में एक सकारात्मक योगदान है। इतिहासकार विश्लेषण के उपयोगी उपादानों के रूप में या संघटक सिद्धान्तों के रूप में ऐसी सामान्य अवधारणाओं का लाभप्रद ढंग से प्रयोग कर सकते हैं।

3.5.3 इतिहास लेखन पर मार्क्सवाद का प्रेरक और मुक्तकारी प्रभाव :

लेनिन के इस दावे को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि इतिहास की भौतिकवादी धारणा ने ''सामाजिक सम्बन्धों की प्रणाली के वस्तुपरक विधान'' की खोज की और ''जनसाधारण के जीवन को प्रभावित करने वाली सामाजिक दशाओं तथा उन दशाओं में होने वाले परिवर्तनों का किसी प्राकृतिक विज्ञान जैसी सटीकता के साथ परीक्षण कर पाना सम्भव बना दिया।'' लेकिन आर्थर मार्विक के विचार को स्वीकार करना ही होगा कि ''इतिहास लेखन की विभिन्न समस्याओं का सामना करने में मार्क्सवाद का प्रभाव प्ररेक और मुक्तकारी रहा है।'' उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रकाशित इतिहास सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण रचनाओं पर मार्क्स का प्रभाव किसी न किसी रूप में दिखाई देता है।

3.5.4 भौतिकवादी मीमांसा कारणमूलक व्याख्या में सहायक :

भौतिकवादी मीमांसा कारणमूलक व्याख्या को सरल बना देती है। कुछ फ्रांसीसी और अमेरिकी इतिहासकारों, जिन्होंने बीसवीं सदी के इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण प्रगति को दर्शाया, की मीमांसात्मक रचनाओं के आधार पर इस विचार की पुष्टि की जा सकती है। फ्रांसीसी क्रांति और संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में उद्घोषित मानव अधिकार मनुष्य की प्रकृति के बारे में शाश्वत सत्य नहीं थे, उनकी सार्थकता को पूर्ण रूप से केवल उसी स्थिति में समझा जा सकता था यदि उन्हें सामंती अंकुशों को समाप्त करने तथा आर्थिक मामलों में मुक्त प्रतिस्पर्धा के लिए अभिनव वाणिज्यिक समूहों द्वारा की जाने वाली मांगों के संदर्भ में देखा जाए। डेविड मैकलेल्लान का अवलोकन है कि तीव्र सामाजिक संघर्षों के कालों में इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या सर्वाधिक सशक्त है। सामंतवाद से पूंजीवाद की ओर संक्रमण और यूरोपीय साम्राज्यवाद–विश्लेषणों के प्रभावशाली विषय रहे हैं।

3.6 मार्क्सवाद की महत्वता के कारण :

ऐतिहासिक अध्ययनों के विकास की दृष्टि से मार्क्स और एंगेल्स विशेष रूप से निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण हैं–

3.6.1 समाज के अध्ययन के रूप में इतिहास की धारणा :

मार्क्सवाद के साथ इतिहास उस रूप में समाज का इतिहास बन गया जिस रूप में आधुनिक समाज वैज्ञानिक इस पद का आशय समझते हैं। थीसिस ऑन फायरबाख में मार्क्स ने कहा कि मानवीय मूल्य सभी सामाजिक सम्बन्धों की समष्टि हैं। मनुष्य समाज में रहता है और वह समाज का या यूँ कहें कि समाज के एक निश्चित स्वरूप का उत्पाद है। मार्क्स और एंगेल्स ने द होली फैमिली में पहले ही यह घोषणा कर दी थी कि इतिहास अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील मनुष्य की गतिविधि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस तरह के विचार इतिहास को समग्र रूपी समाजिक घटना के रूप में स्थापित करते हैं। इस प्रकार इतिहास एक के बाद दूसरी घटना का केवल एक विस्तृत बेडौल और उद्देश्य रहित मात्र निरूपण नहीं रहा।

3.6.2 आर्थिक और सामाजिक इतिहास का प्रमुख विषयों के रूप में विकास :

हीगल की पुस्तक फिलास्फी ऑफ हिस्ट्री ने राज्य की भूमिका पर बहुत अधिक बल डाला और रैंक आदि इतिहासकारों ने लगभग पूरी तरह, स्वयं को राजनैतिक इतिहास पर केन्द्रित कर लिया। इतिहास की भौतिकवादी धारणा या आर्थिक व्याख्या ने राज्य को पृष्ठभूमि में धकेल दिया और आर्थिक जीवन की शक्तियों को सामने ला दिया। अब ऐतिहासिक रूचि राजनैतिक इतिहास अर्थात् राज्यों के शासकों तथा उनकी गतिविधियों के दायरे से बाहर निकलकर जनसाधारण की अधिसंख्य आबादी की ओर उन्मुख हो गयी। इस नवीन रूचि ने जो लाक्षणिक दिशाएं प्राप्त की वे आर्थिक एवं सामाजिक थीं।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में आर्थिक इतिहास को इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका में संस्थात्मक पहचान मिली और जॉर्ज अनविन और जे.एच. क्लैपहैम जैसे इतिहासकारों द्वारा आर्थिक इतिहास की अनेक महत्वपूर्ण कृतियों को सृजन किया गया। आर्थिक इतिहास से सामाजिक इतिहास की ओर कदम केवल एक सामान्य चरण नहीं था क्योंकि जीवन के दोनों पक्ष परस्पर एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। यद्यपि सामाजिक इतिहास के लेखन पर मार्क्सवाद के प्रत्यक्ष प्रभाव का कोई स्पष्ट दृष्टान्त नहीं मिलता फिर भी फेबियन समाजवादियों, उदारवादियों एवं परिवर्तनकारी बुद्धिजीवियों ने ब्रिटेन में इस विषय के अध्ययन के आरम्भ में अग्रणी भूमिका निभाई।

3.6.3 सामान्य जन की भूमिका :

आधुनिक इतिहास लेखन पर मार्क्सवाद का प्रभाव सामान्यजन के क्रियाकलापों पर इसके बल में देखा जा सकता है। द होली फैमिली ने इतिहास में जनसाधारण की अग्रणी भूमिका के संदर्भ में प्रमुख दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जो क्रांतिकारी युगों में विशेष तौर पर स्पष्ट व मुखर है। सामाजिक प्रगति के साथ उनके प्रभाव क्षेत्र का व्यापक होना निश्चित था। मार्क्स ने यह भविष्यवाणी की थी कि सामाजिक क्रांति एक ऐसे युग का सूत्रपात करेगी जिसमें जनसाधारण का आकार बढ़ेगा। समाज के अध्ययन के रूप में इतिहास को मिली पहचान ने हाल के वर्षों में सबॉल्टर्न अध्ययनों की एक श्रृंखला को जन्म दिया है जो समाज के अब तक उपेक्षित तबकों से सम्बद्ध अध्ययन है।

3.7 पूर्ण इतिहास :

यह विचार व्यक्त करते हुए कि भौतिक उत्पादन की पद्धतियां मानव जीवन के अन्य पक्षों को प्रभावित करती हैं मार्क्सवाद ने एक संघटक सिद्धान्त प्रदान किया है और अब इसे तथाकथित रूप से ''पूर्ण इतिहास'' का प्रतीक माना जाता है। पूर्ण या समग्र इतिहास का अर्थ

एक ऐसा इतिहास है जो कला, विचारों, राजनीति और अर्थशास्त्र के मध्य अंतर्सम्बन्ध पर बल देता है।

3.8 सारांश :

मार्क्स ने इतिहास के प्रारूप को आर्थिक परिवर्तनों में आविष्कृत किया। मार्क्स के चिन्तन की भले ही विद्वानों ने आलोचना की है परन्तु इसे पूरी तरह निरर्थक और आधार रहित नहीं कहा जा सकता। यद्यपि यह सत्य है कि इतिहास दर्शन के क्षेत्र में मार्क्स की कोई महत्वपूर्ण देन नहीं है, परन्तु इतिहास की आर्थिक व्याख्या इसके द्वारा प्रस्तुत एक नवीन विषय है। उसने पूंजीवाद के अवशेषों पर साम्यवाद के पौधों को लहराते देखा। मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों को दृढ़ता से अतीत पर आधारित किया परन्तु वर्तमान में वर्गहीन समाज के उद्देश्यों की पूर्ति की कठिनाइयों ने उन्हें भविष्य के विषय में सोचने के लिए बाध्य कर दिया। वर्गहीन समाज के संघर्ष का अभिप्राय सुखद भविष्य का निर्माण करना है। मार्क्स के अनुसार, भावी विश्व का समाज वर्गहीन होगा जिसमें शासक की आवश्यकता नहीं होगी। शोषण, दमन और अत्याचार से मुक्त वर्गहीन समाज की परिकल्पना आज भी एक आकर्षक सिद्धान्त है।

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. मार्क्सवादी इतिहास दर्शन की विवेचना कीजिए।
2. इतिहास की अवधारणा के सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
3. इतिहासकार के रूप में कार्ल मार्क्स का मूल्यांकन कीजिए।
4. वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।
5. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का आशय स्पष्ट कीजिए।
6. मार्क्स की महत्वता के कारणों का उल्लेख करते हुए चर्चा कीजिए।
7. इतिहास लेखन पर मार्क्सवाद के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
8. मार्क्सवादी इतिहास लेखन की समस्याओं का वर्णन कीजिए।

3.10 संदर्भ ग्रंथ :

गोविन्द चंद्र पाण्डे – इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त

ई. श्रीधरन– इतिहास लेख– एक पाठ्यपुस्तक

बी.के. श्रीवास्तव– इतिहास लेखन : अवधारणा, विधाएं एवं साधन

के.एल. खुराना एवं आर.के. बंसल– इतिहास लेखन, धारणाएं तथा पद्धतियाँ

जॉन बेलेनी फास्टर और इलेन मिकसिन्सबुड– इतिहास के पक्ष में

इरफान हबीब– इतिहास और विचारधारा

ई.एच. कार– इतिहास क्या है ?

इकाई चार: आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन – औपनिवेशिक इतिहासकार

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोत

4.4 मार्क्सवादी विचारधारा

4.4.1 द्वंदात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत

4.4.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धांत

4.4.3 वर्ग संघर्ष का सिद्धांत

4.4.4 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

4.5 साम्प्रदायिक विचारधारा

4.5.1 सम्प्रदायिक विचारधारा की अवधारणा

4.5.2 साम्प्रदायिक विचारधारा के चरण

4.5.3 साम्प्रदायिक विचार धारा का विकास

4.5.4 साम्प्रदायिक विचार धारा के आर्थिक व सामाजिक परिदृष्य

4.6 परम्परावादी विचारधारा

4.6.1 मध्यकालीन इतिहास लेखन परंपरा

4.6.2 आधुनिक इतिहास लेखन की परंपरा

4.6.3 औपनिवेशकालीन प्रमूख ऐतिहासिक ग्रंथ

4.7 साम्राज्यवादी इतिहास परम्परा

4.8 राष्ट्रवादी विचारधारा

4.8.1 राष्ट्रवादी इतिहास–लेखन के सकारात्मक पक्ष

4.9 सबाल्टर्न परम्परा (उपाश्रयी)

4.9.1 उपाश्रयी लेख की प्रवत्ति

4.9.2 उपाश्रयी लेखन की विशेषताएँ

4.10 सारांश

4.11 अभ्यास हेतू प्रश्न

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 उद्देश्य

इस ईकाई का उद्देश्य आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन की परंपरा पर प्रकाश डालना तथा साथ ही इतिहास लेखन की विभिन्न विचारधाराओं से अवगत कराना है इसके अध्ययनोपरांत आप अधोलिखित विचारधाराओं से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

(1) आधुनिक इतिहास के स्रोत

(2) मार्क्सवादी इतिहास लेखन

(3) राष्ट्रवादी इतिहास लेखन

(4) सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन

(5) परम्परावादी इतिहास लेखन

(6) सबअल्टर्न इतिहास लेखन

आधुनिक भारत के इतिहास लेखन पर दृष्टिपात करे तो स्पष्ट होता है कि इस समय के प्रशासक और विजेताओं को आधार मानकर इतिहास लिखा गया।

4.2 प्रस्तावना

आधुनिक इतिहास लेखन ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के साथ जुड़ा है इतिहासकार रैकें के अनुसार **इतिहास का वही स्वरूप दिखाना चाहिये जैसा वह है** ओपनिवेषिक काल के पूर्व भारत की लिखित संस्कृति व इतिहास की लंबी परंपराएं मिलती हैं। उनके इतिहास का उद्देश्य पौराणिक राजा, वंश, इतिवृत्त, जातियाँ, धार्मिक पंथो के इतिहास धर्मात्माओं की जीवनी, और परिवारों की वंशावलियां, थी एवं मध्यकाल में इतिहास वृत्तांतो की संख्या अधिक हो गई परन्तु इतिहास लेखन के उद्देश्य व मान्यताओं में कोई अंतर नहीं आया ब्रिटिश भारतीय इतिहास लेखन और ओपनिवेषिक ज्ञान ने पूरी तरह से पश्चिमी दृष्टिकोण को खोल दिया। ब्रिटिश वे विदेशी शासक थे जिन्हें राजस्व तथा न्याय की व्यवस्था बनाने के लिये अतीत के प्रशासन की जानकारी की आवश्यकता थी। इसलिये ओपनिवेषिक काल में इतिहास का अत्यंत विस्तार हुआ। इस प्रकार आधुनिक इतिहास ने बुद्धिजीवी वर्ग के मध्य नई केंद्रीयता प्राप्त कर ली। औपनिवेषिक भारत में इतिहास लेखन में बढ़ता हुआ प्रभुत्व हमारे समक्ष हैं इस काल में इतिहास का वस्तुनिष्ठ नजरिया देखने को मिलता है, आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन के क्रम में आर. सी. मजुमदार कहते है कि भारत में न तो ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव था न ही ऐतिहासिक रूचि का अर्थात भारतीयों की बुद्धिमता व बहादुरी का आधार विदेशी विभूतियाँ बनी। तथा आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन साम्राज्यवादी प्रभावों से युक्त रहा।

4.3 आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोत

इतिहास को लिखने के लिये स्रोत अत्यंत आवश्यक है आधुनिक भारत के इतिहास मे कुछ अधिनियम व कानून का उल्लेख मिलता है जो स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

(1) 1599 में ब्रिटिश क्राउन द्वारा कंपनी को भारत में व्यापार करने का अधिकार प्रदान किया गया।

(2) 1773 में ब्रिटिश संसद द्वारा रेग्यूलेटिंग एक्ट के द्वारा कंपनी ने भारतीय शासन में हस्तक्षेप किया।

(3) 1784 में पिटस इंडिया एक्ट।

अन्य सामग्री – इसके अंतर्गत शासकों के निजी पत्र–व्यवहार, आत्मकथाएँ, आत्म–विवरण, भारतीय धर्मों समुदायों का साहित्य, गैर सरकारी संगठन, संगठनों के लिखित दस्तावेज, लोकगीत, लोकस्मृति, कांग्रेस अधिवेशन इत्यादि।

4.4 मार्क्सवादी विचारधारा

मार्क्स के द्वारा निःसृत इतिहास के सिद्धांत के संबंध में अनेक तथ्य मिलते हैं। कार्ल मार्क्स का जन्म 1818 में जर्मनी में हुआ परंतु उनका अधिकांश लेखकीय जीवन इंग्लैंड में व्यतीत हुआ। मार्क्सवादी विचारधारा का पूर्ण विवरण या अभिधारणा जर्मन आडियोलॉजी में मिलता हैं जिसे मार्क्स ने एंगेल्स के सहयोग से 1846 में पूर्ण किया था। इसका पूरा अंश मार्क्स के जीवनकाल में प्रकाशित नहीं हो पाया। इसी विचारधारा का जीवंत स्वरूप **कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो** में मिलता है (1848) मार्क्स की मुख्य कृति **''दास केपिटल**'' एडम स्मिथ की कृति **वेल्थ ऑफ नेशंस** की तरह हैं जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर केन्द्रित हैं। 19वी सदी के अंतिम समय में प्रकाशित विचारधारा में मार्क्स की विचारधारा अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

मार्क्स के अनुसार जब भौतिक उत्पादन की शक्तियों और तत्कालीन उत्पादक संबंधों में विरोध पैदा हो जाता है तो सामाजिक क्रांति का काल प्रारंभ हो जाता हैं। ऐतिहासिक भौतिकवाद और अतिरिक्त मुल्यों का सिद्धांत इन दोनों का श्रेय मार्क्स को जाता है। मार्क्स के सिद्धांतो की व्याख्या निम्नाकिंत है।

(1) द्वंदात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत
(2) ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धांत
(3) वर्ग संघर्ष का सिद्धांत
(4) अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

4.4.1 द्वंदात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत

मार्क्स ने भौतिक तत्वों को आधार बनाकर सामाजिक परिवर्तनों को स्पष्ट किया यह तर्क वितर्क पर आधारित है यह संघर्ष पर बल देता हैं। जो वस्तु आँखों को दिखाई देती है उसके अस्तित्व को स्वीकारना ही भौतिकवाद है।

4.4.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धांत

इसका दृष्टिकोण यथार्थवादी है यह जीवन की भौतिक परिस्थितियों पर बल देता हैं। इतिहास में प्रकट सभी समाज, धन वितरित करके भी रीति वर्ग व क्रमों में विभक्त समाज के विभिन्न चरणों के स्वरूप को समझने की है, इसमें उत्पादन की शक्तियों व उनके सामाजिक संबंधों की व्याख्या की गई।

4.4.3 वर्ग संघर्ष का सिद्धांत

द कम्युनिष्ट मैनिफेस्टो में लिखा है कि अभी तक अस्तित्व में रहे सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का है। मनुश्य जब उत्पादन की प्रक्रिया में संलग्न होते है तो मूढ़ निश्चित संबंध बन जाते हैं तथा इनके समूह से आर्थिक ढाँचा बनता है तथा यही वह आधारशिला हैं जिस पर वैधानिक व राजनैतिक प्रसाद के साथ सामाजिक चेतना का विकास होता हैं।

इतिहास लेखन की आधुनिकधारा में मार्क्सवाद की भूमिका अहम हैं। मार्क्सवादी विचारधारा के ऐतिहासिक बिन्दु

(1) मार्क्सवादी विचारधारा यह पद्धति विकसित करती है विरोधी विचारधाराओं में क्या गलत व क्या सही हैं।

(2) आज की दुनिया कैसे बनी तथा मानवता का भविष्य बेहतर कैसे हो सकता है।

(3) इतिहास में आदर्शवाद की जगह भौतिकवाद

(4) मार्क्सवाद का योगदान इतिहास को आर्थिक और समाजशास्त्रीय स्वरूप प्रदान करने में है।

(5) इतिहास में तथ्यों के आधारभूत अंतः संबंधों पर बल दिया।

4.4.4 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

मार्क्स ने सामान्य विचार को पूंजीवादी ब्रिटेन पर लागू किया तथा पूंजीवाद के आर्थिक सिद्धांत को खोजा। मानव समुदाय का मूल प्रयत्न आर्थिक उत्पादन है इसके लिये वह श्रम का आधार ग्रहण करता हैं। मार्क्स के अनुसार जो वर्ग सामाजिक शक्तियों का नियमन करता हैं वह राजनैतिक शक्तियों का अधिष्ठाता होता हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा ने स्पष्ट किया कि इतिहास अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील मनुष्य की गतिविधियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। मार्क्सवादी भारतीय इतिहास लेखन ने भाषा, इतिहास, धर्म, संस्कृति, रहन–सहन, जीवनस्तर, कला साहित्य को भी विशेष स्थान प्रदान किया गया है, क्योंकि इनकी भूमिका इतिहास निर्माण में महत्वपूर्ण हैं।

समाज और सामाजिक संबंधों की प्रकृति को ठीक से समझना होगा। ताकि समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया का अन्वेषण हो सके। मार्क्स ने ऐतिहासिक समस्या को वैज्ञानिक पद्धति से समझने का प्रयास किया।

मार्क्स के अनुसार **पूंजीपति वर्ग आर्थिक साधनों पर अपने स्वामित्व का दुरूपयोग करता हैं और श्रमिकों के शोषण में लिप्त रहता हैं। जिससे श्रमिक वर्ग में असंतोष बढ़ जाता है और वर्ग संघर्ष का उदय होता हैं।**

मार्क्स ने हीगल की द्वंदात्मक पद्धति के विपरीत मन के ऊपर पदार्थ की प्रमुखता का प्रतिपादन किया जिससे द्वंदात्मक भौतिकवाद के दर्शन का जन्म हुआ। मार्क्स के अनुसार विचारों मे परिर्वतन से स्वतः व्यक्ति से व्यक्ति परिवर्तित हो जाता है यहां पर किसी अन्य हिंसा की अवश्यकता नहीं होती।

डॉ. कौशाम्बी भी मार्क्सवादी इतिहासकार हैं परंतु उन्होंने इस विचारधारा का प्रयोग नये रूप में किया उनके अनुसार **उत्पादन के साधनों व संबंधो में उत्तरोत्तर परिवर्तनों का तिथिक्रम के अनुसार किया गया प्रस्तुतीकरण ही इतिहास हैं।** भौतिकवादी व्याख्या के आधार पर ही समाज का आर्थिक विकास निर्भर करता हैं, तथा आर्थिक विकास के आधार पर व्यक्ति की कार्यकुशलता में वृद्धि होती हैं।

कौशाम्बी का चिंतन वस्तुपरक व समग्र दृष्टिकोण से पूर्ण था उनके द्वारा इतिहास की अन्य सहयोगी शाखाएं जैसे राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक घटकों को भी प्रस्फुटित किया गया। मार्क्सवादी विचारधारा के लेखन में राजनीतिक व इतिहासकार दोनों ही शामिल हैं। मार्क्स के द्वारा भारत की प्राचीन संस्कृति को इतिहास लेखन में नगण्य रखा गया। बीसवी शताब्दी के बाद कुछ मार्क्सवादी इतिहासकारों ने इतिहास के अतिरिक्त अन्य बौद्धिक तत्वों को लेखन का हिस्सा बनाया, इनके अनुसार आर्थिक स्थिति ही व्यक्ति की प्रगति, सफलता व कुशलता की द्योतक होती है तथा इसके लिये भौतिक संसाधनों का महत्वपूर्ण स्थान है। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप **क्रांति द्वारा ही वर्गहीन समाज की स्थापना हो सकती हैं।** आधुनिक इतिहास के मार्क्सवादी लेखकों ने राष्ट्रवादी इतिहास को मार्क्सवाद

के साथ राष्ट्रीय चिंतन से भी युक्त बनाया उदाहरण – **विपिन चन्द्र, रजत राय तथा रजनी पामदत्त जैसे लेखकों ने मार्क्सवाद को अपनाकर भी राष्ट्रवाद के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण दिया,** एम. एन. राय ने कहा कि **इतिहास की आर्थिक व भौतिकवादी व्याख्या इतिहास का एक विषय है।** क्रांति को लेकर मार्क्स का विचार स्पष्ट है। परन्तु वह इसकी रूपरेखा को स्पष्ट नहीं करते, परंतु इतना स्पष्ट है कि वे विचारों व भावनाओं पर अत्यधिक जोर देकर क्रांति की बात करते हैं। मार्क्स के अनुसार व्यक्तित्व की नेतृत्व क्षमता आवश्यक नहीं की पूरे समाज को प्रभावित करे क्योंकि समाज में अलग अलग विचारधारा के वर्ग है तथा प्रत्येक वर्ग अपने चिंतन तथा दायरे के अनुरूप किसी का चयन करता हैं। कुछ व्यक्ति समाज के सभी वर्गो पर प्रभाव डालते है परन्तु(अपवाद स्वरूप उदाहरणतः– रूस की क्रांति लेनिन का व्यक्तित्व) मार्क्स पूंजीवाद के कटु आलोचक थे। मार्क्स ने शोषित वर्ग को लेखन का केन्द्र बिन्दु माना। **ऐंगल्स के शब्दों** में ''**जो मार्क्स ने किया वह वह मेरे लिये संभव नही था उन्होंने सर्वहारा वर्ग के प्रभुत्व को स्थापित करने के लिये व्यावहारिक विचारधारा को प्रस्तुत किया।** हीगल ने जहां द्वंदात्मक की संकल्पना की वही मार्क्स ने विचारों को जीवन की आधारभूत सत्ता की परिणति कहा, मार्क्स ने इतिहास को **चार चरणों** में विभाजित किया

(1) ऐशियाई (2) पुरातन (3) प्राचीन युरोपीय (4) सांमती व पूंजीवादी

इतिहासकारों पर मार्क्स का प्रभाव दो रूपों में दिखाई पड़ता है।

(1) आदि समुदाय से पूंजीवाद तक मानव के विकास का क्रम

(2) अतीत से जुड़े कालखंडों व समस्याओं का अध्ययन,

सामाजिक विकास क्रम इतिहास के तथ्यों की व्याख्या करने में सक्षम होते है मार्क्स के ऐतिहासिक लेखन में सभी आयाम परिलक्षित होते हैं, इतिहासकारो पर मार्क्स का प्रभाव दो रूपों में दिखाई देता है

मार्क्स के अनुसार समाजिक विकास क्रम इतिहास के तथ्यों की व्याख्या करने में सक्षम होते हैं सामाजिक व आर्थिक व्यवस्थाओ की क्रमिकता में एक निश्चित क्रम होता है व्यवस्थाओं में मौजूद आन्तरिक अन्तर विरोध ऐतिहासिक बदलाव के लिये आवश्यक है तथा यह बदलाव ही विकास मे रूपान्तरित हो जाता है। **इतिहास लेखन में मार्क्स वाद का प्रभाव अहम है तथा समकालीन इतिहास पर उनके विचारों ने प्रभाव डाला जो कि 19वीं सदी के उत्तरार्ध में मार्क्स का प्रभाव इतिहास लेखन में दिखाई देता हैं।**

4.5 साम्प्रदायिक विचारधारा

सम्प्रदायिक शब्द धर्म के साथ जुड़ता है परन्तु धर्म में व्यापक ,विस्तृत विचारधारा होती है तथा सम्प्रदाय सीमित व खंडित विचारधारा वाले समूह के लिये प्रयुक्त होता है। साम्प्रदायिकता एक ऐसी चिंतनधारा है जो तरह –तरह के वेश धारण करके सामने आती है कभी धर्म संस्कृति व अन्य रूपों में आती है। सम्प्रदायिक विचारधारा का संबंध राजनीतिक सत्ता प्राप्ति से है, सम्प्रदायिक विचार धारा किसी एक समुदायिक को अपनी गतिविधियो का समष्टि रूप व आधार स्वीकार करती है तथा अन्य समुदायों को प्रतिकूल सिद्ध करती है। इस विचारधारा की तरह समाज मे एक दूसरे के प्रति वैमनस्य एवं घृणा की भावना का प्रचार प्रसार होता है तथा इसकी मंजिल अपने समुदाय तक सीमित रहती है इसके समकक्ष राष्ट्र या अन्य समुदायिक प्रश्नो का सवाल ही नही उठता।

इतिहासकारों द्वारा राजनैतिक व आर्थिक प्रभुत्व को स्थापित करने के लिये इसे अपनाया गया। साम्प्रदायिक विचारधारा चिंतन प्रक्रिया के विकास का तर्क होता है। लोकतांत्रिक समाज नागरिकता पर टिका होता हैं जो कि लिंग, जाति व धर्म से परे होकर सभी को समान अवसर प्रदान करता हैं। सांप्रदायिक राजनीति व धर्म राष्ट्रीय समुदाय को धार्मिक समूह में विभाजित करता हैं।

यूरोप में जाति आधारित राष्ट्रवाद ने अन्य देशों के आगुंतक को भयभीत किया इसलिये वहाँ राष्ट्रवाद ने लोकतंत्र को कब्जे में रखा साम्प्रदायिक राजनीति के दल सभी जगह बने , इनकी चेतना की जड़ें विभिन्न क्षेत्रों में जैसे इतिहास , जनसंख्या , संस्कृति , व आर्थिक पक्षों में होती है। यहाँ तथ्यों व घटनाओं को विकृत रूप में प्रस्तुत कर प्रभावशाली ताकतें इन्हें सांप्रदायिक रंग देने की कोशिश करती हैं। मिथक व मान्यताओं को साम्प्रदायिक विचारों में बदल दिया जाता है । सांप्रदायिक विचारक यह भूल जाता है कि धर्म के मानने वालों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में अंतर होता है। संप्रदाय सीमित व खंडित विचारधारा वाले समूह के लिये प्रयुक्त होता हैं। अर्थात किसी दुसरे संप्रदाय विशेष में दूसरे संप्रदाय विशेष के लिये धार्मिक विश्वासों या कोई कारण से घृणा, द्वेश, व हिंसा की भावना का प्रदर्शन ही साम्प्रायिकता है।भारत में सांप्रदायिकता का जन्म उपनिवेशवाद के दबाव तथा उसके विरूद्ध संघर्ष करने की जरूरत से उत्पन्न परिवर्तनों के कारण हुआ।

4.5.1 सम्प्रदायिक विचारधारा की अवधारणा

यह एक ऐसी विचारधारा है जिसमें समाज विभिन्न हितों से युक्त धार्मिक समुदाय में विभक्त होता हैं। यह एक ऐसी संकीर्ण मनोवृति है जो धर्म व सम्प्रदाय के लिये समाज तथा राष्ट्र के व्यापक हितों के विरूद्ध व्यक्ति केवल अपने व्यक्तिगत धर्म के हितों को प्रोत्साहित करने की भावना को पोषण देता है।

4.5.2 साम्प्रदायिक विचारधारा के चरण

सम्प्रदायिकता एक विचार धारा के रूप में है इतिहासकारों ने राजनीतिक व आर्थिक प्रभुत्व को स्थापित करने के लिये इसका प्रयोग किया साम्प्रदायिक चिंतन प्रक्रिया के विकास का अपना तर्क होता है इससे गुजरे देशों ने इस विचार धारा के कारण तथ्यों व घटनाओं को विकृत रूप मे प्रस्तुत करके पूरे परिदृष्य को साम्प्रदायिक रंग देने की कोशिश करते हैं।इसका लेखन समुदाओं को तर्क प्रदान करने का माध्यम बन गया इसने भारत मे विद्यमान दूसरे विभाजनों को नजर अंदाज कर दिया।

मौलिक रूप से इसके तीन चरण है।

(1) **साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद**– एक समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों के हित समान होते हैं।
(2) **उदारवादी साम्प्रदायिककता** – इनका हित अन्य किसी के हितों से भिन्न होता है।
(3) **चरम साम्प्रदायिकता** – इसमें हित विरोधी होते हैं।

4.5.3 साम्प्रदायिक विचार धारा का विकास

इसका विकास उन्हीं परिस्थितियों का प्रतिफल था जिन्होंने दूसरे समाज में साम्प्रदायिकता जैसी घटनाओं व विचारधाराओं को जन्म दिया जैसे नस्लवाद,फासीवाद, साम्यवाद,कैथोलिक प्रोस्टेटेण्ट संघर्ष, इसाई–मुसलिम संघर्ष, भारत में इसका जन्म उपनिवेशवादी नीतियों तथा उसके विरूद्ध संघर्ष की परिस्थतियों से उत्पन्न परिवर्तन के कारण हुआ।

19वीं शताब्दी में नई राजनैतिक विचारधारा का जन्म हुआ। संकीर्ण सामाजिक प्रतिक्रियावादी तत्वों ने इसे पूर्ण समर्थन दिया तथा भारत में धार्मिकता ने इसके लिये उत्प्रेरक की भूमिका अदा की।

4.5.4 साम्प्रदायिक विचार धारा के आर्थिक व सामाजिक परिदृष्य

उपनिवेषिक कालीन प्रशासन ने व्यक्तिगत गुणों तथा पक्षपात का उपयोग साम्प्रदायिकता के उत्थान के लिये किया। 1857 के विद्रोह व वहाबी आन्दोलन से ब्रिटिश सरकार ने दमन व भेदभाव की नीति अपनाई 1870 के पश्चात राष्ट्रवाद का उदय हुआ तथा चेतना का प्रसार हुआ जिसके कारण बिट्रिश सरकार ने इसका प्रयोग राष्ट्र विरोधी ताकतों के लिये किया। सुधार आन्दोलनों ने स्वयं को अपने समुदाय तक सीमित रखा, इससे व्यक्तिगत धार्मिक स्वरूप के कारण उग्रवादी चरित्र रेखांकित हुआ जो साम्प्रदायिकता का एक कारण बना।

उग्रवादी राष्ट्रवाद हावी हुआ तथा लखनऊ समझौता व खिलाफत अन्दोलन का भी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप इसका कारण बना।

4.6 परम्परावादी विचारधारा

4.6.1 मध्यकालीन इतिहास लेखन परंपरा

अरबी लेखन की विषयवस्तु अरबों द्वारा साम्राज्य विस्तार के लिये लड़े गये युद्ध हैं, इसमें धार्मिक परंपराओं का लेखन मिलता हैं। इब्न खाल्दुन का इतिहास के प्रति दृष्टिकोण में सामाजिक परिवर्तन, जातियों की आपसी क्रांति, राज्यों व राष्ट्रों के विभिन्न रूपों का प्रादुर्भाव होता हैं। इतिहास उन परिवर्तनों का वृतांत है जो समाज के स्वरूप में होते रहते हैं।

फारसी इतिहास लेखन की परंपरा समृद्ध थी, यह मूलतः राजकीय सोच पर आधारित था इनके इतिहासकार इतिहास को कहानी स्वरूप मानते थे। उनका कार्यक्षेत्र बादशाहों की राजसत्ता व कार्यप्रणाली तक सीमित था।

इस्लामी इतिहास लेखन में साक्ष्यों की सहायता से यथार्त को स्पष्ट किया गया है यह इतिहास अरबी, फारसी व तुर्की भाषा में रचित हैं। भारत में इस्लाम के साथ इतिहास लेखन परंपरा विकसित हुई। अलबरूनी के पश्चात मध्यकालीन इतिहास की वृहत् परंपरा मिलती हैं। इनका लेखन धर्मपरक था यहाँ पर लेखन की तीन परंपराओं का उल्लेख मिलता है

(i) दरबारी इतिहासकार जो सम्राट की प्रशंसा परक घटनाओं से लेखन करते थे।

(ii) वे इतिहासकार जो शासक वर्ग के आलोचक थे उदाहरणतः.– बदायुंनी।

(iii) तटस्थ परंपरा जिसमें निष्पक्ष तरीके से लेखन किया जाता था।

4.6.2 आधुनिक इतिहास लेखन की परंपरा

ईसाई व इस्लाम के उदय के साथ घटनाओं को तर्क के स्थान पर दैवीय इच्छा के रूप में देखा जाने लगा व ब्रिटिश इतिहासकारों ने इतिहास ग्रंथों में साम्राज्य निर्माण के विषय में अंग्रेजों के शासन को उचित ठहराने के विचारों को जन्म दिया।प्रत्यक्षवादी इतिहास लेखन ने 19वी व 20वी शताब्दी तक अपना प्रभाव जमाये रखा।उपनिवेशवाद में इतिहास के अनेकों आयाम सामने आये।

19वी शताब्दी में इतिहासकारों ने भारत के लिये सामाजिक डार्विनवादी अवधारणा विकसित की इस विचारधारा के अनुसार इतिहास संस्कृतियों के बीच होने वाला संघर्ष है तथा शासन वही करता है जिसकी

क्षमता बेहतर होती है। औपनिवेषिक इतिहासकारों ने अंग्रेज शासकों को किवंदती के रूप में प्रस्तुत किया इनका उद्देष्य राष्ट्रीय आंदोलन की आलोचना करना था, इन्होंने सांस्कृतिक वर्चस्व स्थापित करने के लिये इतिहास को साधन के रूप में उपयोग किया।

हरबर्ट स्पेन्सर ने युरोपीय उत्कर्ष की योजना प्रस्तुत की जब विक्टोरियन अपने उत्कर्ष पर था तो ब्रिटिशों के द्वारा खुलकर विरोधी विचारों को प्रस्तुत किया गया। उपनिवेषिक हितों के कारण अंग्रेज भारतीय धर्म ग्रथों से तथा ऐतिहासिक तथ्यों से न्याय नहीं कर पाये परंतु कुछ इतिहासिकारों ने औपनिवेशिक इतिहास में भारतीय सभ्यता, संस्कृति, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था के साथ अपने लेखन को स्पष्ट किया।

सर हेनरी मेन ने भारत की प्राचीन संस्थाओं का अध्ययन किया वे न्यायिक इतिहासकार थें। मैक्स वेबर द्वारा समाजशास्त्र के विकास के संबंध में लिखा गया।अल्फ्रेड ने अतीत की घटनाओं को समझने के लिये भारतीय समाज व संस्था के ज्ञान का उपयोग किया। इन्होंने कहा था कि भारत व यूरोप की सभ्यता एक समान है परन्तु भारत का विकास एक चरण पर जाकर रूक गया है।

20वी शताब्दी में इतिहास लेखन की नई प्रवृत्ति विकसित हुई।

4.6.3 औपनिवेशकालीन प्रमूख ऐतिहासिक ग्रंथ

ब्रिटिशकालीन लेखक जेम्स मिल ने भारत के इतिहास पर अनेक ग्रंथ लिखे। **जेम्स मिल** ने अपने ग्रंथ History of British India को प्रकाशित किया इसके लेखन से कंपनी के द्वारा भारत का इतिहास जानने की कोशिश की गई, इसी श्रंखला में डफ, कर्नल टॉड तथा कनिंघम का नाम भी उल्लेखनीय हैं।ग्रान्ट डफ ने मराठा इतिहास पर कार्य किया। मार्क विल्कीस ने मैसूर का इतिहास लिखा,माल्कम ने लेखन में भारत की भौगोलिक स्थिति तथा भारतीय धर्म की जानकारी को प्रस्तुत किया। कर्नल टॉड ने राजपूतों के उदय से लेकर उनकी संस्कृति पर प्रकाश डालने का कार्य किया।कनिंघम ने सिक्खों का इतिहास गुरू नानक से लेकर पंजाब में ब्रिटिश शासन की स्थापना काल तक लिखा। एलफिन्सटन ने अपने इतिहासिक ग्रंथों में भारत के प्राचीन गौरव का भी पक्ष रखा, यह प्रथम इतिहासकार है जिसने तिथिक्रम के आधार पर एतिहासिक लेखन को बल दिया।लार्ड मैकाले ने भी भारतीय इतिहास पर कार्य किया। जान विलियम ने अपने लेखन में रेखांकित किया कि ब्रिटिष प्रशासन अपने हितों को पोषण देने में लगा रहा उसने भारतीय विकास पर ध्यान नहीं दिया। हेनरी बैवरिज ने इतिहास लेखन में निष्पक्षता का दावा किया, परंतु उसका लेखन अपूर्ण माना जाता है। हंटर का इतिहास लेखन महत्पूर्ण है उसने भारतीय इतिहास के नये आयामों की रचना की, वह उदारवादी था, उसने भारत में व्यावसायिक इतिहास लेखन को भी प्रोत्साहन दिया। अल्फ्रेड लायल द्वारा अनेक निबन्ध भारतीय इतिहास से संबंधित लिखे गये। विन्सेट आर्थर स्मिथ ऐसा प्रथम इतिहास लेखक है जिसने लेखन के दौरान उपलब्ध साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों का पूर्ण रूप से प्रयोग किया।

आधुनिक भारत में ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा लिखा गया इतिहास, भारतीय दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं था।अतः भारतीय इतिहासकारों ने अपनी स्वयं की पद्धति व अध्ययन क्षेत्र को विकसित किया।राजेन्द्रलाल मिश्रा ने भारतीय इतिहास, संस्कृति व पुरातत्व पर लेख लिखे। उनका लेखन महत्वपूर्ण माना जाता हैं। रमेशचन्द्र दत्त द्वारा economic history of India को लिखकर आर्थिक स्थिति का अवलोकन किया गया। मोहम्मद लतीफ ने history of Punjab की रचना की तथा ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास

किया। श्यामदास वीर ने मेवाड़ के इतिहास को ताम्रपत्र, सिक्के व अन्य साक्ष्यों के साथ प्रस्तुत किया।सर सैयद अहमद खाँ ने धर्म व इतिहास विषय पर लिखा उनका लेखन मूल दस्तावेज पर आधारित था।सर जदुनाथ सरकार ने जाति, धर्म व देश की सीमाओं से स्वतंत्र होकर लेखन किया जिसमें इतिहास लेखन की दिशा का निर्धारण किया।मराठा इतिहास को नये परिप्रेक्ष्य में गोविन्द सखाराम सर देसाई ने प्रस्तुत किया।सरदार के. एम. पनिक्कर ने इतिहास की उस परंपरा का खंडन किया जो ब्रिटिश दृष्टिकोण से प्रभावी थी।इतिहास लेखन के क्रम में आधुनिक भारत में परिवर्तन के अनेको चक्र आये तथा नई पद्धतियां, विषय, दृष्टिकोण, विचारधारा के अनेकों आयाम प्रस्फुटित हुए।पिछली शताब्दी में इतिहास लेखन की नयी धारा का विकास तीव्रता से हुआ।

4.7 साम्राज्यवादी इतिहास परम्परा

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय इतिहास लेखन साम्राज्यवादी लेखन के प्रभाव में ही रहा। साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा उसी सामग्री का प्रयोग किया गया जो उनकी विचारधारा को स्थापित कर सके।

इतिहासकार विसेंट स्मिथ को साम्राज्यवादी माना जाता हैं क्योंकि उन्होंने Early History of India में अपने दृष्टिकोण को व्यक्त किया है, उनके द्वारा भारतीय इतिहास में अशोक, चन्द्रगुप्त द्वितीय व अकबर को भी महान माना है तथा सिकंदर के आक्रमणों को वर्णित करते हुए ऐशियाई सैन्य बल की दुर्बलताओं को भी दिखाया हैं।

लार्ड मिण्टो के कार्यों में भी साम्राज्यवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है, साम्राज्यवादी विचारक यह स्पष्ट करने के प्रयास में लगें थे, कि भारत में राजनैतिक चेतना का संचार ब्रिटिश के द्वारा संभव हुआ है।

स्मिथ के द्वारा भारत की राजतंत्रात्मक व्यवस्था को उल्लेखित किया गया है जबकि उस समय पर लिच्छवी व यौधेय गणराज्य भी थे। स्मिथ द्वारा अंग्रेजों को चन्द्रगुप्त का उत्तराधिकारी सिद्ध करने का प्रयास किया, नेपोलियन की तुलना समुद्रगुप्त से करने का कारण स्मिथ की साम्राज्यवादी विचारधारा ही है, स्मिथ ने राजपूतों को विदेशी माना है जो कि सर्वधा असत्य हैं।

रोमिला थापर के अनुसार यह प्राच्चविद्या का पहलू था जिसमें ज्ञान के उपयोग को शक्ति का स्वरूप समझने का सिद्धांत अंर्तनिहित है।

इलियट और डाउसन के साम्राज्यवादी लेखन में फारसी में लिखें गये अंशों का अनुवाद था। वेलन्टाइन की कृति में भी साम्राज्यवाद प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैं। उनके द्वारा बाल गंगाधर तिलक को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिये हानिकारक माना गया।

रामशरण शर्मा के अनुसार साम्राज्यवादी विचाराकों ने भारत की एकपक्षीय व्याख्या की है। साम्राज्यवादी इतिहासकारों का उद्देश्य साम्राज्यवादी उपागम के द्वारा भारत में स्थित ब्रिटिश शासन को मजबुती देना था।

मिल के इतिहास लेखन में भारत के प्राचीन अतीत को हिंदु सभ्यता कहने भर से प्राचीन अतीत की विभिन्न संस्थाओं, संस्कृति, सामाजिक नियम कानूनों व राज व्यवस्था की आलोचना हो जाती है। मिल का इतिहास दर्शन तथ्यों के आधार पर सामाजिक–राजनैतिक इतिहास लिखना नहीं, बल्कि सभ्यताओं का इतिहास लिखना रहा हैं।

ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी हेनकी इलियट भी साम्राज्यवादी इतिहासकार हैं। इनकी योजना मुस्लिम शासन के विभिन्न स्रोतों से प्राप्त इतिहास की तथा इतिहासकारों के लेखन को व्यवस्थित रूप से संकलन करने की थी परंतु उनकी मृत्यु की वजह से वे कार्य का पूर्ण नही कर सके तब प्रोफेसर जान डाउसन ने 1867–1877 के मध्य "The History of India as told by its own historians" का प्रकाशन किया, इसमें इतिहास चरित संबंधित रचनाओं का संकलन था, इनके इस अध्ययन का उद्देश्य साम्राज्यवादी निहितार्थो का अध्ययन करना था ।

साम्राज्यवादी इतिहासकार इलियट ने मध्यकालीन इतिहासकारों और यात्रा वृतांत पर लिखा है कि ये इतिहासकार समाज के विषय में नही सोचते तथा इनके समाज के विभिन्न तत्वों से परस्पर संबंध कैसे होते हैं। इस प्रकार के विषय पर ये जानकारी नहीं देते तथा इनके लेखन में कृषि, पुलिस, व पंचायतों की जानकारी का अभाव देखने को मिलता हैं। इलियट व जेम्स मिल दोनों ही इतिहासकार यह सिद्ध करना चाहते थे कि ब्रिटिश गुलामी को नापसंद करना ही मध्यकालीन अंधकार में लौट जाने की आकांक्षा का प्रतिरूप है।

19वी सदी में भारतीय दृष्टिकोण को प्रभावित किया, माउंट स्टुअर्ट एलफिस्टन ने, एलफिस्टन की कृति दी हिस्ट्री ऑफ इंडिया का भी योगदान है, माउंट स्टुअर्ट एलफिस्टन ब्रिटिश समाज व भारतीय समाज के मध्य उदारवादी विचारक का स्थान रखते है।

जेम्स मिल कभी भारत नही आये तब भी उन्होंत भारत के बारे में लिख दिया, परंतु मांउट को कंपनी ने 1795 में गवर्नर नियुक्त किया था। कंपनी के कार्यो से वह पेशवाओं के साथ रहे। भारत में लंबे प्रवास के दौरान यहाँ की विभिन्न भाषा, इतिहास, संस्कृति, समाज और राजनीति पर जिज्ञासा के कारण उन्हें इतिहास लिखने की स्वतः प्रेरणा मिली। उन्होंने एशियाटिक सोसायटी के विद्वानों की मान्यताओं का अध्ययन किया तथा उस आधार पर लेखन किया।सी. एच. फिलिप्स का मत है, कि एलफिस्टन का मूल्याकंन भिन्न था, परंतु कहीं–कहीं वे अपने मत को स्पष्ट नहीं कर पाये। एलफिस्टन के अनुसार भारत में निवास के बाद यहां के निवासियों के साथ आक्रांताओं के सोचने समझने के तरीके व आचरण में परिवर्तन आया।

इसी दर्शन के कारण भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने एलफिस्टन को उन्हें अपने कालिदास के जीवन चरित्र में याद किया।

मिल और एलफिस्टन के इतिहास लेखन पर शेख अली लिखते है कि मिल का लेखन यह स्पष्ट करता है कि मनुष्य की खुशहाली उनकी स्वाधीनता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण थी तथा वही एलफिस्टन के लेखन से स्पष्ट है कि वह मानवीय अधिक था।

इस समय के लेखन में राजनैतिक गतिविधियां भी हावी रहीं, 1857 के दिल्ली व अवध के गदर के कारण मिल की मान्यताएं अधिक उपयोगी साबित हुई ब्रिटिश प्रशासन के लिये इसी समय कुछ इतिहासकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुई। विन्सेंट स्मिथ की Early History of India , स्टेनली पूल की कृति मिडिवल पीरियड अंडर मोहम्मदन रूल इत्यादि साम्राज्यवदी दृष्टिकोण के कारण इलियट डाउसन व स्मिथ जैसे इतिहासकार यह निष्कर्ष निकालते हैं कि 17वीं–18वीं सदी में भारत राजनैतिक, अराजकता, सांस्कृतिकता जड़ता और सांस्कृतिक अंधकार में डूबा जा चुका था। ब्रिटिश शासन सभ्यता के सूर्योदय ने इसी समय भारत को उसकी अंधकारग्रस्त व पतनशील अवस्था से उबार लिया।

इस विचारधारा का खंडन ए. आर. देसाई, रामविलास शर्मा, आबिद हुसैन जैसे विद्वानों ने किया है, अतीत की व्याख्या के सहयोग से ईसाई लेखकों ने भी कार्य किया परंतु उनका उद्देष्य धर्म के प्रचार पर था जबकि साम्राज्यवादी इसके समाधान के लिये यूरोपीय नक्शे कदम पर नये कानून व राज्य शक्ति के पक्ष मे थे।

इसी दौर में बंगाल व महाराष्ट्र में एक वर्ग खड़ा हुआ जो परंपरागत चीजों की आलोचना कर रहा था। आधुनिकता तथा परंपरा के इस विवाद में तर्क निकल कर आया कि उपनिवेषवाद यदि सभ्यता संबंधी मिशन को हटा ले, तो उसके पास बचाव का कोई तर्क नहीं हैं।प्राच्यवादियों की अतिशयोक्ति व साम्राज्यवादियों की अतिरेकपूर्ण विचारों की टकराहट के कारण राष्ट्रवाद को समझने में सहायता मिली।

4.8 राष्ट्रवादी विचारधारा

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन , जो आंशिक रूप से भारत पर बिटिश साम्राज्यवादी इतिहास लेखन के प्रपंचो और पूर्वाग्रहों के विरूद्ध प्रंतिक्रिया के रूप मे अस्तित्व मे आया , मूल रूप से पूर्व–औपनिवेशिक काल में राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़ा हुआ था। आधुनिक भारत में इतिहास लेखन की परंपरा साम्राज्यवाद से युक्त रही क्योंकि उनके लेखन का उद्देश्य नस्लीय श्रेष्ठता को सिद्ध करना था। 1857 की क्रांति के बाद सावरकर, बाल गंगाधर तिलक, आर. सी. मजुमदार, लाला लाजपत राय जैसे इतिहासकार हुए जिन्होंने राष्ट्रवादी विचारों को दृढ़ता प्रदान की। इन महापुरूषों ने (विवेकानंद, महर्षि अरविंद) राष्ट्रवाद को सर्वोत्तम बताया, इनके अनुसार राष्ट्रीयता राजनीति नही वरन एक धर्म है एक विश्वास है, एक निष्ठा है। इन इतिहासकारों ने भारतीय संस्कृति की अद्वितीयता, प्राचीनता व अस्तित्व पर विस्तार से विवेचन कर भारत को गौरवमयी एहसास कराया। डॉ0 ताराचन्द की कृति Influance of Islam on Indian culture and History of freedom struggle लिखकर राष्ट्रवाद को मजबूत किया। सतीशचन्द्र के अनुसार राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास ने भारतीय इतिहासकारों को प्रोत्साहित किया। यहीं तथ्य रामशरण शर्मा ने कहा है, कि राष्ट्रवादियों द्वारा उपनिवेषिक इतिहास को तोड़कर भारतीय संस्कृति को प्रस्तुत किया गया।

डॉ0 काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार भारतीय सभ्यता किसी भी प्रकार कम नहीं हैं। उनकी कृति Hindu Polity राष्ट्रीय भावना से सराबोर हैं। सुमित सरकार के अनुसार औपनिवेषिक इतिहास अंग्रेजी शासन को बरकरार रखने के लिये था, परंतु ऊर्जावान, प्रखर देशभक्तों द्वारा उसे खंडित कर दिया गया। हिन्दुओं की राष्ट्रवादी भावना को जाग्रत करने के लिये, गीतों व कविताओं को भी माध्यम बनाया गया।

श्री अरविंद ने भक्ति और शक्ति को राष्ट्रीयता से चित्रित किया। बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय ने राष्ट्रवाद की व्याख्या सर्वोत्तम धर्म के रूप में की, तथा वंदेमातरम को राष्ट्रीय मंत्र के रूप में प्रस्तुत किया। समाज के संगठन का स्वरूप राष्ट्रवाद का आधार बनता गया तथा साहित्य के द्वारा भी राष्ट्रवाद का नया स्वरूप दिखाई दिया। उदाहरणतः – राधाकांत देव व बंकिमचन्द्र से लेकर तिलक व सावरकर तथा उत्तर भारत में भारतेंदु व प्रताप नारायण मिश्रा जैसे राष्ट्रवादी लेखक साहित्यकारों की रचना में दिखता हैं।

बाल गंगाधर तिलक द्वारा गणेश महोत्सव के साथ राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत की तथा लेखन के द्वारा भी राष्ट्रीयता को प्रमुखता प्रदान की। माधवराव सदाशिव के अनुसार राष्ट्रीयता जीवन का महत्वपूर्ण तत्व हैं। डॉ सत्यनारायण दुबे के अनुसार राष्ट्र के हित में प्रधानता व प्रामाणिकता ही राष्ट्रीयता हैं।मोरार जी देसाई के अनुसार राष्ट्र का हित ही राष्ट्रीयता है।सतीष चन्द्र मित्तल के अनुसार भारत की प्रगति, राष्ट्रीय सकारात्मकता का बोध सदैव सामाजिक सांस्कृतिक चेतना रही राजनैतिक तत्व नहीं। डॉ0 राधाकृष्णन के

अनुसार भारत में राष्ट्रवाद की परिकल्पना सांस्कृतिक है तथा इसके संगठन की और देखे तो इसकी विविधता विभिन्न रूपों में दिखाई देती हैं। आर. सी. मजुमदार लिखते हैं कि सिकंदर के आक्रमण के बाद विशाल राष्ट्र स्थापित होने के लिये वातावरण निर्मित हुआ। भारत के विभिन्न विचारकों ने सांस्कृतिक मूल्यों पर लिखकर इतिहास को राष्ट्रवादी दृष्टिकोण दिया। दादा भाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, महादेव गोविन्द रानाडे के लेखन के द्वारा राष्ट्रीय प्रतिक्रिया को व्यक्त किया। राष्ट्रवाद को जाग्रत करने के लिये विभिन्न संस्थाओं ने भी योगदान दिया। राजा राममोहन राय (ब्रह्म समाज), दयानंद सरस्वती (आर्य समाज), विवेकानंद (रामकृष्ण मिशन)इत्यादि।

19वीं शताब्दी में इस भावना को और अधिक महत्व दिया गया अतीत से लेकर वर्तमान तक इस भावना ने इतिहास को प्रभावित किया इतिहास के राष्ट्रवादी उपागम का तर्क था की अंग्रेज यदि साम्राज्यवाद के पक्ष में इतिहास का दुरूपयोग कर सकते है तो राष्ट्रवादी भी राष्ट्रवाद के पक्ष मे इस विचारधारा का उपयोग कर सकते हैं। तथा इस तथ्य को आधार मानकर उन्होंने पुनर्जागरण की राष्ट्रीय भावना को भी प्रेरणा स्रोत बनाया।

आर. डी. प्रधान, पट्टाभि सीतारमैया, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, इत्यादि लेखकों ने राष्ट्रीयता की लहर को हवा दी तथा राष्ट्रीयता की भावना को सशक्त बनाया। 1984 के पष्चात राष्ट्रवादी दृष्टिकोण और अधिक परिमार्जित हुआ तथा टी. पी. वर्मा, सतीशचन्द्र मित्तल, कल्याण रमन, बालमुकुन्द पाण्डेय जैसे लेखकों के योगदान के कारण राष्ट्रीयता मुख्य विषयवस्तु बनी। इस कारण वर्तमान समय में इस विचारधारा ने भारतीय इतिहास के कई विवादों व समस्याओं का निदान कर भारतीय इतिहास लेखन में राष्ट्रीयता के साथ संस्कृति व लोक जीवन को स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है।

4.8.1 राष्ट्रवादी इतिहास–लेखन के सकारात्मक पक्ष

भारतीय मनीषियों ने इतिहास के गहन अध्ययन में स्वयं को डूबो दिया और स्मारकों , अभिलेखों , मुद्राओं और साहित्यिक स्रोतों के रूप मे नयी जानकारियों के साथ वे वैचारिक समर मे कूद पड़े।

राष्ट्रवादी द्धारा किये गये कार्य

इतिहास लेखन वंश व वंशावलियों तक ही सीमित था, परंतु राष्ट्रवादियों ने राजनैतिक संस्कृतिक व आर्थिक इतिहास को भी अध्ययन का विषय बना दिया ।

क्षेत्रीय और स्थानीय इतिहास

श्राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने क्षेत्रीय व स्थानीय इतिहास में अपनी रूची को विकसित किया, इस आधार पर गंगा के मैदानी क्षेत्र बंगाल व महाराष्ट्र जैसे छोटे भोगोलिक क्षेत्रो के इतिहास सर्व विदित हो गये तथा इन स्थानीय इतिहास की धाराएँ आगे चलकर राश्ट्रीय दृश्टिकोण की मुख्य धारा मे जुड़ गयी ।

आर्थिक इतिहास

दादा भाई नौरोजी तथा रोमेश चंद्र दत्त ने आर्थिक षोशण का मूल्यांकन किया तथा भारत की आधार भूत आर्थिक सामालोचना की जिसने भारत मे आर्थिक इतिहास का सूत्रपात किया रोमेष चंद्र दत्त की पुस्तक **इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंड़िया** तथा नैारोजी द्धारा प्रवर्तित **निकासी सिद्धान्त** के द्धारा भारत की धन संपदा की स्थति को स्पश्ट किया

संस्कृतिक इतिहास

राष्ट्रवादी इतिहास लेख ने भारतीय संस्कृति के बहुआयामी पक्षो को आलोकित किया जिससे एक नई दृष्टि के आरंभ होने का संकेत मिला ।राष्ट्रीयवादी इतिहासकार के• एम• पणिक्कर ने अपनी पुस्तक सर्वे ऑफ इंडियन हिस्ट्री में संस्कृतिक अभिगम को स्पष्ट किया है। भारतीयों ने अपने देश का इतिहास लिखना आरम्भ किया तथा कुछ पुस्तके ऐसी लिखी जिन्हे राष्ट्रीयवादी रचना माना जा सकता है। कुछ इतिहासकारो का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होने राष्ट्रीयवाद पर अपनी कलम चलाइ–

- आर• जी• भंडारकर (1837–1925)
- रोमेश चंद्र दत्त (1848–1909)
- के• पी• जायसवाल (1881–1937)
- राधा कुमुद मुखर्जी (1880–1963)
- एच• सी• रायचौधरी (1892–1957)
- जी• एस• सरदेसाई (1865–1957)
- जदुनाथ सरकार (1870–1958)
- एस कृष्णास्वामी आयंगर (1871–1953)
- शफात अहमद खा

4.9 सबाल्टर्न परम्परा (उपाश्रयी)

इस परपंरा ने आधुनिक भारत की लेखन परपंरा मे एक नई धारा का आरंभ किया , इसके विचारको के अनुसार राष्ट्रवाद का लेखन पक्षपात पूर्ण से ग्रस्त है इनकी दो धाराएँ मानी जाती है, प्रथम उपनिवेषिक या बिटिश साम्राज्यवादी इतिहास लेखन जो एक संकीर्ण व्यवहारवादी अभिगम पर आधारित है दूसरे शब्दों में कहें तो इस लेखन मे ब्रिटिश विचारों , संस्थाओं , अवसरों व संसाधनों द्वारा प्रदत्त अभिप्रेरण के प्रति भारतीय बर्जुआ अभिजात्य वर्ग की अनुक्रिया के रूप में देखते हैं।

दूसरी धारा अर्थात भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन भारतीय राष्ट्रवाद को मूलतः एक आर्दशवादी अभियान के रूप मे चित्रित करती है जिसमे स्वदेशी अभिजात्य या संभ्रत वर्ग ने जन साधारण का नेतृत्व किया और उन्हें परतंत्रता के जंजाल से स्वतंत्रता दिलाई परन्तु इन दोनो दृष्टिकोण में कोई भी राष्ट्रवाद की उचित व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर सका क्योकि यह लोगों द्वारा स्वयं अपने बल पर अर्थात अभिजात्य वर्ग से मुक्त रहकर उस राष्ट्रवाद के निर्माण एवं विकास में दिये गये योगदान को स्वीकार नहीं करता है।

अतः उपाश्रयी लेखकों का मत है कि इन्हीं कारणवश अभिजात्यवादी इतिहास लेखन उन दृष्टांतों की व्याख्या नहीं कर सकता जिन्होंने स्वयं को आन्दोलनों मे अभिव्यक्त किया है।आधुनिक भारत में उपाश्रयी विचारधारा का जन्म हुआ। उपाश्रयी शब्द इटली के प्रख्यात विचारक अंतोनियों ग्राम्शी की रचना से लिया गया हैं। इस विचारधारा का मानना हैं कि राष्ट्रवाद के प्रत्येक चरण पर जनसाधारण के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता, परन्तु इतिहास लेखकों ने साम्राज्यवाद व राष्ट्रवाद की विचारधारा में इस तथ्य को नजरअंदाज किया है, भारत में इस विचारधारा के एक संस्थापक रंजीत गुहा को माना जाता हैं। इन विचारकों ने मातहतों की स्वायतता के उपेक्षित किये गये आयामों को खोजने का प्रयास किया। इनका मानना है कि आर्थिक कारण इस संघर्ष का बड़ा कारण हैं, परन्तु वे अन्य कारणों को भी वर्ग संघर्ष का

कारण मानते हैं। यह उस निम्न वर्गीय चेतना का अध्ययन है जिसने पृष्ठभूमि में रहकर अभिजनवादी इतिहास को नई दिशा व गति प्रदान की, इसे History from Below के नाम से भी जानते हैं।

4.9.1 उपाश्रयी लेख की प्रवत्ति

इनके लेखन का विशिष्ट पक्ष इसका श्रम अभिमुखन है, जिस कारण उपाश्रयी अपने विचारों और विश्लेषण में मार्क्सवादी हैं, किसान , मजदूर व जनजातिय लोग जो समय–समय पर संघटित सत्ता प्रणाली के विरूद्ध विद्रोह के रूप में उनकी समस्याओं व आक्रोश की पूर्णतः स्वतंत्र अभिव्यक्ति ही इनके लेखन का मूल उद्देष्य है।

उपाश्रयी स्पष्ट करते है कि पूर्व का संपूर्ण इतिहास लेखन अभिजनवादी इतिहास लेखन है जिसमें निम्न वर्ग की चेतना व भावना का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से निरादर किया गया है। अतः आम जनता की चेतना, विचारधारा, उसके तौर तरीकों को इतिहास पटल पर अंकित करना ही इसका उद्देष्य हैं। लेखक वर्ग जनता की आर्थिक अक्षमता को ही प्रस्तुत करते हैं इसके विपरित जनता की विचार धारा चेतना, उनके लिये नगण्य हैं। तथा समाज में उनकी जानकारी सतह पर है इनके अध्ययन का प्रयास गरीब किसान, चरवाहा, श्रमिक, मजदूर, दलित जातियाँ, स्त्री इत्यादि की उदरावस्था तक सीमित न रहकर उसके चिंतन तक पहुँचना हैं। ईटली में इसका प्रयोग दलित, गौण, व उत्पीड़ित उपेक्षित लोगों के लिये किया गया था। भारतीय परिवेश में इसका उपयोग करने के पीछे कारण था ,वर्ग संघर्ष व आर्थिक द्वंद को आर्थिकता के पिंजड़े से आजाद करा कर सांस्कृतिक विवेचन किया जाये। आर. सी. दत्त, सुमीत सरकार, शाहिद अमीन इस विचारधारा के अग्रणी लेखक हैं।

इन जनवादी लेखकों का सुझाव तो राष्ट्रीयता की ओर था, परंतु इन्होंने निम्न वर्ग की ओर अपना ध्यान

आकृष्ट किया। अंग्रेजी शासन के घटनाक्रम को गहनता से समझा तथा जनसाधारण की महत्ता पर प्रकाश डाला। इनके इतिहासकारों ने श्रमिक आंदोलन, आदिवासी आंदोलन व किसान आंदोलन को रेखांकित कर इनके योगदान पर प्रकाश डालने का प्रयास किया। इनका मानना था कि किसान, मजदूर व श्रमिक स्वतंत्र व स्वायत्तता से परिपूर्ण है। सुमित सरकार ने सबआर्ल्टन के दायरे में निम्न वर्ग, दिहाड़ी किसान, भूमिहीन किसान, बंगाल में स्थापित खानों व कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को रखा हैं। इनका आधारभूत धरातल दो अस्तित्व की धारणा पर विद्यमान हैं, प्रथम वे जो सुविधाओं व अधिकारों के लिये कुछ भी करते है

दुसरे वे जो उपाश्रयी वर्ग है, रंजित गुहा तथा अम्बेडकर वे प्रथम पंक्ति के लेखक थें जिन्होने इन वर्गो की महत्ता को समझकर इनके योगदान को प्रकाशित किया तथा भारतीय स्वतंत्रता में भी इनको योगदान को सराहनीय बताया, गांधीजी द्वारा इन्हें हरिजन अर्थात ईश्वर के जन कहा गया तथा सामाजिक व राजनैतिक रूप से उपर उठाने का प्रयास किया तथा मंदिरों में इनके प्रवेश को अधिकार मिला (वायकाम आंदोलन) उपाश्रयी वर्गो का स्वतंत्र कोई परिप्रेक्ष्य नहीं होता अतः उपाश्रयी लेखकों का ध्यान इनका अस्तित्व सिद्ध करने पर है, इन्होंने इनके शोषण को अपने अध्ययन का मुख्य आधार बिन्दु माना। इनका मानना था कि अभिजन व निम्न जन दोनों को अलग न मानकर पारस्परिक स्वरूप में मानना। उपाश्रयी इतिहास लेखन में लोक साहित्य की कमी दिखाई देती हैं, क्योंकि लोक साहित्य सहज उपलब्ध नहीं होता तथा लेखन के लिये इसका संग्रह श्रमसाध्य हैं। इसलिये उपाश्रयी लेखन इससे अछूता हैं।

4.9.2 उपाश्रयी लेखन की विशेषताएँ

(1) इतिहास लेखन के साथ बहुआयामी अध्ययन की भूमिका भी महत्वपूर्ण हैं। (2) सामान्य को महत्व देकर उनके ज्ञान को प्रकाश में लाया जाता है। (3) इस विचारधारा से आमजन को इतिहास जैसी श्रेष्ठ लेखन परंम्परा का केन्द्र बना सकते हैं। डॉ0 विपिन चंद ने अपने ग्रंथ भारत की स्वतंत्रता संग्राम में बताया है कि इनका लेखन मर्यादित इतिहास बना गया है। विपिन चंद स्पष्ट करते है कि उपाश्रयी इतिहासकार को संकुचित मनोवृत्ति को त्याग कर भारतीय इतिहास के सभी पक्षों का अध्ययन करना होगा। उपाश्रयी इतिहास की परंपरा समय की मांग हैं। अतः इन्हें शाश्वत तथ्यों के साथ अपने लक्ष्य को प्राप्त करना होगा।

4.10 सारांश

भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के पश्चात विदेशी इतिहासकार स्मिथ, मिल, मोरलेंड ने इतिहास लेखन किया, परंतु भारतीय इतिहासकारों का भी उदय हुआ जिन्होंने लेखन का बेहतर प्रयास किया। के. बी. लाल के अनुसार बीसवी सदी के पूर्वाद्ध में भाववाद का स्थान तार्किकवाद ने ले लिया। प्रत्येक युग में मनुष्य की इतिहास को जानने की अभिभूति उस इतिहास प्रक्रिया का नाम है जो जहां इतिहासकार घटनाओं को प्रस्तुत करके परस्पर संबंधों की व्याख्या करता हैं। इतिहासकार का दृष्टिकोण समयानुसार परिवर्तित हुआ है तथा नये दृष्टिकोण का उदगम हुआ।

4.11 अभ्यास हेतू प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न –

(1) इतिहास लेखन की आधुनिक पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिये।

(2) इतिहास लेखन की परंपरावादी विचारधारा के इतिहासकारों की समीक्षा कीजिये।

(3) साम्राज्यवादी विचारधारा को अपने तर्कों के आधार पर उदाहरण सहित स्पष्ट करिये।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(1) आर्थिक इतिहास को महत्वपूर्ण बनाने में कार्ल मार्क्स के योगदान का विस्तार से वर्णन करिये।

(2) क्या वर्तमान इतिहास लेखन के क्रम में उपाश्रयी इतिहास आवश्यक है, विवेचन कीजिये।

टिप्पणी करिये –

(1) राष्ट्रवादी विचारधारा। (2) संप्रदायवादी विचारधारा।

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) कार• ई• एच• इतिहास क्या हैं, अनुवाद अशोक चक्रधर मैकमिलन इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली 1993।

(2) चौबे, झारखण्डे, इतिहास दर्शन विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 1999।

(3) मारविक आर्थर इतिहास का स्वरूप, अनुवादक लालबहादुर वर्मा ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली 2003।

(4) राय कौलेश्वर इतिहास दर्शन, किताब महल इलाहाबाद, 1994।

(5) शर्मा राम विलास इतिहास दर्शन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1995।

(6) थापर रोमिला, इतिहास की पुर्नव्याख्या, नई दिल्ली, 1991।

(7) सांकृत्यायन, राहुल कार्ल मार्क्स, किताब महल इलाहाबाद, 1988।

(8) राघव रांगेय, प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1995।

(9) भाटी हुकुम सिंह, इतिहासकार जेम्स टांड व्यक्तित्व व कृतित्व, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1992।

(10) शुक्ल प्रभात कुमार, इतिहास लेखन की विभिन्न, दृष्टियाँ ग्रंथ शिल्पी, 2012।

इकाई पांच :आधुनिक भारतीय इतिहास लेखनःराष्ट्रवादी इतिहासकार

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की विशेषताएँ

5.3.1 राष्ट्रीय अस्मिता की खोज

5.3.2 साम्राज्यवादी हमले का प्रतिकार

5.4 राष्ट्रवादी इतिहास लेखन– अर्थ, प्रकृति और विषयवस्तु

5.4.1 राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का अभिप्राय

5.4.2 धर्म और समाज

5.4.3 भौतिक संस्कृति

5.4.4 राजनीति और प्रशासन

5.4.5 भारतीय इतिहास की पुनर्प्रस्तुति

5.5 आर.जी. भण्डारकर

5.6 रोमेश चन्द्र दत्त

5.7 के.पी. जायसवाल

5.8 राधा कुमुद मुखर्जी

5.9 एच.सी. राय चौधरी

5.10 जी.एस. सरदेसाई

5.11 जदुनाथ सरकार

5.12 भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का मूल्यांकन

5.12.1 शोध पद्धति सम्बन्धी त्रुटियाँ

5.12.2 अंध देश–भक्ति के दावे

5.12.3 आत्मखंडन एवं सांप्रदायिकता

5.12.4 प्रेरक तत्व

5.12.5 क्षेत्रीय और स्थानीय इतिहास का विस्तार

5.12.6 आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का विस्तार

5.13 सारांश

5.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.15 संदर्भ ग्रन्थ

5.1 प्रस्तावना

मध्यकालीन इतिहास लेखन में जहाँ धर्म सम्बन्धी उपागम (एप्रोच) पर अधिक बल दिया गया था, वहीं आधुनिक काल में धर्म गौण हो गया एवं इतिहास लेखन के अनेकानेक दृष्टिकोण उभरकर सामने आये। अठारहवीं सदी में कई यूरोपीय विद्वानों की रूचि भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की ओर दिखाई देती है। इन विद्वानों को प्राच्य संस्कृति विशारद अथवा प्राच्यविद कहकर सम्बोधित किया जाता है। अनेक प्राच्यविदों ने प्राचीन भारतीय समाज एवं संस्कृति को गौरव मण्डित कर प्रस्तुत किया है। इनमें सर विलियम जोन्स का नाम अग्रणी रूप में लिया जा सकता है। प्राच्यविदों के बाद 19वीं एवं 20वीं शताब्दी में इतिहास का साम्राज्यवादी दृष्टिकोण उभरकर सामने आया। प्राच्यविदों की तुलना में भारत के प्रति उनका दृष्टिकोण असहिष्णुतापूर्ण था। साम्राज्यवादी इतिहास लेखन के दृष्टिकोण के पीछे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा एवं स्थायित्व की भावना प्रबल रूप से विद्यमान थी। साम्राज्यवादी इतिहास के उपागम की प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ भारतीय विद्वानों ने इतिहास लेखन के लिए राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाया। ब्रिटिश शासनकाल में इतिहास के राष्ट्रीय उपागम का प्रयोग ए.सी. मजूमदार, पट्टाभि सीतारमैय्या एवं लाजपत राय आदि ने किया। कलान्तर में इलाहाबाद मत ने राष्ट्रवादी इतिहास लेखन को और अधिक विकसित किया।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन में राष्ट्रवादी दृष्टिकोण
- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की विशेषताएँ
- राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का अर्थ, प्रकृति और विषयवस्तु
- प्रमुख राष्ट्रवादी इतिहासकार और उनका लेखन
- राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के गुण एवं दोष

5.3 भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की विषेषताएँ

इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम के प्रत्युत्तरस्व रूप इतिहास का राष्ट्रवादी उपागम अस्तित्व में आया। इतिहास के राष्ट्रवादी उपागम के पीछे तर्क दिया गया कि यदि अंग्रेज साम्राज्यवाद के पक्ष में भारतीय इतिहास का दुरूपयोग कर सकते हैं तो हम भी राष्ट्रवाद के पक्ष में इसका उपयोग कर सकते हैं। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने साम्राज्यवादी इतिहासकारों मुख्यतः जेम्स मिल एवं विसेन्ट स्मिथ द्वारा स्थापित विचारों का ब्रिटिश राजतन्त्र प्रणाली की श्रेष्ठता, कुषाण एवं गुप्तों के बीच भारतीय इतिहास का अन्धकार युग था– आदि का प्रतिकार किया। साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने जहाँ भारतीय इतिहास की छवि को धुंधला करने के प्रयास किए थे। वहीं इसके ठीक विपरीत राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को गौरवान्वित करने के प्रयास किए थे।

5.3.1 राष्ट्रीय अस्मिता की खोज

वेशभूषा, तौर–तरीके और रीति–रिवाज़ों में पश्चिमी जीवन के अंधानुसरण के आरम्भिक चरण के बाद वस्तुतः शिक्षित भारतीयों के बीच भारत को अधिक भारतीय तथा अपेक्षाकृत कम अंग्रेजी बनाने का जोश उत्पन्न होने लगा। यह वर्ग नहीं चाहता था कि पाश्चात्य सभ्यता इनकी अपनी सभ्यता को विस्थापित कर दे जैसा कि मैकाले और ईसाई मिशनरी चाहते थे। वे केवल यह चाहते थे कि पश्चिमी सभ्यता, भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करे जैसी राजा राममोहन राय की आकांक्षा रही थी। वे अपने प्राचीन धर्म तथा समाज में सुधार लाने तथा अपनी प्राचीन संस्कृति को पुनर्जीवित करने की दिशा में प्रवृत हुए। इस प्रवृति ने पुनर्जागरण का रूप ले लिया जिसके फलस्वरूप भारतीयों में आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास की भावनाओं का संचार हुआ जो पश्चिमी तूफान में तितर–बितर हो गई थी, धीरे–धीरे भारत राष्ट्रीय आत्मसजगता प्राप्त कर रहा था जो शीघ्र ही विदेशी प्रभुत्व से मुक्ति की आकांक्षा में पूर्णतः परिणत हो गई। फिर भी अभिनव चेतना को एक ऐतिहासिक चेतना या जनसमुदाय के अतीत के ज्ञान द्वारा सृजित एवं प्रोत्साहित होना था।

बंकिम चन्द्र चटर्जी ने दृढ़ता के साथ यह कहा कि एकता का भाव राष्ट्रीय गौरव तथा मुक्ति की आकांक्षा उत्पन्न करने के एक साधन के रूप में इतिहास के अध्ययन तथा लेखन से अधिक मौलिक और कुछ नहीं था। वे लिखते हैं– ''कोई हिन्दू इतिहास नहीं है। यदि हम स्वयं अपने उत्कृष्ट गुणों की प्रशंसा नहीं करते हैं तो उनकी प्रशंसा दूसरा कौन करेगा ? ..... कब किसी राष्ट्र की गरिमा का गुणगान किसी अन्य राष्ट्र द्वारा किया गया है। रोमनों की सामरिक शक्ति का साक्ष्य रोमन इतिहास में पाया जाता है। यूनानियों की शौर्यगाथा यूनानी लेखकों की रचनाओं में ही मिलती है। हिंदुओं में इस तरह के गौरवपूर्ण गुण नहीं हैं जिसका कारण केवल यह है कि उनका कोई लिखित साक्ष्य नहीं है।''

बंकिम चन्द्र चटर्जी ने जिस गलती की पहचान की उसका समाधान करने की प्रवृत्ति भारतीय इतिहासकारों ने शीघ्र ही दर्शा दी। ये वे इतिहासकार थे जिन्होंने बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखा तब राष्ट्रवाद की भावना ने ऐतिहासिक पड़ताल तथा व्याख्या–विवेचना के लिए विचारधारात्मक आधार प्रदान किया।

5.3.2 साम्राज्यवादी हमले का प्रतिकार

आधुनिक भारतीय इतिहासकारों की पहली पीढ़ी को जिस कार्य को पूरा करना था वह था– ब्रिटिश साम्राज्यवादी हमले से अपनी संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा करना। भारतीय इतिहास लेखन में साम्राज्यवादी पूर्वाग्रह ने पहले हिंदू प्रकृति तथा चरित्र पर मूल्य निर्णयों की एक शृंखला के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त किया। जेम्स मिल की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिस्ट्री' के द्वितीय खण्ड में हिंदू सभ्यता के पांच सौ पृष्ठों के उनके विवरण का उद्देश्य यह सिद्ध करना

था कि वह जड़ और निकृष्ट थी तथा हिंदू दास के गुणों में सबसे आगे थे। मिल ने जो लीक बनाई उसका अनुसरण भारत के अधिकांश इतिहासकारों ने किया। एल्फिस्टन को यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि ''अरब भारत को उतनी आसानी से नहीं रौंद पाए जितनी आसानी से उन्होंने फारस को रौंद डाला था।'' भारत पर विंसेट स्मिथ की कृतियों ने अलेक्जेंडर के भारतीय सामरिक अभियानों जैसी घटनाओं के अपने विवरण में यूरोप की श्रेष्ठता की साम्राज्यवादी धारणाओं को सर्तकतापूर्वक बरकरार रखा। भारतीयों को बार–बार बताया गया कि स्वतन्त्रता ने उनकी स्वदेशी भूमि पर कभी पदार्पण नहीं किया।

आर.सी. मजूमदार ऐसे प्रयासों के दृष्टांत शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत करते हैं जिनके द्वारा पूर्व में भारतीयों की उपलब्धियों को कम करके आंका गया। पेरीप्लस के स्पष्ट साक्ष्य को सामने रखते हुए एल्फिंस्टन ने यह माना कि भारत का विदेशी व्यापार यूनानियों और अरबों द्वारा संचालित हुआ। अक्सर वेदों और महाकाव्यों के लिए यथासंभव सीमा तक परवर्ती तिथियां निर्धारित की गईं और विभिन्न कृतियों में यदाकदा यह संकेत दिया गया और बिना किसी प्रमाण के प्रायः यह कहा गया कि भारतीयों ने निःसंदेह अपनी संस्कृति का अधिकांश अंश यूनानियों से आयात किया होगा।

अपने लेखन में ईसाई मिशनरियों ने हिंदुओं के धार्मिक अंधविश्वासों और सामाजिक कदाचारों को उकेरने के प्रति तन्मन्यता दिखाई। किन्तु यह सदैव एकपक्षीय था, जहाँ उन्होंने सती की पाश्विक प्रथा को लक्ष्य बनाया वहीं उन्होंने यूरोप में डायनों का शिकार करने तथा नास्तिकों को जलाकर मार डालने की घटनाओं को भुला दिया। जहाँ हिंदू जाति प्रथा की उचित ढंग से आलोचना की गई वहीं श्वेतों द्वारा अश्वेतों को दास बनाए जाने, उनकी भू–दासता तथा उनके साथ दुर्व्यवहार की चुपचाप उपेक्षा की गई। साम्राज्यवादी इतिहास लेखन की इन विसंगतियों की पोल राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने खोल दी।

5.4 राष्ट्रवादी इतिहास लेखन– अर्थ, प्रकृति और विषयवस्तु

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन जो आंशिक रूप से भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहास लेखन के प्रपंचों और पूर्वाग्रहों के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में अस्तित्व में आया, मूल रूप से पूर्व औपनिवेशिक काल में राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़ा हुआ था।

5.4.1 राट्रवादी इतिहास लेखन का अभिप्राय

भारतीय इतिहास लेखन के परिप्रेक्ष्य में 'राष्ट्रवादी इतिहास' तथा राष्ट्रवादी इतिहास लेखन विदेशी–विशेषकर ब्रिटिश लेखकों के औपनिवेशिक या साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के बरक्स एक तुलनात्मक अर्थ में प्रयुक्त होने वाला पद है। राष्ट्रीय गौरव से ओत–प्रोत भारतीय विद्वानों की एक उदयीमान पीढ़ी ने अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को यूरोपीय लेखकों के निराधार आरोपों के प्रहार से बचाने का प्रयत्न किया। ऐतिहासिक लेखकों या कृतियों का एक ऐसा समूह नहीं माना

जाना चाहिए जिसका एकमात्र उद्देश्य भारत के अतीत का महिमामंडन है। आर.सी. मजूमदार 'राष्ट्रवादी इतिहासकार' पद का प्रयोग केवल उन्हीं भारतीयों के लिए करते हैं जिन्होंने अपने देश के इतिहास की पुनः प्रस्तुति के क्रम में परीक्षण अथवा पुनःपरीक्षण को अपना लक्ष्य बनाया।

5.4.2 धर्म और समाज

उन्हें साम्राज्यवादी चुनौती का सामना करना था और यूरोपीय हमले के प्रथम लक्ष्य के रूप में हिंदू धर्म और इसके साहित्य पर किए गए आघातों को निरस्त करना था। यह प्रयास इतिहासकारों के बजाय समाज सुधारकों द्वारा अधिक व्यायकता से व्यक्त हुआ। एक अतिवादी चिंतन धारा जिसमें राजनारायण बोस, बंकिम चन्द्र चटर्जी, शशाधर तर्कचूड़ामणि सहित अनेक विद्वान शामिल थे, ने धार्मिक अंधविश्वास और सामाजिक कुरीतियों के साथ–साथ हिन्दू धर्म के विकास के सभी पक्षों का समर्थन करते हुए इसे एक अत्यन्त सशक्त, अध्यात्मिक शक्ति कहा तथा अन्य आस्थाओं से श्रेष्ठ माना। किन्तु दयानंद सरस्वती, जो उदारवाद और रूढ़िवाद के एक विचित्र संगम थे, ने तार्किक–बौद्धिक आधार पर हिन्दू धर्म का समर्थन किया। उन्होंने दावा किया कि हिन्दुओं का सच्चा धर्म और समाज केवल वेदों में वर्णित अधिक शुद्ध रूप में विद्यमान थे। जाति और सती जैसी कुप्रथाएं एवं मूर्तिपूजा परवर्ती प्रगति को दर्शाती थी जिसकी स्वीकृति मूल आस्था द्वारा प्रदान नहीं की गई थी। जाति की खोखली व्याख्या श्रम के विभाजन के रूप में की गई और यह दर्शाया गया कि वैदिक काल और परवर्ती कालों में भी महिलाओं को अत्यंत उच्च सामाजिक दर्जा प्राप्त था।

5.4.3 भौतिक संस्कृति

रोमेश चन्द्र दत्त ने अपनी पुस्तक सिविलाइजेशन इन एशिएंट इंडिया (1889) तीन खण्डों में लिखी। आर.सी. मजूमदार इसे सर्वोत्तम अर्थ में पहला राष्ट्रवादी इतिहास कहते हैं। यह पुस्तक अपने वैज्ञानिक तथा उदार तेवर के कारण विशिष्ट है और भारतीयों की अतिरंजित राष्ट्रवादी भावना से अलग दिखाई देती है। मैक्स मूलर का कमोवेश अनुसरण करते हुए दत्त ने ऋग्वेद का काल 1200 ई.पू. माना और वैदिक योद्धाओं की निर्मम आत्माभिव्यक्ति और युद्ध में विजयों की स्वच्छंद अल्हड़ उत्कंठा का चित्र प्रस्तुत किया जो अतिवादी राष्ट्रवाद के प्रबल समर्थकों तथा रूढ़िवादी हिन्दुओं के गले नहीं उतर सका। रूढ़िवादी हिन्दुत्व के राष्ट्रवादी समर्थक केवल उसी स्थिति में संतुष्ट हो सकते थे यदि ऋग्वेद का काल अपेक्षाकृत बहुत अधिक पीछे निर्धारित किया जाता। बी.जी. तिलक, जो संस्कृत के अच्छे जानकार थे, ने खगोलीय आंकड़ों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि ऋग्वेद की रचना 4000 ई.पू. में हुई। ए.सी. दास ने इसे और पीछे ले जाते हुए ऋग्वेद की कम से कम कुछ ऋचाओं की रचना को भूगर्भीय युगों से संबद्ध माना। जहाँ यूरोप के लेखकों का एक वर्ग यह सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध था कि भारतीय संस्कृति बहुत हद तक विदेशी स्रोतों से ग्रहण किए गए

घटकों से रचित–निर्मित है, कुछ भारतीय विद्वानों ने दृढ़ता के साथ ऐसे किसी बाहरी प्रभाव की संभावना को अस्वीकार किया। कुछ भारतीयों ने तो यह भी कहा कि भारत ही आर्यों का मूल निवास स्थान था और यहाँ से ही वे यूरोप में फैले।

5.4.4 राजनीति और प्रशासन

अंग्रेजों ने बार–बार यह दोहराया कि भारत एक देश नहीं था बल्कि छोटे राज्यों का एक असंगठित समूह था। इसके विरोध में आर.के. मुखर्जी ने एक 'थीसिस' लिखी जो फंडामेंटल यूनिटी ऑफ इंडिया के नाम से प्रकाशित हुई। इसमें लेखक ने यह धारणा प्रस्तुत की कि पूरे भारत में हिन्दुओं के मध्य धार्मिक एकता और आध्यात्मिक सहचर्य एवं एक अखिल भारतीय साम्राज्य का उनका आदर्श अतीत में भारतीय राष्ट्रवाद के आधारतत्व थे।

5.4.5 भारतीय इतिहास की पुनर्प्रस्तुति

ज्यों–ज्यों स्वतन्त्रता संग्राम में तीव्रता आई, राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष में उत्साह का संचार करने के क्रम में भारतीय इतिहास की एक सजग पुनर्प्रस्तुति का प्रयास किया। बी.डी. सावरकर ने 'द इंडियन वार ऑफ इन्डिपेन्डेन्स' में 1857 के विद्रोह को भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन का प्रथम संग्राम कहकर सम्बोधित किया। भारत में राष्ट्रीयता की लहर को उत्पन्न करने में लाजपत राय की कृति 'पंजाब केसरी' ने भी अहम भूमिका निभाई थी। ए.सी.ई. मजूमदार ने 'इंडियन पॉलिटिक्स सिन्स द म्यूटिनिटी' एवं सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने 'ए नेशन इन द मेकिंग' की रचना कर भारत में राष्ट्रीय मत को पुष्ट किया। एस.वी. चौधरी की पुस्तक 'सिविल रेबेलियंस इन द इंडियन म्यूटिनी 1857–59' ने मजबूती से यह धारणा व्यक्त की कि गदर के साथ हुए जन विद्रोहों ने ही इसे एक राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम का चरित्र प्रदान किया। जब ब्रिटिश सरकार ने यह स्पष्ट किया कि हिंदू–मुसलमान सम्प्रदायों के बीच अंतर भारत को अधिराज्य का दर्जा देने में प्रमुख बाधा थे तो सम्प्रदायवाद के हानिकारक प्रभावों को महसूस करते हुए कुछ राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अपनी पारम्परिक लीक से हटकर पूरे मध्यकालीन भारतीय इतिहास की नए सिरे से फिर व्याख्या की जिसमें यह सिद्ध किया जा सके हिंदुओं और मुसलमानों ने हमेशा एक–दूसरे के साथ अच्छे भाइयों जैसा बर्ताव किया और मिल–जुलकर एक एकीकृत राष्ट्र की नींव डाली। ताराचंद की पुस्तक 'इन्फलुएंस ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर' इसी दिशा में एक अन्य प्रयास है।

राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के विकास में इलाहाबाद स्कूल ऑफ हिस्ट्री ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के प्रमुख पैरोकार हैं– आर.जी. भण्डारकर, रोमेश चन्द्र दत्त, के.पी. जायसवाल, राधाकुमुद मुखर्जी, एच.सी. राय चौधरी, जी.एस. सरदेसाई, ताराचंद, आर.पी. त्रिपाठी, बनारसी प्रसाद सक्सेना, बेनी प्रसाद आदि।

5.5 आर.जी. भण्डारकर (1837–1925)

भारत के प्रथम आधुनिक स्वदेशी इतिहासकार रामकृष्ण गोपाल भंडारकर थे। राजनीतिक इतिहास के क्षेत्र में भंडारकर ने दो अत्यंत महत्वपूर्ण मोनोग्राफ द अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन (1884) और ए पीप इन टू द अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया (1900) लिखे। यद्यपि लेखक हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन को केवल तथ्यों का एक संकलन मात्र मानते थे। यह कृति प्राचीनतम काल से मुसलमानों की विजय तक पश्चिमी भारत का एक व्यापक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करती है। यह केवल एक राजनैतिक इतिहास ही नहीं बल्कि इस दौरान दक्कन की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दशाओं तथा साथ ही साहित्य एवं कला की स्थिति से भी पाठकों को अवगत कराती है। ए पीप इन टु द अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया मौर्यकाल के आरम्भ से गुप्त साम्राज्य के अन्त तक उत्तरी भारत के इतिहास का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत करती है। उन्होंने लेखन में प्रस्तुत विभिन्न स्रोतों की गहरी छानबीन करके ऐतिहासिक सत्य और सटीक वर्णनात्मकता प्राप्त करने की यथासंभव चेष्टा की। एक न्यायाधीश जैसी कठोर निष्पक्षता पर बल देते हुए उन्होंने एक इतिहासकार में वकील या जिरह करने वाले अधिवक्ता जैसी प्रवृत्ति की तीखी आलोचना की। उनकी दृष्टि में विद्वान का लक्ष्य शुष्क सत्य की खोज होना चाहिए और उसे उपलब्ध साक्ष्यों की विश्वसनीयता को निर्धारित करने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। किसी भी प्रचलित या जनश्रुति आख्यान को ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य नहीं मानना चाहिए यद्यपि यह जानने का प्रयत्न अवश्य किया जाना चाहिए कि ऐसे आख्यानों में सत्य का कोई अंश है या नहीं। वे राष्ट्रभक्त थे किंतु अंग्रेज विरोधी नहीं थे। वे भारतीय सभ्यता पर विदेशी प्रभावों को पूरी तरह अस्वीकार करने तथा इसके इतिहास में कुछ घटनाओं की अधिक प्राचीनता का दावा करने की उस प्रवृत्ति से सहमत नहीं थे जो कुछ भारतीय विद्वानों द्वारा व्यक्त की गई थी।

5.6 रोमेष चंद्र दत्त (1848–1909)

भारतीय सिविल सेवा के अधिकारी, संस्कृत के विद्वान और भारतीय कलासिकीय रचनाओं के गहरे जानकार रोमेश चंद्र दत्त ने परवर्ती पीढ़ियों को विशाल साहित्यिक धरोहर प्रदान की। दत्त इस बात को लेकर आश्वस्त थे कि भारत के सामाजिक इतिहास के लिए स्रोत सामग्री के रूप में साहित्य का असंदिग्ध महत्व है। लिटरेचर ऑफ बंगाल (1877) में उन्होंने लिखा– ''प्रत्येक देश का साहित्य क्रमिक रूप से विभिन्न चरणों से गुजरते हुए लोगों में तौर–तरीकों और रीति–रिवाज़ों, क्रियाकलापों एवं चिंतनों को सटीक ढंग से परिलक्षित करता है। हालांकि विशुद्ध ऐतिहासिक चरित्र वाली कोई कृति प्राचीन भारत के लोगों ने विरासत के रूप में नहीं छोड़ी है किंतु साहित्य और उनकी धर्म पर रचनाओं से उनकी सभ्यता तथा बौद्धिकता एवं सामाजिक संस्थानों की प्रगति की एक अत्यंत सटीक तस्वीर उभरकर सामने आती है।'' इस प्रकार भारतीय मस्तिष्क को खोजने और हिन्दू सामाजिक संस्थाओं को समझने

के लिए दत्त मुख्य रूप से संस्कृत साहित्य पर निर्भर रहे। तीन खण्डों में लिखी गई उनकी पुस्तक ए हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन एंशिएंट इंडिया इसी का परिणाम थी। सिस्टर निवेदिता के अनुसार यह पुस्तक ''भारत और पूरे संसार के समक्ष राष्ट्रीय गरिमा का एक आलोकन या प्रदर्शन था।'' यह राष्ट्रवादी इतिहास था किन्तु सभी अतिश्योक्तिपूर्ण दावों से मुक्त था।

यह आश्चर्यजनक था कि 1904 में ही किसी भारतीय विद्वान ने दो खण्डों में घोषित रूप से आर्थिक इतिहास लिख डाला हो। दत्त की कृति 'इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया' दादाभाई नौरोजी के 'ड्रेन थ्योरी' के बाद प्रकाश में आई और इसने तुलनात्मक रूप से अधिक गहनता से ब्रिटिश शासन की प्रकृति की छानबीन की। यह पुस्तक मुख्यतः संसदीय पत्रों और आधिकारिक रिपोर्टों पर आधारित है जिनकी सांख्यकीय सामग्रियों द्वारा पुष्टि की गई है। दत्त पहले भारतीय विश्लेषक थे जिन्होंने भारत की व्याधि का मूल कारण कृषि सम्बन्धी समस्या को माना। उन्होंने भूमि कर के अत्यधिक आरोपण पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि ब्रिटिश औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का दोहरा उद्देश्य ब्रिटिश उद्योग–धंधों के लिए कच्चे माल का उत्पादन और भारत में ब्रिटिश विनिर्मित उत्पादों की खपत था। उन्होंने परामर्श दिया कि सरकार को मैनचेस्टर से प्राप्त जनादेशों के अनुसार काम करने से बचना चाहिए और संरक्षण की नीति अपनानी चाहिए। उन्होंने घरेलू शुल्कों तथा सैन्य व्यय को गलत ठहराया और छटनी या कटौती के लिए वित्तीय सहायता की सलाह दी। उन्होंने भारतीय जनों की निर्धनता के संदर्भ में वार्षिक 'आर्थिक निकासी' को निशाना बनाया। दत्त की आलोचना राष्ट्रीय आंदोलन का आर्थिक मंच बन गई।

5.7 के.पी. जायसवाल (1881–1937)

आकसफोर्ड में पढ़े–लिखे और पेशे से अधिवक्ता काशी प्रसाद जायसवाल भारत की प्राचीन विरासत की चेतना पर आधारित राष्ट्रीय गौरव को पुनर्जीवित करने के एकमात्र उद्देश्य से ऐतिहासिक शोध–अनुसंधान के क्षेत्र में कूद पड़े।

जायसवाल की महत्वपूर्ण कृतियाँ हिन्दू पालिटी और हिस्ट्री ऑफ इंडिया C.A.D. 150–350 हैं। इन दोनों कृतियों में उन महत्वपूर्ण धारणाओं के सार अंतर्निहित थे जिनकी पुष्टि के लिए संस्कृत के इस विद्वान ने विविध प्रकार के साहित्यिक, अभिलेखीय और मौद्रिक स्रोतों का प्रयोग किया तथा बहुधा अपनी निजी शैली में उनकी व्याख्या की। राष्ट्रवादी लोकतांत्रिक आंदोलन में लिखी गई उनकी पुस्तक हिंदू पालिटी को असाधारण सफलता मिली। पश्चिमी निरंकुशता की सतही साम्राज्यवादी धारणा का खंडन करते हुए जायसवाल बहुत कठोर परिश्रम से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत में प्राचीनतम और सफलतम गणतन्त्रों का अस्तित्व रहा है और यहाँ का राजतंत्र कमजोर था। राइस डेविडस ने बुद्ध के कालों में गणतंत्रों के अस्तित्व की

चर्चा की थी। जायसवाल उनके अस्तित्व को कालक्रम में और पीछे लेकर चले गए। उत्तर वैदिक काल के गण और संघ गणतंत्रीय संगठन थे जहाँ बहुमत के आधार पर निर्वाचित एक निकाय द्वारा निर्णय लिए जाते थे। उन्होंने 'कोरम' के प्रावधान और 'जनमतसंग्रह' के कार्यव्यवहार को भी इंगित किया। हिंदू पालिटी के द्वितीय खण्ड में जायसवाल सीमित राजतंत्र के अस्तित्व को स्थापित करते हैं वे लिखते हैं– ''यह सिद्धान्त नहीं भी हो किंतु तथ्य के रूप में स्पष्ट है कि राजा का पद जनता–जर्नादन द्वारा ही सृजित था और इस पर आसीन होने वाले व्यक्ति को कुछ शर्तों का पालन करना होता था। उससे ऊपर हमेशा राष्ट्रीय सभा अर्थात समिति होती थी जो वास्तविक संप्रभु शासक थी।

अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ इंडिया में हिन्दू राष्ट्रवाद के अग्रदूत जायसवाल ने भाराशिवनागों, जिन्होंने तथाकथित रूप से देश को शककुषाण के विदेशी शासन से मुक्ति दिलाई, को नायकों के रूप में प्रस्तुत किया। बहुत मेहनत से तैयार की गई यह कहानी कहीं कहीं संदिग्ध प्रामाणिकता वाले स्रोतों पर आधारित है। जायसवाल की राष्ट्रभक्ति निरंसदेह ऐतिहासिक सत्यता की सीमा लांघ गई। उनके द्वारा प्रस्तुत अनेक सिद्धान्त और अवधारणाएँ केवल हवाई किलों जैसी हैं और सहज ही यू.एन. घोषाल तथा ए.एस. अल्तेकर जैसे विद्वानों ने उन पर प्रश्नचिन्ह लगाए हैं। किन्तु प्राचीन भारतीय गणतन्त्रों की उनकी व्यवस्थित प्रस्तुति ने आगामी शोध के लिए एक आधार का काम किया।

5.8 राधा कुमुद मुखर्जी (1880–1963)

यद्यपि राधा कुमुद सच्चे राष्ट्रवादी सांचे में ढले हुए थे किन्तु राष्ट्रभक्ति ने उन्हें दिग्भ्रमित नहीं किया। 1912 में मुखर्जी ने प्राचीन इतिहास की एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'द हिस्ट्री ऑफ इंडियन शिपिंग एंड मेरीटाइम एक्टिविटी फ्रॉम द अर्लिएस्ट टाइम्स' लिखी। इस पुस्तक में प्राचीनतम काल से मुगलकाल के अंत तक भारतीयों की सामुद्रिक गतिविधियों के सभी रूपों पर प्रकाश डाला गया है। यह कृति संयमी–संतुलित विद्धता का एक व्यापक प्रतीक है और उस समय तक अज्ञात अनेक स्रोतों से एकत्र की गई जानकारियों का एक व्यापक विशाल भंडार है। इसमें हमें यह बताया जाता है कि किस प्रकार भारत ने अपने जलपोतों को अफ्रीका और मेडागास्कर के तटीय क्षेत्रों से मलय द्वीपसमूह के सूदूरतम् छोरों तक संचालित कर व्यापार और औपनिवेशीकरण को सुविधाप्रद बनाया तथा सामुद्रिक गतिविधियों की दृष्टि से एक अग्रणी राष्ट्र के रूप में विशिष्ट महत्व प्राप्त किया। उनकी कृति पालि, संस्कृत, तमिल, बंगाली, फारसी तथा अंग्रेजी में उपलब्ध साहित्यिक स्रोतों और पुरातात्विक एवं मौद्रिक साक्ष्यों पर आधारित है। लार्ड कर्जन और वी.ए. स्मिथ जैसी प्रसिद्ध हस्तियों ने लेखक को बधाई दी। इसी तरह मुखर्जी की एक अन्य कृति 'लोकल सेल्फ–गवर्नमेंट इन एंशिएंट इंडिया' की, लार्ड ब्राइस लार्ड हाल्डेन और ए.बी. कीथ द्वारा सराहना की गई। 'एंशिएंट इंडियन एजुकेशन' ने प्राचीन काल के समापन

चरण तक ब्राह्मण और बौद्ध शिक्षा के चरणबद्ध विकास तथा प्रगति पर व्यापक परिचर्चा की। द फंडामेंटल यूनिटी ऑफ इंडिया (1914), जैसा कि एफ.डब्ल्यू. टॉमस ने कहा, ''अनेक भौगोलिक एवं राजनैतिक संकल्पनाओं के वैविध्य और संस्कृति की साझी निधि में'' भारत की एकता के विचार को आलोकित किया। मेन एंड थॉट इन एंशिएंट इंडिया में मुखर्जी ने एक प्रतिनिधि चयन के आधार पर प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का एक चित्र प्रस्तुत किया है। इस चयन में याज्ञवल्क्य, बुद्ध, अशोक, समुद्रगुप्त तथा हर्ष को शामिल किया गया है। यद्यपि 'हिंदू सिविलाइजेशन की रचना विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों के अनुसार की गई लेकिन यह अधिक व्यापक महत्व की रचना है। द गुप्ता एम्पायर के नाम से प्रकाशित मोनोग्राफ गुप्तकाल के दौरान देश की नैतिक तथा भौतिक प्रगति को चित्रित करती है। एक अन्य पाठ्यपुस्तक एंशिएंट इंडिया बहुत अच्छी तरह लिखी गई है और जीवंत दृष्टातों से ओत–प्रोत रचना है। वस्तुतः किसी इतिहासकार ने प्राचीन भारत पर राधा कुमुद मुखर्जी से अधिक परिमाण में नहीं लिखा।

5.9 एच.सी. रायचौधरी (1892–1957)

हेमचंद्र रायचौधरी 1918 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक होने से पूर्व विद्यालय एवं महाविद्यालय में एक शिक्षक के रूप में अपनी प्रतिभा की छाप छोड़ चुके थे। वे 1952 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबद्ध रहे। इससे पूर्व 1923 में उनकी पुस्तक द पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशिएंट इंडिया फ्रॉम द एक्सेसन ऑफ परिक्षित टु द एक्सटिंकशन ऑफ द गुप्ता एम्पायर प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के बारे में ए.एल. बाशम की टिप्पणी थी–

अनेक अर्थों में यह पिछले चालीस वर्षों में लिखी गई प्राचीन भारतीय इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण कृति है। क्योंकि 1923 में पहली बार इसके प्रकाशित होने के बाद से अब तक इसके छः संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और इसे एक मानक पाठ्यपुस्तक के रूप में भारत के सभी महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों में प्रायः स्मिथ की पुस्तक 'अर्ली हिस्ट्री' की जगह पर स्थान दिया गया है। इस प्रकार इसने भारतीयों की एक पूरी पीढ़ी की ऐतिहासिक सोच को प्रभावित किया है।

रायचौधरी की सफलता की तुलना रोमन राज्य के ऐतिहासिक उद्भवों पर प्रकाश डालने वाले नीबूर की उपलब्धियों से की जा सकती थी। बाथम उन्हें भंडारकर की चिंतन धारा से सम्बद्ध मानते हैं जिनका उद्देश्य शुष्क सत्य का अन्वेषण करना था। रायचौधरी द्वारा प्रस्तुत कालक्रम ऐसा एकमात्र कालक्रम है जिसके सत्य के निकट होने की सर्वाधिक सम्भावना है। फिर भी बाथम रायचौधरी के लेखन में हिंदू राष्ट्रवाद के अन्तःस्वर को उद्घाटित करते हैं।

5.10 जी.एस. सरदेसाई (1865–1957)

गोविंद सखाराम सरदेसाई बड़ौदा राज्य की सेवा में महाराजा सायाजी राव गायकवाड़ के पाठक और निजी लिपिक के रूप में कार्यरत थे। वे महाराजा के बच्चों के शिक्षक भी थे।

सरदेसाई की सबसे बड़ी उपलब्धि मराठा इतिहास पर केन्द्रित उनकी पुस्तकों की श्रंखला थी जिसे 'मराठी रियासत' नाम दिया गया। इस श्रंखला के आठ खंडों में, जो मराठी में लिखी गई, शुरू से 1848 तक मराठों के पूरे इतिहास को लिपिबद्ध किया गया है। इस कृति को लिखने में उन्हें तीस वर्ष से अधिक समय लगा। लेखक ने मराठा इतिहास पर केन्द्रित स्रोत सामग्रियों के एक विशाल भंडार की गहरी पड़ताल थी। जदुनाथ सरकार के साथ लम्बी और गहरी मित्रता सरदेसाई के लिए अत्यन्त सहायक रही। 1925 में मराठा इतिहासकार ने बड़ौदा राज्य की सेवा से अवकाश ग्रहण किया तो सरकार ने उन्हें 'पेशवा दफ्तर' संपादित और प्रकाशित करने की सलाह दी। तृतीय मराठा युद्ध के बाद जब शक्ति का हस्तांतरण पेशवा से अंग्रेजी सत्ता को हो गया तो पेशवाओं के सभी राजकीय पत्र कंपनी के हाथों में आ गए। ये विभिन्न भाषाओं में 34,972 बंडलों में थे। बम्बई प्रशासन ने सरदेसाई को 'पेशवा दफ्तर' का मुख्य संपादक नियुक्त किया क्योंकि इसमें महत्वपूर्ण जानकारियाँ संग्रहित थीं। 'पेशवा दफ्तर' के 45 प्रकाशित खण्डों में 8,650 पत्र सम्मिलित किए। सरदेसाई ने 'मराठी रियासत' के आठ खंडों को अंग्रेजी में तीन खण्डों के अन्दर समाहित कर दिया। सरदेसाई की ऐतिहासिक कृतियाँ अपनी मूल प्रकृति में विशुद्ध रूप से राजनैतिक थीं।

5.11 जदुनाथ सरकार (1870–1958)

जदुनाथ सरकार 1893 से 1926 तक अंग्रेजी तथा इतिहास विषयों के शिक्षक थे। दो वर्षों तक वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद पर आसीन रहे। उन्होंने दूसरे कार्यकाल के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया क्योंकि उपकुलपति का पद ऐतिहासिक शोध के लिए बाधक सिद्ध हो रहा था।

भारतीय इतिहास में सरकार ने सबसे अधिक लिखा और लगभग पचास उत्कृष्ट कृतियों का सृजन किया। यहाँ जिन कृतियों का उल्लेख किया गया है वे उसकी महानतम् रचनाओं में से कुछ नाम हैं। इंडिया ऑफ औरंगजेब, इट्स टोपोग्राफी, स्टेटिस्टिक्स एंड रोडस (1901) सामान्य अर्थ में इतिहास की पुस्तक नहीं थी बल्कि देश के भौतिक पक्षों का विवरण थी। 1912 और 1924 के मध्य लिखी गई हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब उनकी सबसे प्रमुख कृति थी। इस पुस्तक में सरकार ने औरंगजेब के जटिल व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला। पुस्तक औरंगजेब के शासनकाल के विविध पक्षों को समेटती हुई, भारत की आर्थिक दशा और नियति पर औरंगजेब के लम्बे शासनकाल के प्रभाव के मूल्यांकन के साथ समाप्त होती है। इस बीच सरकार की एक अन्य पुस्तक शिवाजी एंड हिज़ टाइम्स (1919) प्रकाशित हुई। उनकी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' के तीसरे खण्ड ने देश के मुस्लिम हलकों में एक आवेश उत्पन्न कर दिया। इसी तरह 'शिवाजी' ने महाराष्ट्र के लोगों में असंतोष और आक्रोश पैदा कर दिया। सरकार की पुस्तक ने यह दर्शाया कि यद्यपि मराठा नायक को शानदार सफलता मिली। किंतु

वह एक राष्ट्र का निर्माण करने में विफल रहे और उनकी अधिकांश संस्थाऐं पूरी तरह मौलिक नहीं थीं। 1922 में सरकार ने परवर्ती मुगलों पर विलियम इर्विन की अधूरी पुस्तक को संपादित किया और इतिहास 1738 से आरम्भ किया जहाँ इर्विन ने अपना लेखन बन्द किया था। उन्होंने 'नादिरशाह' (1922) और एक अन्य महत्वपूर्ण कृति द फॉल ऑफ द मुगल एंपायर (1932–50) के रूप में इर्विन के काम को पूरा किया। 1739 में नादिरशाह के प्रस्थान से शुरू होकर द फॉल द मुगल एंपायर के चार खण्डों का समापन 1803 में अंग्रेजों द्वारा दिल्ली और आगरा पर विजय के साथ होता है। सरकार की पुस्तक मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इंडिया (1960) में उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई। उनकी रचनाओं का विशिष्ट लक्षण मूल विचार, कथ्य और प्रस्तुति का एकीकरण है। वे पाठक को प्रत्यक्ष, सहजता से प्रभावशाली भाषा में विचारों का संप्रेषण करते हैं। उनकी शैली आलोचनात्मक है।

सरकार केवल दरबार में फारसी में लिखे विवरणों पर निर्भर नहीं थे उन्होंने विभिन्न भाषाओं में लिखे गए पत्रों तथा डायरियों के साथ–साथ सभी मौलिक स्रोत सामग्रियों पर बल दिया। उन्होंने विषय से सम्बद्ध ऐतिहासिक स्थलों का दौरा किया जिससे वे वहाँ के भौगोलिक स्वरूप तथा क्षेत्र से स्वयं को अवगत कर सकें। उन्होंने मुगल काल के प्रत्येक किले, घाटी एवं युद्ध की गहन पड़ताल की। समकालीन स्रोतों के संकलन के साथ–साथ उन्होंने सत्यता की पुष्टि के लिए वैज्ञानिक छानबीन की पद्धति अपनाई। फिर भी सरकार के आलोचक भी थे यद्यपि उनमें से कोई भी उनके ऐतिहासिक प्रतिमानों के तथ्यात्मक आकार का खंडन नहीं कर पाया। जदुनाथ सरकार की तुलना रैंक और मामसेन से की जा सकती है।

भारत में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की एक लम्बी परम्परा है जो के.एम. मनिक्कर से होते हुए आ.सी. मजूमदार तक जाती है जिसके दूरगामी प्रभाव हुए।

5.12 भारतीय राष्ट्रीय इतिहास लेखन का मूल्यांकन

भारतीय जीवन एवं संस्कृति के विरुद्ध यूरोप द्वारा लगाए गए आरोपों से जूझते हुए राष्ट्रीय अस्मिता की खोज में उत्सुकता और न्याग्रता से संलग्न भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन कभी–कभार सुसंगत ऐतिहासिकता के अपने मार्ग से विचलित दिखाई देता है। यह असंगतता अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होती है।

5.12.1 शोध पद्धति सम्बन्धी त्रुटियाँ

अन्य देशों की तरह भारत का राष्ट्रवादी इतिहास लेखन भी कहीं–कहीं स्वभाविक रूप से शोध पद्धति संबंधी दोष के लिए जिम्मेदार था। इनमें सबसे प्रमुख दोष वस्तुनिष्ठता के आदर्श से विक्षेप था। प्राचीन भारत में उत्तरदायी सरकार के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए जायसवाल ने अभिलेखों तथा साहित्यिक पाठों में उल्लिखित शब्दों तथा अनुच्छेदों को नई व्याख्याओं के सांचे में ढाल दिया। ए.एल. बाशम बताते हैं कि किस प्रकार जायसवाल अपनी

प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दू पॉलिटी' में अपन निष्कर्षों पर पहुँचे– ''अपनी अभिधारणाा को सिद्ध करने के लिए जायसवाल ने विशाल परिमाण में स्रोतों का प्रयोग किया, किन्तु उन्होंने उनका प्रयोग किसी बैरिस्टर की भांति करते हुए एक अनुकूल न्यायिक फैसला पाने का प्रयत्न किया। हर ऐसे अनुच्छेद पर बल दिया जो उनके मामले को मजबूत बनाता और सर्वाधिक सकारात्मक आलोक में इसकी व्याख्या करता जबकि अपने विरुद्ध सभी साक्ष्यों को दरकिनार कर दिया।''

5.12.2 अंध देशभक्ति के दावे

राष्ट्रवाद से अंधदेशभक्ति तक का फासला केवल चंद कदम का ही होता है। यदि साम्राज्यवादी इतिहासकार भारत के अतीत में सब कुछ बुरा देखने के लिए प्रवृत्त थे तो कुछ राष्ट्रवादी इतिहासकार इसमें सब कुछ अच्छा देखने के लिए आमादा थे। रोमिला थापर लिखती हैं– ''प्राचीन भारत के अतीत का निस्संकोच महिमामंडन किया गया। यह अंशतः मिल तथा अन्य लेखकों की आलोचना के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी और अंशतः राष्ट्रीय आत्मगौरव के निर्माण की प्रक्रिया का एक अनिवार्य चरण था। गौरवशाली अतीत अपमानजनक वर्तमान के लिए एक तरह की क्षतिपूर्ति का प्रतीक भी था।''

5.12.3 आत्म–खंडन एवं सांप्रदायकिता

राष्ट्रवादी इतिहासकार समय–समय पर स्वयं अपने ही विचारों या दृष्टिकोणों के अंतर्विरोध पर बल देते या उन्हें उचित ठहराते हुए देखे जा सकते हैं। सैन्य शक्ति और अंहिसा के मूल्य, लोकतान्त्रिक परम्पराऐं और राजसी गौरव, हिंदुत्व की आध्यात्मिक श्रेष्ठता और प्राचीन भारतवासियों की सांसारिकता, वैदिक काल में महिलाओं की उच्च स्थिति और सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा नैतिक आधारों पर उनकी निम्न स्थिति तथा मुख्य धारा से अलगाव अंतर्विरोध के केन्द्र में है।

राष्ट्रवादी इतिहास लेखन में कभी–कभार मुसलमानों के विरुद्ध राजपूतों, मराठों और सिक्खों के सामरिक अभियानों के वीरतापूर्ण वर्णन अतिशय की सीमा तक पहुँच जाते, जो अन्य इतिहासकारों के लिए चुनौती की तरह थे।

5.12.4 प्रेरक तत्व

भारतीयों ने अपने राष्ट्रीय विकास का आधार वर्तमान में ही नहीं बल्कि प्राचीन अतीत में खोजा। नए स्रोतों से लैस होकर भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकार धर्मयोद्धाओं जैसे उत्साह के साथ अपने राष्ट्र तथा संस्कृति के विरुद्ध पश्चिमी आरोपों का खंडन करने के लिए वैचारिक समर में कूद पड़े। उनके अनुसंधानों ने भारत के प्राचीन अतीत के अनेक पक्षों को उद्घाटित किया तथा इस नए ज्ञात ज्ञान भंडार ने भारतीयों के अंदर राष्ट्रीय उत्साह एवं गौरव का संचार किया, स्वयं राष्ट्रवाद को समृद्ध बनाया तथा स्वतन्त्रता के लिए हो रहे संघर्ष को तीव्र कर

दिया। रोमिला थापर का मानना है कि दोषों के बाद भी राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने प्राचीन भारतीय इतिहास का विवेचन–विश्लेषण करने में सार्थक भूमिका निभाई।

5.12.5 क्षेत्रीय और स्थानीय इतिहास का विस्तार

रोमिला थापर पुनः अवलोकन करती हैं कि राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का एक महत्वपूर्ण परिणाम क्षेत्रीय एवं स्थानीय इतिहास में रूचि का विकसित होना था। इसके फलस्वरूप स्थानीय संग्रहालयों में अभिनव स्रोत सामग्रियों की खोज हुई तथा क्षेत्रीय स्तर पर अधिक संख्या में पुरातत्वीय कार्य हुए। सांस्कृतिक प्रणाली में क्षेत्रीय विविधताओं के साक्ष्य से यह तथ्य सामने आया कि गंगा के मध्यवर्ती मैदानी क्षेत्र के इतिहास के आधार पर सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप के बारे में कोई सामान्यीकरण करना असंगत और अनैतिहासिक है।

5.12.6 आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का विस्तार

राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार की शोषक उत्पीड़क प्रकृति को नग्न कर दिया। इसके लिए दादाभाई नौरोजी, रोमेश चंद्र दत्त आदि विद्वानों ने श्रमसाध्य प्रयास किए।

इस धारा ने भारतीय जनजीवन तथा संस्कृति के बहुआयामी पक्षों से सम्बद्ध जानकारियों के एक विपुल भंडार को आलोकित किया और इससे भारत के अतीत के अध्ययन की दृष्टि से एक नए अभिगम का संकेत मिला।

5.13 सारांश

राष्ट्रवादी आंदोलन के दौरान इतिहास की राष्ट्रवादी प्रवृत्ति स्वभाविक थी। अपने अतीत से विमुख और वर्तमान से संत्रस्त भारत को उन्नीसवीं शताब्दी में जब ज्ञान हुआ कि वह एक गौरवशाली परम्परा का उत्तराधिकारी है तो पिछली कुछ शताब्दियों की अकर्मण्यता और वैचारिक शून्यता पर दुःख हुआ। तभी आर्थिक आधार बन जाने पर, नई शिक्षा और चेतना से लैस नवमध्यमवर्ग ने सिर उठाया। सारी दुनिया का विकास उसकी आँखें खोलने लगा। उसकी चेतना का विस्तार होने लगा। भारतीयों ने देश प्रेम को नए संदर्भों में समझना शुरू किया। स्वाभाविक था कि परतन्त्रता बोझ और अवरोध लगने लगी। देश प्रेम राष्ट्रधर्म हो गया। प्रबुद्ध लोगों ने अपने हित का तालमेल बिठाकर उसे आगे बढ़ाना शुरू किया। इतिहासकार कैसे पीछे रहता ? उसने भी देशभक्ति का जामा पहना और इतिहास की ऐसी व्याख्या शुरू की जिससे देश को प्रेरणा मिले और वह अपने 'स्व' को पहचानकर उसके विकास में लग सके। दूसरी ओर साम्राज्यवादी ऐतिहासिक दृष्टिकोण ने इन्हें प्रेरित किया। इन राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय राष्ट्रीय अस्मिता पर ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा किये प्रत्येक प्रहार का हर संभव प्रतिकार करने की कोशिश की। भारतीय राष्ट्रावादी इतिहासकारों ने प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को एक गौरवशाली और समृद्ध परम्परा के रूप में प्रस्तुत किया। एक धारा ने मध्यकालीन भारतीय

इतिहास को एक सुन्दर सांस्कृतिक समन्वय के रूप में चित्रित किया एवं आधुनिक भारतीय इतिहास में समस्त भारत में फैलती राष्ट्रीय चेतना की भावना एवं जनजागृति का प्रखरता के साथ सामने रखा। इस प्रकार भारतीय इतिहास लेखन के क्षितिज का विस्तार हुआ और विशुद्ध भारतीय राष्ट्रवादी दृष्टिकोण ने चिंतन के नए आयाम गढ़े तथा औपनिवेशिक स्थापनाओं को खोखला साबित कर दिया।

5.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. इतिहास लेखन के राष्ट्रवादी दृषिकोण की विवेचना कीजिए।
2. भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. प्रमुख भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकार और उनक लेखन का मूल्यांकन कीजिए।
4. भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
5. ''साम्राज्यवादी इतिहास लेखन की प्रतिक्रिया स्वरूप राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का उदय हुआ।'' विवेचना कीजिए।
6. सर जदुनाथ सरकार के लेखन पर एक टिप्पणी लिखिए।

5.15 संदर्भ ग्रंथ

1. ई. श्रीधरन– इतिहास–लेख एक पाठ्य पुस्तक
2. वी.के. श्रीवास्तव– इतिहास लेखन : अवधारणाएं, विधाएं एवं साधन
3. गोविन्द चंद्र पाण्डे – इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त
4. लाल बहादुर वर्मा– इतिहास क्यों–क्या–कैसे
5. के.एल. खुराना एवं आर.के. बंसल– इतिहास लेखन धारणाएं तथा पद्धतियाँ
6. रामशरण शर्मा– भारतीय इतिहास एक पुनर्विचार

इकाई छह ; भारत में मार्क्सवादी, सबाल्टर्न इतिहास लेखन

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन का उद्भव

6.4 भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन का विकास

6.4.1 डी.डी. कौशाम्बी

6.4.2 आर.एस. शर्मा

6.5 भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन का उत्कर्ष

6.5.1 रोमिला थापर

6.5.2 इरफान हबीब

6.5.3 विपिन चंद्र

6.6 भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन का प्रभाव

6.6.1 इतिहास के परिक्षेत्र का व्यापक होना

6.6.2 अंतरानुशासनिक या अंतर्विषयक पद्धतियाँ

6.6.3 उद्भव सम्बन्धी विवरण

6.6.4 व्याख्या और टीका का समर्थन

6.6.5 पश्चिमी समझ की समालोचना

6.6.6 अंहिसा का अर्थशास्त्र

6.7 भारत में सबाल्टर्न इतिहास लेखन का उद्भव

6.8 ग्रामशी की छः सूत्रीय पद्धति सम्बन्धी कसौटियाँ

6.9 सबाल्टर्न इतिहास लेखन की प्रकृति

6.10 सबाल्टर्न इतिहास लेखन का विकास

6.11 सारांश

6.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.13 संदर्भ ग्रन्थ

6.1 प्रस्तावना

समय–समय पर विभिन्न दार्शनिकों ने अपनी–अपनी विचारधाराओं से अपने युग को प्रभावित किया है। आधुनिक युग में इतिहास लेखन पर कार्ल मार्क्स का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। कार्ल मार्क्स इतिहास दर्शन के महान विचारक, नैतिकता के महान समर्थक और सामाजिक विचारधारा के प्रबल अनुयायी थे। इतिहास की उनकी व्याख्या को ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। हीगल के द्वन्द्वात्मक विचार को मार्क्स ने निस्संकोच ज्यों का त्यों स्वीकार किया। यह उपयुक्त ही है क्योंकि मार्क्स ने अपने भौतिकवादी दर्शन को हीगल के आदर्शवादी दर्शन के प्रतिपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। मार्क्स का दावा था कि वह अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है और उसके अनुसार हीगल अपने सिर के बल खड़ा था। मार्क्स ने इस बात पर बल दिया कि वास्तव में ऐतिहासिक संदर्भ में मनुष्य को समझने के लिए 'उत्पादन तथा विनिमय' के साधनों को समझना आवश्यक है।

यदि हीगल ने इतिहास का प्रारूप दर्शन में पाया था, तो मार्क्स ने उसकी कुंजी आर्थिक परिवर्तनों में खोजी है। औत्पादनिक साधनों और सम्बन्धों पर समाज की संस्थाओं और धारणाओं की इमारत टिकी है। किन्तु प्रत्येक ऐसी व्यवस्था में एक अन्तर्द्वन्द्व रहता है। एक वर्ग उत्पादन में परिश्रम करता है तो दूसरा साधनों के स्वामित्व के कारण उसके अतिरिक्त फल का उपभोग। इस प्रकार इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। मार्क्स ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि पूंजीवाद अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त है और एक क्रांति के द्वारा वह साम्यवाद की भूमिका बनेगा। पूंजीवाद का विश्लेषण मार्क्स की विशेषता है। उन्नीसवीं शताब्दी में मार्क्स के विचारों से कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा। मार्क्स के विचार वैश्विक पटल पर छाने लगे। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या मार्क्स के वैचारिक खांचे में रखकर होने लगी और आर्थिक परिवर्तन किसी भी घटना का केन्द्र बिन्दू हो गए। ऐसे वैश्विक परिदृश्य में बीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारत में भी मार्क्सवादी इतिहास लेखन का पदार्पण हुआ।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इतिहास लेखन का एक नवीन सम्प्रदाय उभरकर सामने आया, जिसे उपाश्रयवादी (सबाल्टर्न) सम्प्रदाय कहा जाता है और इतिहास लेखन की इस विचारधारा को सबाल्टर्न। चूंकि सबाल्टर्न इतिहासकारों के अध्ययन की प्रमुख विषय–वस्तु निम्न वर्गीय अध्ययन के इर्द–गिर्द घूमती है अतः कतिपय विद्वान इसे निम्न वर्गीय अध्ययन भी कहते हैं। सबाल्टर्न ऐप्रोच, मार्क्सवाद की ही एक उपशाखा है जो इतिहास में वंचितों और पिछड़ों की भूमिका खोजती है। यह मार्क्स का सर्वधारा वर्ग ही है, हालांकि सबाल्टर्नवादियों ने स्वयं को मार्क्सवादियों से प्रथक माना है।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- भारत में मार्क्सवादी इतिहास का उद्भव

- भारत के प्रमुख मार्क्सवादी इतिहासकार और उनका लेखन
- भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन का विकास और उत्कर्ष
- भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन के प्रभाव
- सबाल्टर्न इतिहास लेखन
- सबाल्टर्न इतिहास लेखन की प्रकृति, उद्‌भव एवं विकास

6.3 भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन

6.3.1 भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन का उद्‌भव

20वीं शताब्दी के मध्य ग्रेट ब्रिटेन में कम्युनिस्ट पार्टी के एक सक्रिय सदस्य के रूप में इतिहासकार ई.पी. थाम्सन ने मार्क्सवादी हिस्टोरियन ग्रुप की स्थापना में सहयोग किया जो कालान्तर में असाधारण रूप से विकासशील सिद्ध हुआ। थाम्सन के साथी सदस्यों में क्रिस्टोफर हिल, एरिक हाब्सबाम और रडनी हिल्टन इत्यादि शामिल थे। इसी मार्क्सवादी हिस्टोरिकल ग्रुप द्वारा आज की प्रसिद्ध ऐतिहासिक पत्रिका 'पास्ट एण्ड प्रेजन्ट' का बीजारोपण किया गया। 1950 के पश्चात भारत में भी मार्क्सवादी इतिहास लेखन की ओर रूझान बढ़ा। भारतीय मार्क्सवादी विद्वानों को 'पास्ट एण्ड प्रेजन्ट' जैसी पत्रिका 'संक्रमण पर बहस' और हिल, हाब्सन तथा थाम्सन जैसे इतिहासकारों की रचनाएं सर्वाधिक प्रेरणात्मक प्रतीत हुईं, जिन्हें पश्चिम में शैक्षणिक प्रतिष्ठानों ने अक्सर दर–किनार करने का प्रयास किया था। विद्वानों की मान्यता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय इतिहास लेखन में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के प्रभाव क्षेत्र का असाधारण विस्तार हुआ है। यह आधुनिक और मध्यकालीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में तो सत्य लगता ही है, प्राचीन भारतीय इतिहास के विषय में भी सत्य लगता है।

भारतीय इतिहास लेखन पर मार्क्सवाद के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए सुमित सरकार ने लिखा है कि ''1950 के दशक से इतिहास के उन प्रमुख लेखकों की रचनाओं में गुणात्मक परिवर्तन हुआ जो शोध के विषयों की मूल पद्धतियों और चयन में अत्यन्त महत्वपूर्ण बदलाव के प्रति समर्पित थे। प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास लेखन में, ये परिवर्तन सर्वाधिक स्पष्ट रहे हैं। 1950 के दशक के अंत में उनसे सम्बन्धित रचनाओं ने 'सामाजिक निमार्णों' भारतीय सामंतवाद के अस्तित्व और प्रकृति के बारे में वाद–विवादों अथवा पूर्व औपनिवेशिक युगों में पूंजीवादी विकास की सम्भावनाओं जैसे विषयों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। शिलालेखों और भूमि अनुदानों की जाँच मुख्य रूप से राजाओं, राजवशों अथवा विजयों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए नहीं बल्कि उन अनुमानों के लिए की गई है जो विस्तृत सामाजिक–आर्थिक सम्बन्धों और राज्य निर्माण के प्रश्नों पर उनसे निकाले जा सकते थे। इसी प्रकार मध्यकालीन भू–स्वामित्व, दस्तकारी और व्यवसाय सम्बन्धी ढांचों के प्रभावशाली विस्तृत अध्ययनों ने पुराने राजवंशीय और सैनिक स्थानों का इतिहास ले लिया है। इस स्थिति में मार्क्स ने एक बड़ी हद तक रॉके का स्थान छीन लिया।''

भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परम्परा के प्रारम्भिक प्रयास के रूप में बी.एन. दत्त की दो प्रमुख पुस्तकों 'डाइलेक्टिकस ऑफ लैण्ड औनरशिप इन इंडिया' एवं 'कास्ट एण्ड क्लास इन एन्शियन्ट इण्डिया' को लिया जा सकता है। भारत के प्रमुख मार्क्सवादी विचारक श्रीपाद अमृत डांगे ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखी गई अपनी कृति 'इण्डिया फ्राम प्रिमिटिव कम्युनिज़्म टू स्लेवरी' में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारत भी पश्चिमी देशों की भांति विकास के विभिन्न चरणों–दासता और सामंतवाद से होकर गुज़रा है। डांगे ने आर्यों की प्राचीन सामुदायिक व्यवस्था की समाप्ति के उपरान्त भारत में दास समाज के उदय का दावा किया है। मार्क्सवाद के प्रति अत्याधिक झुकाव के बावजूद दत्त एवं डांगे की कृतियों को भारतीय इतिहास में कोई विशेष महत्व नहीं मिला।

6.4 भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन का विकास

भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन के विकास में निम्नलिखित इतिहासकारों का विशेष योगदान रहा है–

6.4.1 डी.डी. कौशाम्बी (1907–1966)

जेम्स मिल और विंसेंट स्मिथ के बाद अगर किसी एक लेखक ने भारतीय इतिहास लेखन को सबसे ज्यादा प्रभावित किया तो वे दामोदर धर्मानंद कौशाम्बी थे। यद्यपि अल्पायु में ही कौशाम्बी का निधन हो गया। किन्तु उन्होंने अपने पीछे शोध पत्रों और आलेखों की एक विशाल धरोहर छोड़ी। उनकी प्रमुख कृतियां हैं : एन इंट्रोडकशन टु द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री (1956), द कल्चर एंड सिविलाइजेशन ऑफ एंशियंट इंडिया इन हिस्टोरिकल आउटलाइन (1965), एक्जेस्परेटिंग एस्सेजः एक्सरसाइज इन द डालेक्टिकल मेथड और मिथ एंड रिएलिटीः स्टडी इन द फारमेशन ऑफ इंडियन कल्चर। इन कृतियों में प्रथम दोनों ने भारतीय इतिहास लेखन में क्रांति ला दी।

प्राचीन इतिहास को पुनः प्रस्तुत करने के लिए कौशाम्बी संयुक्त पद्धतियों या तुलनात्मक पद्धति और पड़ताल की अंतर्विषयक तकनीकी का प्रयोग करते हैं। यह देखते हुए कि भारत में निर्जीव अतीत के अब तक उपलब्ध साक्ष्य विशाल परिमाण में मौजूद हैं, उन्होंने पुरातत्व द्वारा उस अतीत के सामने लाए गए भौतिक अवशेषों अर्थात् मकानों, समाधि के भीतर रखी गई वस्तुओं, उत्पादन के उपकरणों तथा घरेलू इस्तेमाल के बरतनों, बलि वेदी के शिलाखंडों, गुफाओं और चट्टानों के अंदर स्थित आश्रय स्थलों आदि पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। तत्पश्चात् उन्होंने प्राचीन समुदायों के साथ–साथ आधुनिक भारतीयों के धार्मिक एवं सामाजिक कार्य व्यवहार और अन्ततः पुरातन मानव प्रकारों की सूक्ष्म पड़ताल की ओर ध्यान दिया। इस तरह के प्राथमिक स्रोतों जो किसी पुस्तकालय द्वारा प्रदान नहीं किए जा सकते हैं, के आलोक में उन्होंने पूववर्ती कालों के उत्पादन संबंधों और सामाजिक सम्बन्धों एवं उनके संगठन के मूल

तक पहुँचने का प्रयत्न किया। कौशाम्बी ने संस्कृत में अपने ज्ञान और उस भाषा में शब्दोत्पत्ति पर आधारित विश्लेषण की क्षमता के कारण वैदिक काल की सामाजिक पृष्ठभूमि का व्यापक विवरण प्रस्तुत किया।

कौशाम्बी ने कहा कि भारत को समझने का एक महत्वपूर्ण सूत्र जनजाति से जाति की ओर संक्रमण है जिसके अन्तर्गत लघु स्थानीय समूह एक सामान्यीकृत समाज में परिणत हो गए। यह संक्रमण बहुत हद तक विभिन्न क्षेत्रों में हल से खेती के आरम्भ के परिणामस्वरूप हुआ जिसने पूरी उत्पादन प्रणाली को बदल दिया। जनजातियों और कुलों के ढांचे को तोड़ दिया और जाति को सामाजिक संगठन का एक वैकल्पिक रूप बना दिया।

रोमिला थापर एक मूल्यांकन करते हुए लिखती हैं कि कौशाम्बी की कृतियों की गम्भीर गुणवत्ता की तुलना में उनके चिंतन और विश्लेषण की सीमाओं का महत्व काफी कम है। कौशाम्बी ने प्राचीन भारतीय इतिहास का एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिसके द्वारा उन आधारभूत प्रश्नों के उत्तर पाने की कोशिश की गई कि कैसे और क्यों भारतीय समाज उस रूप में ढल पाया है जिस रूप में आज वह अस्तित्व में है। इस तरह के प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयत्न करते हुए उन्होंने एक ऐसा सैद्धान्तिक ढांचा प्रदान किया जो मार्क्सवाद का केवल एक यांत्रिक अनुप्रयोग मात्र नहीं था। उदाहरण के लिए उन्होंने भारतीय अतीत के सन्दर्भ में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित एशियाटिक उत्पादन पद्धति की धारणा को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया और सामंती उत्पादन पद्धति के भारतीय ऐतिहासिक संदर्भ में भी उन्होंने अपने निजी विचार व्यक्त किए। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित कौशाम्बी का दृष्टिकोण विभिन्न स्रोतों का सही विवेचन करने की अपनी क्षमता और चिंतन की मौलिकता से उद्‌भूत हुआ था।

कौशाम्बी अपनी कृतियों में भारतीय समाज में प्रारम्भिक काल में दासों के अस्तित्व को तो स्वीकार करते हैं मगर डांगे की भांति दास समाज के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं। कौशाम्बी की मान्यता है कि आर्य जनजातियों द्वारा गैर–आर्य दासों का सामूहिक रूप से शोषण किया जाता था। उनके कृतित्व के महत्व को रेखांकित करते हुए सतीशचन्द्र ने लिखा है कि ''मार्क्सवादी इतिहासकारों में डी.डी. कौशाम्बी निस्संदेह सर्वश्रेष्ठ रहे हैं और उन्होंने बहुत से युवा इतिहासकारों के चिंतन को शक्तिशाली रूप से प्रभावित किया है।'' हाल में प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर हम उनके कुछ निष्कर्षों पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य हो सकते हैं किन्तु उनका प्रभाव निस्संदेह दीर्घकालिक है।

6.4.2 आर.एस. शर्मा (1919–2011)

प्राचीन भारतीय मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परम्परा में कौशाम्बी के बाद रामशरण शर्मा जैसे मार्क्सवादी इतिहासकार का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। उनकी प्रमुख कृतियां– 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति और

सामाजिक संरचनाएं, सामंतीय समाज और संस्कृति, शुद्राज इन एंशियन्ट इंडिया, भारतीय सामंतवाद आदि में मार्क्सवादी दृष्टिकोण की झलक देखी जा सकती है। रामशरण शर्मा भारत में सामंतवाद के विकास को क्षेत्रीय प्रभावशाली व्यक्तियों के एक शक्तिशाली वर्ग के उदय के रूप में देखते हैं जो ग्रामीण अधिशेष का निपटारा करता था और यही सामंतवादी वर्ग भारत में सामाजिक रूप से शक्तिशाली वर्ग बना।

जाति या वर्ण व्यवस्था की गहन पड़ताल भारत के सम्पूर्ण इतिहास में सामाजिक सम्बन्धों की प्रकृति को समझने की दृष्टि से केन्द्रीय महत्व रखती है। शर्मा द्वारा प्रगति शूद्राज इन एंशियन्ट इंडिया (1958) एक ऐसी रचना है जिसमें समाज के निम्न वर्गों के प्रति उनकी सहानुभूति सबसे पहले व्यक्त हुई। मुख्य रूप से साहित्यिक स्रोतों पर निर्भर यह कृति अत्यन्त विद्वतापूर्ण ढंग से समाज के निम्न वर्गों के साथ उत्पादन के साधनों और उच्च वर्गों के सम्बन्ध को आलौकिक करती है। इस रचना की विषय–वस्तु वैदिक काल से गुप्तकाल के समापन–चरण तक की अवधि से सम्बद्ध है। बड़े पैमाने पर खेती के लिए लोहे के प्रयोग ने ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक जनजातीय पशुचारक और सर्वकल्याणकारी वर्गविहीन वैदिक समाज को पूर्ण रूप से वर्गों में विभाजित सामाजिक व्यवस्था में रूपांतरित कर दिया। नई व्यवस्था के लिए विशाल श्रमशक्ति की आवश्यकता थी जो परम्परा, धर्म और विचारधारा को एक साथ एक सामाजिक संरचना में ढालते हुए जारी रखी गई। यह संरचना वर्ण व्यवस्था कहलाई। जैसा कि धर्मशास्त्रों द्वारा निर्देश दिया गया, शूद्र को अन्य तीन उच्चतर वर्णों की सेवा करनी थी जबकि मनु ने इसके लिए दासता की प्रस्थिति निर्धारित कर दी। भारतीय दास को आर्थिक, राजनैतिक, वैधानिक, सामाजिक और धार्मिक सभी मोर्चों पर विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों से जूझना पड़ता था और वह एक सामान्य दासता का जीवन जीने के लिए विवश था। शर्मा लिखते हैं कि ''शूद्रों के कौशल और वैश्य किसानों द्वारा उत्पादित कृषि अधिशेष ने संयुक्त रूप से प्राचीन भारतीय समाज के विकास के लिए भौतिक आधार विकसित किया जो एक वैश्य–शूद्र संघटन था।'' 11वीं शताब्दी में अलबरूनी ने यह महसूस किया कि वैश्यों और शूद्रों के बीच भेद को समझ पाना कठिन था पर साथ ही साथ संस्कृति के अधोवर्ती चरणों में अनेक शूद्र कारीगरों और शिल्पकारों तथा जनजातीय लोगों को अछूतों की श्रेणी में धकेल दिया गया। इसके अतिरिक्त शर्मा की दृष्टि में सामंतवाद का राजनैतिक सारतत्त्व भू–राजस्व के आधार पर स्थापित संपूर्ण प्रशासकीय ढांचे के संगठन और भू–दासता की संस्था के आर्थिक घटक में निहित था। आर. एस. शर्मा की पुस्तक अर्बन डीके इन इंडिया (1987) भारत में सामंतवाद की उत्पत्ति और विकास से सम्बन्धित उनके विचारों को और अधिक दृढ़ता से व्यक्त करती है।

6.5 भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन का उत्कर्ष

मार्क्सवादी इतिहास लेखन को उसके चरमोत्कर्ष तक पहुँचाने में निम्नलिखित इतिहासकारों का प्रमुख योगदान है–

6.5.1 रोमिला थापर (जन्म–1930)

रोमिला थापर का जीवन प्राचीन भारत पर रचनात्मक शोध–अनुसंधान को पूरी तरह समर्पित है। रोमिला थापर की प्रमुख कृतियां अशोका एंड द डिक्लाइन ऑफ द मौर्याज़, हिस्ट्री ऑफ इंडिया, एंशियंट इंडियन सोशल हिस्ट्री, फ्राम लीनिएज टु स्टेट, इंटरप्रेटिंग अर्ली इंडिया आदि हैं। रोमिला थापर हिस्ट्री ऑफ इंडिया में कहती हैं ''राजनैतिक इतिहास और राजवशों के अध्ययन अब तक ऐतिहासिक व्याख्या और विश्लेषण के महत्वपूर्ण पक्ष बने रहे हैं किन्तु इन्हें अन्य विशेषताओं के आलोक में देखा जाता है जो एक जनसमुदाय और एक संस्कृति का निर्माण करते हैं। राजनैतिक प्रणाली में परिवर्तन आर्थिक संरचना में परिवर्तनों से अविच्छिन रूप से जुड़े हुए हैं और उन्होंने समन्वित रूप से सामाजिक सम्बन्धों पर गहरा प्रभाव डाला है। वे अपने लेखन से इतिहास के क्षेत्र को व्यापक बनाते हुए प्रतीत होती हैं। इस व्यापक होते क्षेत्र का आधार बहुत मजबूत है जो मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर टिका हुआ है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के क्षेत्र में रोमिला थापर के कार्य ने ऐतिहासिक क्षितिज को अत्यधिक व्यापक विस्तार प्रदान किया है।

6.5.2 इरफान हबीब (जन्म–1931)

इरफान हबीब मार्क्स से एवं उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अत्यधिक प्रभावित हैं, उनका मानना है कि मार्क्स को समझने के लिए भी एक वृहद वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इरफान हबीब ने मार्क्स के पक्ष को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''मार्क्स को कुछ अनुयायियों ने सार्वभौमकाल विभाजन तय किए जाने पर जोर देकर (आदि साम्यवाद, दासता, सामंतवाद, पूंजीवाद) और सभी समाजों का वर्गीकरण इन्हीं के बाद एक घटित होने वाली सामाजिक संरचनाओं के अनुसार किए जाने पर बल देकर, मार्क्स का अहित किया है। कोई भी यह देख सकता है कि मार्क्स ने पूंजीवाद के विकास या राजनीतिक इतिहास पर जिस प्रकार अपनी ही विधि को अपने कार्यों पर लागू किया है, वह कहीं अधिक परिष्कृत तरीका है और न ही इसमें कोई सच्चाई है कि मार्क्स का मत था कि सभी प्रकार के विचार भौतिक विश्व को प्रतिबिम्बित करते हैं। इसके विपरीत मार्क्स ने केवल यह चेतावनी दी कि सैद्धांतिक अथवा वैचारिकों रूपों को प्राकृतिक विज्ञान के समाज यथातथ्य रूप में निर्धारित किया जा सकता है बल्कि उनकी यह भी मान्यता थी कि मानव समाज की प्रगति उसे आवश्यकता के क्षेत्र से निकालकर स्वतन्त्रता की ओर ले जाती है। इस फार्मूले का मतलब इसके सिवाय और क्या हो सकता है कि मानव समाज की प्रत्येक प्रगति के साथ, भौतिक परिस्थितियों का महत्व मानव चेतना के

सामने कुछ और कम हो जाता है। इसके अलावा मार्क्स ने आख्याताओं की इस अवधारणा को भी निश्चय ही माना होता कि मनुष्य एक अकेले व्यक्ति के रूप में मुख्यतः और अनिवार्यतः अपने हितों के लिए ही काम करता है।''

इरफान हबीब के साथ–साथ नूरूल हसन एवं बी.आर. ग्रोवर आदि ने भी मध्यकालीन भारतीय इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टि से लेखन किया है। सोवियत इतिहासकार रेसनर एवं मार्क्सवादी इतिहासकार रजनी पामदत्त ने 'इंडिया टुडे' में मत व्यक्त किया कि आधुनिक युग के पहले की भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद के विकास की सम्भावनाएं मौजूद थीं और इस तरह के मूल तत्वों ने जातियों के उदय में योगदान दिया जो मुगल साम्राज्य के विघटन की सहकारी कारण बनी किन्तु ये दोनों ही प्रक्रियाऐं ब्रिटेन द्वारा भारत विजय के कारण निष्फल हो गयीं। इस सम्बन्ध में विरोध व्यक्त करते हुए इरफान हबीब ने लिखा है कि ''पूंजीवाद और जातीयता का उभरना एक दूसरे से जुड़ी हुई दो ऐसी प्रक्रियाएं हैं जो केवल आधुनिक भारत की घटनाएं हैं और जिन्हें मार्क्स ने 'पुनरूत्पत्ति' की संज्ञा दी जो कि औपनिवेशिक शासन का अनिश्चित परिणाम थी। इन प्रक्रियाओं का आरम्भ उसके पहले के काल में मानना अनैतिहासिक बात होगी। इरफान हबीब के इस कथन से स्पष्ट है कि मार्क्स के सिद्धान्तों को लेकर भी सभी भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकार एक–दूसरे का अन्धानुकरण नहीं करते थे। इरफान हबीब की प्रमुख कृतियां इंटरप्रेटिंग इंडियन हिस्ट्री, कास्ट एंड मनी इन इंडियन सोसायटी, प्रॉब्लम्स ऑफ मार्क्सिस्ट हिस्टोरियोग्राफी, द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया, द कैम्ब्रिज इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, एन एटलस ऑफ द मुगल एम्पायर आदि हैं। वे सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि मध्यकालीन सामाजिक संगठन का मुख्य अंतर्विरोध केन्द्रीकृत शासक वर्ग (राज्य) और किसानों के बीच सम्बन्ध में निहित है। इरफान हबीब के अनुसंधान का प्रमुख क्षेत्र आर्थिक इतिहास है जिसमें वे मार्क्सवादी व्याख्या के प्रबल समर्थक हैं।

6.5.3 विपिन चंद्र (1928–2014)

विपिन चंद्र भारतीय इतिहासकारों की मार्क्सवादी परम्परा के अन्य एक प्रमुख इतिहासकार हैं जिनके लेखन का केन्द्र बिंदु आधुनिक इतिहास है। इनकी प्रमुख कृतियां हैं– द राइज एंड ग्रोथ ऑफ इकॉनोमिक नेशनलिज़्म, नेशनलिज़्म एंड कोलोनियालिज़्म इन इंडिया, इंडियाज़ स्ट्रगल फार इंडिपेंडेंस 1857–1947, कम्युनलिज़्म इन मॉडर्न इंडिया आदि। विपिन चंद्र मार्क्सवादी इतिहासकारों के बारे में स्वयं लिखते हैं– ''साम्राज्यवादी चिंतन संप्रदाय के विपरीत मार्क्सवादी इतिहाकार स्पष्ट तौर पर प्राथमिक अंतर्विरोधों तथा राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को देखते हैं और राष्ट्रवादियों के विपरीत उन्होंने भारतीय समाज के अंदरूनी विरोधाभासों पर पूरी तरह ध्यान दिया।'' विचारों पर बल उन्हें अनेक ऐसे विषयों पर व्यापक चर्चा करने की ओर प्रवृत करता है जो ब्रिटिश आर्थिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रवादी प्रतिवाद को निरूपित करते

हैं, जैसे– राष्ट्रीय कांग्रेस, विधायी निकाय, राष्ट्रवादी नेताओं के भाषण एवं लेखन, अखबार और शोध–पत्रिकाएं। किंतु फिर भी भारतीय राष्ट्रीय नेताओं के आधारभूत पूंजीवादी दृष्टिकोण के प्रति उनके मन में कोई संदेह नहीं है। वे लिखते हैं ''आर्थिक जीवन के लगभग प्रत्येक पक्ष में उन्होंने सामान्य तौर पर पूंजीवादी विकास का और विशेषकर औद्योगिक पूंजीवादियों के हितों का संपोषण किया।''

इनके अतिरिक्त भारतीय मार्क्सवादी इतिहास लेखन परम्परा में अन्य कई नाम जैसे– सुमित सरकार, मोहम्मद हबीब, सैय्यद नूरूल हसन, के.एन. पनिक्कर, मृदला मुखर्जी, हरवंश मुखिया आदि मिलते हैं।

6.6 भारतीय मार्क्सवादी इतिहास लेखन के प्रभाव

डी.डी. कौशाम्बी ने ऐतिहासिक विकास के सम्बन्ध में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सामान्य सिद्धान्त को एक पद्धति का रूप दिया और आरम्भिक भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में रचनात्मक ढंग से इसका प्रयोग किया। इस पद्धति को लगातार अपनाए जाने के परिणामस्वरूप भारतीय इतिहास लेखन में एक परिवर्तन आया है, जिसने एक क्रांति का रूप ले लिया है। आर्थिक उत्थान तथा सामाजिक वर्गों के आधार पर विश्लेषण एवं व्याख्या भारत में ऐतिहासिक पुनर्घटन के मूलाधार बन गए हैं।

6.5.1 इतिहास के परिक्षेत्र का व्यापक होना

मार्क्सवादी प्रवृत्ति ने इतिहास के परिक्षेत्र को मानव जीवन के राजनैतिक पक्ष से आगे आर्थिक–सामाजिक पक्ष तक व्यापक बना दिया है। सामान्य जनों के विशाल वर्ग, जो अब तक उपेक्षित रहे, ऐतिहासिक अनुसंधान के लोकप्रिय विषय हो गए हैं।

6.6.2 अंतरानुषासनिक या अंतर्विषयक पद्धतियां

इतिहास के भौतिकवादी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप मुख्यतः प्राथमिक स्रोतों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के स्रोतों का अध्ययन करने के लिए इतिहासकार, भाषाशास्त्री, समाजशास्त्री, मानवशास्त्री और सांख्यिकीविद के रूप में अपने कौशलों का प्रयोग करते हैं। यद्यपि अंतर्विषयक पद्धति को बहुत बड़े पैमाने पर नहीं अपनाया गया है, किन्तु विविध विषयों के विशेषज्ञों द्वारा प्रदान किए गए आंकड़ों का ऐतिहासिक पुनर्निर्माण के लिए व्यापक प्रयोग किया गया है।

6.6.3 उद्‌भव सम्बन्धी विवरण

मार्क्सवादी इतिहास लेखन मानव संस्थानों के उद्‌भव की व्याख्या करने में बहुत सशक्त रहा है। कौशाम्बी, शर्मा और थापर द्वारा गंगा घाटी में राज्य निर्माण के विवरण ने इतिहास के ज्ञान को एक मूलगामी विस्तार प्रदान किया है जिसे भौतिकवादी इतिहास लेखन की बहुत बड़ी सफलता माना जाना चाहिए।

6.6.4 व्याख्या और टीका का समर्थन

मार्क्सवादी मॉडल ने भारत में इतिहास लेखन कथनात्मक और वर्णनात्मक के वजाय व्याख्यात्मक एवं विवेचनात्मक बना दिया है। यह परिवर्तन एक सजग प्रक्रिया है। इरफान हबीब की पुस्तक इटरप्रेटिंग इंडियन हिस्ट्री में इतिहासकार की मीमांसा या टीका–टिप्पणी करने की स्वतन्त्रता को सैद्धान्तिक आधार पर उचित ठहराया गया है।

6.6.5 पश्चिमी समझ की समालोचना

राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी और यूरोपीय लेखन में प्रचलित जड़ धारणाओं पर सवाल उठाए। उस परम्परा को जारी रखते हुए मार्क्सवादी इतिहासकारों ने कुछ निश्चित धारणाओं को चुनौती दी है।

6.6.6 अंहिसा का अर्थशास्त्र

कौशाम्बी और उनके बाद शर्मा और अन्य विद्वानों ने बौद्ध एवं जैन धर्मों द्वारा प्रतिपादित अंहिसा के सिद्धान्त की एक आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की है। वैदिक रीति–रिवाजों द्वारा बड़े पैमाने पर पशुवध का निर्देश दिया था जो गंगा के मैदानी क्षेत्र, जहाँ लोहे के हल से खेती पशुधन के संरक्षण एवं वृद्धि पर निर्भर थी, में प्रचलित अभिनव कृषि प्रणाली के लिए बहुत बड़ी समस्या थी। इसी कृषि आधारित व्यवस्था पर से उन्नति का मार्ग बनता जिसे ब्राह्मणवाद ने अवरुद्ध कर दिया। परिणामस्वरूप जैन एवं बौद्ध धर्म के अंहिसावादी विचारों को बल मिला।

6.7 सबाल्टर्न इतिहास लेखन

6.7.1 भारत में सबाल्टर्न इतिहास लेखन का उद्‌भव

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में प्रकाशित सबाल्टर्न स्टडीज़ के नाम से पुस्तकों की एक श्रंखला ने आधुनिक भारत पर इतिहास लेखन की एक नई धारा का आरम्भ किया है। जिसे सबाल्टर्न एप्रोच कहा जाता है, जिसकी विषय–वस्तु निम्न वर्गीय अध्ययन के इर्द–गिर्द घूमती है। अतः इसे कुछ विद्वान निम्न वर्गीय अध्ययन भी कहते हैं। इतिहास की व्याख्या का यह तरीका 'हिस्ट्री फ्राम बिलो' या 'इतिहास नीचे से' के नाम से जाना जाता है। इसे जनता का इतिहास लेखन कहा जाता है। प्रश्न यह उठता है कि यह जनता का इतिहास है तो जो इतिहास अब तक लिखा गया वह क्या है, इस प्रश्न का उत्तर सबाल्टर्नवादी यह कहकर देते हैं कि इससे पूर्व का समस्त इतिहास लेखन 'अभिजनवादी इतिहास लेखन' था जिसमें समाज के निम्नतम वर्ग की चेतना, भावनाओं एवं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इतिहास में उनके योगदान की पूर्णत अवहेलना की गई। इस अभिजनवादी इतिहास के पास जनता के इतिहास की समझ में योगदान देने के लिए कुछ भी नहीं है। अतः आम जनता, उसकी चेतना, विचारधारा, उसके तौर–तरीकों को इतिहास के पन्ने पर लाना ही इतिहास की सबाल्टर्न एप्रोच का प्रमुख ध्येय है।

उपाश्रयी (सबाल्टर्न) शब्द इटली के प्रख्यात मार्क्सवादी विचारक अंतोनियों ग्रामशी की रचनाओं से लिया गया है। भारत में उपाश्रयी इतिहास लेखन के प्रमुख इतिहासकार एवं 'सबाल्टर्न स्टडीज़' का प्रमुख संस्थापक रणजीत गुहा को माना जाता है। 'सबाल्टर्न स्टडीज़' के खण्ड प्रथम एवं द्वितीय का संपादन रणजीत गुहा द्वारा किया गया था। इन दोनों खण्डों के सभी 14 लेख भारतीय समाज के दलित वर्गों, काश्तकारों, आदिवासियों के बारे में है।

6.8 ग्रामषी की छः सूत्रीय पद्धति सम्बन्धी कसौटियां

सबाल्टर्न स्टडीज़ के प्रथम खण्ड में गुहा ने जो भूमिका और प्रस्तावना लेख लिखे हैं, वे निम्न वर्ग के प्रसंगों और अंतोनियो ग्रामशी के आह्वाहनों से ओत–प्रोत हैं। मातहत वर्ग के इतिहास के लिए ग्रामशी ने छः सूत्रीय पद्धति सम्बन्धी कसौटियां निर्धारित की थीं। रणजीत गुहा ने सबाल्टर्न स्टडीज़ के प्रथम पृष्ठ पर बड़ी प्रशंसा के साथ इनका उल्लेख किया है और इसे एक ऐसा मॉडल बताया है जो अप्राप्य तो है लेकिन इसके लिए प्रयास किए जाना चाहिए। ग्रामशी की छः सूत्रीय पद्धति सम्बन्धी कसौटियां हैं–

1. आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र में हो रहे विकास और रूपान्तरणों द्वारा मातहत सामाजिक वर्गों का निष्पक्ष निर्माण।
2. शक्तिशाली राजनीतिक निर्माणों के साथ उनका सक्रिय अथवा निष्क्रिय सम्बन्ध और अपने स्वयं के दावों पर बल देने के लिए इन निर्माणों के कार्यक्रमों को प्रभावित करने के प्रयास।
3. शक्तिशाली वर्गों की नई पार्टियों का जन्म जो मातहत वर्गों के उत्थान को सुरक्षित रखते हुए उन पर अपना नियंत्रण कायम रखना चाहते हैं।
4. सीमित और आंशिक चरित्र के दावों पर बल देने के लिए जिन निर्माणों को मातहत वर्ग तैयार करते हैं।
5. वे नए निर्माण जो प्राचीन ढांचे के अन्दर मातहत वर्ग की स्वायत्तता पर बल देते हैं।
6. वे निर्माण जो अविभाज्य स्वायत्तता पर बल देते हैं।

6.9 सबाल्टर्न इतिहास लेखन की प्रकृति

सबाल्टर्न स्टडीज़ विविध और एक दूसरे से असम्बद्ध विषयों पर लेखों का संकलन है। इन सबका एकमात्र विषय निम्न वर्गों का विप्लव है। सबाल्टर्न एप्रोच का एक विशिष्ट पक्ष इसका श्रम अभिमुखन है जिस कारण सबाल्टर्न स्टडीज़ अपने तेवर, आधार वाक्य और विश्लेषण में मार्क्सवादी हैं। किसान, कारखाने में कार्यरत मजदूर और जनजातीय लोग या आदिवासी समय–समय पर संघटित सत्ता प्रणाली के विरुद्ध विद्रोहों के रूप में उनकी व्यथाओं तथा आक्रोशों की अभिव्यक्ति सबाल्टर्न इतिहास लेखन का मूलतत्त्व एवं उद्देश्य है। विद्रोह या विप्लव उन साधनों या पूरी पद्धति को निरूपित करता है जिसके द्वारा निम्न वर्गों ने अपनी

स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया। गुहा स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि किसान कभी नहीं लड़खड़ाया और न ही विप्लव के बहाव में बहा। उसने सजगता के साथ विद्रोह का रास्ता अपनाया जब उसे लगा कि उसके द्वारा किए गए सारे अनुरोध विफल हो गए हैं। विद्रोह चाहे कारखाने में काम करने वाले मजदूर का हो या मैदानी इलाके के लोगों का अथवा पहाड़ी क्षेत्रों के आदिवासियों का, यह कुटिल भूस्वामियों, लूट–खसोट करने वाले महाजनों, बेईमान व्यापारियों, उत्पीड़क पुलिस, गैर–जिम्मेदार अधिकारियों और कानून की भेदभावपूर्ण प्रक्रियाओं के जाल से किसी भी तरह आजाद होने का एक सचेतन तरीका था।

6.10 सबाल्टर्न इतिहास लेखन का विकास

वस्तुतः सबाल्टर्न स्टडीज़ गुट के विद्वानों ने अभिजन वर्ग एवं मातहत वर्ग को पृथक कर मातहतों की स्वायत्तता पर बल दिया है। सबाल्टर्न स्टडीज़ ने जो पृथक्करण किया, वह मार्क्स की पद्धति से हटकर था। मार्क्स के पृथक्करण का मुख्य आधार आर्थिक था, जबकि सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्तर पर भी दोनों वर्गों में विभिन्नता थी। अतः सबाल्टर्न प्रवृत्ति के कार्यवाही, जागृति और संस्कृति के लोकप्रिय अथवा मातहतों की स्वायत्तता के उपेक्षित आयाम को खोजने का प्रयास किया। सबाल्टर्न स्टडीज़ ग्रुप का सर्वाधिक प्रमुख तर्क है कि अभिजात वर्ग का अस्तित्व मातहत वर्ग पर टिका है। राष्ट्रीय आंदोलन के प्रत्येक चरण में आम जनता की भूमिका प्रमुख थी। यहाँ तक कि भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण एवं विकास में भी जन साधारण की भूमिका को भुलाया नहीं जा सकता। अतः सबाल्टर्नवादियों ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि औपनिवेशिक भारत का इतिहास लेखन किस प्रकार शीघ्रता से भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास लेखन का रूप ले लेता है। बुनियादी गलती यह बताई जाती है कि ''राष्ट्रवाद के निर्माण और विकास में जन साधारण ने स्वतः ही जो योगदान दिया उसे इतिहास लेखकों ने नज़रअन्दाज किया। अन्त में राष्ट्र को स्वाभिमानी बनाने में उनके योगदान को स्वीकार न करना ही एक ऐतिहासिक असफलता बन जाती है।'' इतिहास की इस असफलता अथवा विसंगति अथवा रिक्तता को पूर्ण करने का दायित्व सबाल्टर्न ग्रुप द्वारा संभाला गया।

यह तो निश्चित है कि सबाल्टर्नवादी किसी न किसी रूप में मार्क्सवादी अवधारणा से प्रभावित थे परन्तु उन्होंने अपने आपको मार्क्सवाद से पृथक दर्शाने की कोशिश की है। कई विद्वानों का आरोप है कि इनका इतिहास पूर्णतः निम्न वर्ग पर केन्द्रित है, इसमें अभिजात वर्ग को कोई स्थान नहीं है एवं यह मार्क्सवादी विचारधारा पर ही आधारित है। वास्तविकता क्या है, इसे हम सबाल्टर्न स्टडीज़ गुट के दो प्रमुख इतिहासकारों शाहिद अमीन एवं ज्ञानेन्द्र पाण्डेय के इस कथन में देख सकते हैं–

''निम्न जन की स्वावलम्बी चेतना पर जोर देने का कतई यह मतलब नहीं था कि हम केवल निम्न जन का ही इतिहास लिखना चाहते थे। हमारी कोशिश एक नए तरह का इतिहास

रचने की थी और अब भी है, एक ऐसा इतिहास जो अभिजन के दायरे से बाहर जाकर निम्न वर्ग की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को भी परखे और इसके साथ–साथ इन (अभिजन और निम्न जन की) प्रक्रियाओं को दो अलग पटरियों पर न ढकेलकर, इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध, आश्रय और द्वन्द्व के जोर पर हमारे उपनिवेशी काल की समझ को गतिशील करे। यही वजह है कि निम्वर्गीय प्रसंग में निम्न जन की परिस्थितियों और प्रयासों के अलावा अभिजात वर्ग की परिस्थितियों और प्रयासों पर भी नेहरू, बंकिम, गांधी, राजाजी, सरोजनी नायडू और रामास्वामी नाइक्कर पर भी लेख पाए जायेंगे। हमारी मान्यता थी (और है) कि इन दोनों पहलुओं को अख्तियार किए बगैर इस निम्नवर्गीय परिवेश को अपनाए बिना, हिन्दुस्तान का इतिहास या कहीं का भी इतिहास लिखा ही नहीं जा सकता।''

इस नज़रिए से नए इतिहास लेखन के लिए हमने एक नए शब्द, एक नई परिभाषा का सहारा लिया है। इटली के मार्क्सवादी चिंतक आंतोलियो ग्रामशी ने 'सबाल्टर्न' शब्द समाज के गौण, दलित, उत्पीड़ित और मुत्गालिब लोगों के लिए इस्तेमाल किया था। भारतीय इतिहास अध्ययन के लिए इस परिभाषा को अपने लेखन में कार्यान्वित करने के हमारे कई कारण थे। प्रयास था भारतीय समाज में प्रमुख और मातहती के बहुआयामी रूप को सामने लाने का, वर्ग संघर्ष और आर्थिक द्वन्द्व को कोरी आर्थिकता के कटघरे से आजाद कर उसके सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिरूप और विशिष्टताओं का करीब से विवेचन करने का।

सबाल्टर्नवादियों के उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि जहाँ मार्क्सवाद मात्र आर्थिक आधार पर वर्ग संघर्ष की कल्पना करता है जबकि सबाल्टर्नवादी आर्थिक कारकों के अलावा भी अन्य कारकों को वर्ग संघर्ष का कारण मानते हैं। सबाल्टर्नवादियों ने इन कारकों का भी अति सुन्दर विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा है–

''औपनिवेशिक भारत में और अन्यत्र भी प्रभुत्व केवल आर्थिक दबाव के बुलबुले पर कायम नहीं रहता। निम्नजन को उनकी गौणता का अहसास विविध प्रसंगों को रोजमर्रा तौर पर भी कराया जाता है। एक छोटे खेतिहर और एक भू–स्वामी के बीच सिर्फ जमीन होने न होने का ही अन्तर नहीं होता है– वेशभूषा, बोलचाल, घर–द्वार, जात–पांत, देवी–देवता सभी तो अभिजन के ऊँचे होते हैं– कपड़े उनके स्वच्छ, बोली उनकी साफ, अटरिया उनकी ऊँची, जात उनकी बड़ी, शिवालय उनके पक्के, देवगण उनके शक्तिमान, लठैत उनके बलवान। अभिजात अपने बड़प्पन की धाक सिर्फ लगान पोत के समय ही नहीं जमाते, अपना हिस्सा लेने तक ही जमींदार का हक सीमित नहीं रहता है। या यूँ कहिए कि वह 'हिस्सा' सिर्फ नकदी तक ही समिति नहीं रहता। कृषक जीवन के लगभग सभी पहलुओं पर जमींदार का दखल होता है। सबाल्टर्न या निम्नवर्गीय शब्दावली से हमारी मुराद हर प्रकार के प्रभुत्व और मातहती दर्जे को चाहे वह आर्थिक या सांस्कृतिक शक्ति, बाहुबल या सेना या फिर वर्ण, जाति या लिंग की श्रेष्ठता के आधार पर हो, इतिहास में दर्शाने की थी।''

रणजीत गुहा के अनुसार अभिजन लोगों की राजनीति की सीमाएं औपनिवेशिक राजसत्ता द्वारा अर्जित कानूनी व राजनीतिक अधिकारों से तय होती थीं जो ब्रिटिश संसदीय संस्थाओं का प्रतिरूप थीं। साथ ही यह सीमाएं उपनिवेश पूर्व काल की अर्द्ध–सामंती राजनीतिक संस्थाओं के भग्नाशेषों पर तय होती थीं। इसमें जनता की लामबन्दी उर्ध्वाधर ढंग से की गई जिसकी दिशा कानून सम्मत व संविधानवादी थी। इसके विपरीत सबाल्टर्न क्षेत्र की जड़ें तो उपनिवेश पूर्व काल तक पहुँचती थीं परन्तु इस क्षेत्र की राजनीति की सीमाएं रक्त सम्बन्ध और भौगोलिक क्षेत्र के पारम्परिक संगठन से या सम्बद्ध जनता की चेतना के स्तर के अनुरूप वर्गीय संगठन से तय होती थीं। सबाल्टर्न क्षेत्र में जनता की लामबन्दी क्षैतिज ढंग से की गई जो अधिक हिंसक रही।

सबाल्टर्नवादियों का एक आलोचनात्मक पक्ष यह है कि वे निम्न वर्ग की स्वतःस्फूर्त चेतना में विश्वास करते हैं। उन्हें यह पसन्द नहीं कि कोई बाहरी व्यक्ति उन्हें नेतृत्व प्रदान करे। उनका नायक मात्र निम्नवर्ग ही है। इस तारतम्य में मृदुला मुखर्जी ने लिखा है, ''उपाश्रयी (सबाल्टर्न) दृष्टिकोण की तार्किक मांग यह है कि सभी बाहरी लोगों को दखलदार या किसानों के सुरक्षित क्षेत्र पर अतिक्रमण करने वाले लोग माना जाए। बाहरी व्यक्ति केवल बाहरी होने के कारण 'अभिजन' या 'खलनायकों' के खेमे का प्राणी होता है। नायकों के खेमें में उनके प्रवेश को उपाश्रयवादी केवल संशय की दृष्टि से ही देख सकते हैं। नायकों के पास जुझारूपन और क्रांति की अपनी स्वायत्त परम्परा है और इसलिए बाहरी व्यक्ति और उसकी दुनिया से शायद उसको कुछ भी सीखने की जरूरत नहीं है। वस्तुतः ऐसे इतिहासकार केवल प्रतिरोध और संघर्ष को देखते हैं और इस प्रकार निम्न वर्गों के अनुभवों और सांस्कृतिक कार्यकलाप में तालमेल और ग्रहण की कठोर वास्तविकताओं पर कम ध्यान देते हैं। अक्सर इस प्रकार का इतिहास नीचे से ऊपर की ओर उठने वाले इतिहास के बजाय नीचे का इतिहास बनकर रह जाता है।

उपरोक्त कथन पूर्णतः सत्य नहीं है, सबाल्टर्न ग्रुप के इतिहासकार सुमित सरकार इस समस्या के प्रति काफी जागरूक दिखाई देते हैं और यह उनके कथन से स्पष्ट है कि ''किसानों को अभी भी ऊपर से किसी मुक्तिदाता की आवश्यकता थी। यह गम्भीर सीमा थी जिसे हाल में कुछ ऐसे विद्वानों ने कभी–कभी कदाचित कम करके आंका है जो अभिजनवादी इतिहास लेखन की प्रतिक्रिया में ग्रामीण जनता की स्वतःस्फूर्त क्रांतिकारी क्षमता को कुछ रोमानी रंग देने लगते हैं।'' सुमित सरकार की कृति 'मार्डन इंडिया' में तो हम नीचे से आरम्भ होने वाले सभी आंदोलनों की विवेचना में लगभग सभी में हम उन्हें अभिजन लगने वाले तत्वों को ही नेतृत्व देते देखते हैं।

वस्तुतः विभिन्न मुद्दों को लेकर उपाश्रयवादियों (सबाल्टर्न ग्रुप) की कितनी भी आलोचना की जाए मगर उन्होंने इतिहास के उपेक्षित निम्नवर्गीय तबके को इतिहास के पन्नों पर जाकर सराहनीय कार्य किया है। इस निम्न वर्ग की चेतना एवं आवाज को कलमबन्द करना

एक दुष्कर कार्य है क्योंकि इससे सम्बन्धित स्रोत अन्य अल्प ही प्राप्त हैं। मूल स्रोत और कर्ता के पारम्परिक सम्बन्ध इतिहास लेखन में मुश्किलें पैदा करते हैं। वे साधारण जन जिनके कर्म, क्रिया और चेतना को आश्रयी इतिहासकारों ने लेखबद्ध किया, वे मानक, स्रोतों में स्वतः नहीं पाये जाते। अधिकांश दस्तावेजों में उनका स्वरूप बागी, बलवाई, कानून शिकनों का होता है। अमूमन निम्न जन स्वयं नहीं लिखते, अभिजन या फिर सरकारी कर्मी चाहे पटवारी, थानेदार, जज या मजिस्ट्रेट उनके बारे में लिखते हैं या फरमाते हैं। लोकगाथा, लोकगीत एवं लोकस्मृति के द्वारा भी इन तक पहुँचना होता है। अतः इस निम्न वर्गीय इतिहास तक पहुँचना आसान नहीं है, हमें इसे प्राप्त स्रोतों में से अपनी बुद्धि और विवेक द्वारा खोजना होता है। सरकारी दस्तावेजों के नए ढंग से विश्लेषण से निम्नवर्गीय इतिहास (सबाल्टर्न) किस प्रकार लिखा जाता है– इसकी मिसाल रणजीत गुहा ने अपनी कृति 'एलीमेण्ट्री आस्पेक्ट्स ऑफ पीजेण्ट इमरजेन्सी इन कोलोनियल इंडिया' लिखकर प्रस्तुत की है।

6.11 सारांश

आमूल परिवर्तनवादी विद्वता के श्रेष्ठ उदाहरणों के रूप में मार्क्सवादी या सबाल्टर्न इतिहास लेखक ऐतिहासिक शोधों को भारतीय समाजों के मूल आधारों तक ला रहे हैं। कामगारों, किसानों तथा आदिवासियों के संघर्षों को आलोकित–उदघाटित करने की व्याग्रता में सबाल्टर्न इतिहास लेखन ने न केवल पारम्परिक इतिहास लेखन बल्कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण के लिए भी चुनौती पैदा कर दी है। सन 1861 ई0 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के इतिहास के प्रोफेसर चार्ल्स किंग्सले ने यह मत व्यक्त किया था कि ऐतिहासिक अध्ययन में सामान्य व्यक्तियों के लिए विशेष स्थान नहीं है क्योंकि इतिहासकार के लिए यह उचित नहीं है कि वह भीड़ की संस्कृति का अध्ययन करें, ऐसा करना बौनों एवं विकलांगों का अध्ययन होगा। भारतीय इतिहास लेखन के ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकार विसेन्ट स्मिथ पर भी इसी दृष्टिकोण का प्रभाव देखा जा सकता है। इनके विपरीत फ्रांस में ऐनल्स स्कूल ऑफ हिस्ट्री ने समग्र इतिहास लेखन पर बल दिया था। उनकी मान्यता थी कि महत्वहीन एवं तुच्छ चीज का भी अध्ययन कर उसका महत्व प्रतिपादित करना इतिहासकार का दायित्व है।

सबाल्टर्नवादियों ने किंग्सले के विपरीत भीड़ की संस्कृति का अध्ययन कर ऐनल्स परम्परा की तरह सामान्य व्यक्तियों को भी इतिहास के पन्नों पर सम्मानीय स्थान दिया है। उन्होंने स्पष्टतः बताया है कि यह अध्ययन बौनों एवं विकलांगों का अध्ययन नहीं है। यह उस निम्न वर्गीय चेतना का अध्ययन है जिसने पर्दे के पीछे रहकर अभिजनवादी इतिहास को गति, दिशा एवं अर्थ प्रदान किया। सबाल्टर्न इतिहास लेखन उन अनगिनत लिपिबद्ध विवरणों को अंधेरे और सीलन भरे कमरों में रखी धूल भरी अलमारियों से बाहर निकालकर दुनिया के सामने ला रहा है, जो आस्था और संघर्ष की अनेक कथाओं के साक्षी रहे हैं।

दूसरी ओर भारतीय विद्वानों ने मार्क्सवादी इतिहास लेखन की परम्परा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है और सबाल्टर्नवादियों को विचार–विमर्श का मजबूत आधार दिया है। मार्क्सवादियों ने इतिहास विषय की गम्भीरता बनाये रखने और इसके अध्ययन–अध्यापन तथा शोध के उच्च प्रतिमान स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

6.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. इतिहास की मार्क्सवादी अवधारणा पर प्रकाश डालिए।
2. भारतीय मार्क्सवादी इतिहास लेखन पर निबन्ध लिखिए।
3. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन पर मार्क्सवादी प्रभाव की विवेचना कीजिए।
4. मार्क्सवादी इतिहास लेखन परम्परा में भारतीय इतिहासकारों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
5. सबाल्टर्न स्कूल की मुख्य विशेषताओं का परीक्षण कीजिए।
6. इतिहास के सबाल्टर्न उपागम का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
7. 'इतिहास नीचे से' से आप क्या समझते हैं ? सविस्तार विवेचना कीजिए।
8. सबाल्टर्न इतिहास लेखन के विकास पर एक लेख लिखिए।

6.13 संदर्भ ग्रंथ

1. गोविन्द चंद्र पाण्डे – इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त
2. ई. श्रीधरन– इतिहास लेख– एक पाठ्यपुस्तक
3. बी.के. श्रीवास्तव– इतिहास लेखन : अवधारणाएं, विधाएं एवं साधन
4. के.एल. खुराना एवं आर.के. बंसल– इतिहास लेखन धारणाएं तथा पद्धतियाँ
5. जान बेलेनी फास्टर एवं इलेन मिकसिन्सबुड– इतिहास के पक्ष में
6. इरफान हबीब– इतिहास और विचारधारा
7. ई.एच. कार– इतिहास क्या है ?
8. रामशरण शर्मा– भारतीय इतिहास एक पुनर्विचार
9. मार्क्स एगेल्स– कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र
10. लाल बहादुर वर्मा– इतिहास क्यों–क्या–कैसे

इकाई सात - इतिहास का दर्शन: ओसवाल्ड स्पैंग्लर

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 स्पेंगलर का प्रारंभिक परिचय

7.3.1 बीसवीं शताब्दी के विचारकों के चिंतन पर विश्व युद्ध की विभीषिका का प्रभाव

7.3.2 स्पेंगलर द्वारा संस्कृति को एक जैव-प्राणी के रूप में स्थापित करने की चेष्टा

7.4 स्पेंगलर का युग चक्रवादी सिद्धान्त

7.4.1 स्पेंगलर का संस्कृतियों के उत्थान-पतन विषयक विचार

7.4.2 स्पेंगलर का विश्व-इतिहास को संस्कृतियों के इतिहास तक सीमित करना

7.4.3 स्पेंगलर द्वारा वर्णित सभ्यताएँ

7.4.4 स्पेंगलर की दृष्टि में प्रत्येक संस्कृति की अपनी-अपनी विशिष्टताएं

7.4.5 संस्कृति तथा सभ्यता

7.4.6 छद्म रूपाकृति अर्ध विकसित संस्कृतियाँ

7.5 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट'

7.5.1 संस्कृतियों के उत्थान और पतन का चक्र

7.5.2 इतिहास का अर्थ

7.5.3 स्पेंगलर द्वारा इतिहास में काल-विभाजन की परंपरा का विरोध

7.5.4 मानव-विकास के इतिहास में सभ्यता को पतन के द्योतक के रूप में देखना

7.5.5 जातियां, राष्ट्र (राज्य) तथा संस्कृतियाँ

7.5.6 संस्कृति के विकास में धर्म की भूमिका

7.5.7 लोकतंत्र, संचार माध्यम तथा धन

7.5.8 स्पेंगलर का 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में वैश्विक दृष्टिकोण

7.5.9 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में स्पेंगलर का अवैज्ञानिक दृष्टिकोण

7.6 स्पेंगलर की अन्य रचनाएं

7.7 एक इतिहाकार के रूप में स्पेंगलर का आकलन

7.7.1 स्पेंगलर की आलोचना

7.7.2 दार्शनिकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों, चित्रकारों, फ़िल्मकारों, समीक्षकों आदि पर स्पेंगलर के दर्शन का प्रभाव

7.8 सारांश

7.9 पारिभाषिक शब्दावली

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

ओस्वाल्ड आर्नाल्ड स्पेंगलर (1880-1936) एक जर्मन इतिहासकार और इतिहास-दार्शनिक था. एक विचारक के रूप में उसने बीसवीं शताब्दी के इतिहास-दर्शन पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है. ओस्वाल्ड स्पेंगलर ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद इतिहास में संश्लेषण और उद्देश्य की आवश्यकता पर बल दिया. स्पेंगलर की रचनाएं प्राथमिक स्रोतों पर आधारित इतिहास तथा सार्वभौमिक इतिहास के समाकलन का उदाहरण है.

प्रथम विश्व युद्ध की भयावह विनाश लीला ने विचारकों को दार्शनिक स्तब्धता और निराशा की स्थिति में डाल दिया था. स्पेंगलर की रचना 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में भी विचारकों की ऐसी ही मनःस्थिति का प्रतिबिम्बन है. 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में इस धारणा को प्रस्तुत किया गया है कि संस्कृतियों के इतिहास को जन्म, विकास और पतन के निश्चित नियम संचालित करते हैं. इसमें स्पेंगलर ने एक नए सिद्धान्त - 'प्रत्येक मानव-सभ्यता की एक सीमित जीवन-अवधि होती है' का प्रतिपादन किया है. प्रत्येक संस्कृति का अपना बचपन, जवानी और बुढ़ापा होता है और एक समय ऐसा भी आता है जब कि उस संस्कृति की मृत्यु हो जाती है.

स्पेंगलर का यह विचार है कि जब किसी संस्कृति की आत्मा का विकास रुक जाता है तो वह अपने अन्तिम रूप में सभ्यता में प्रविष्ट होती है. स्पेंगलर पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है. स्पेंगलर के अनुसार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक पाश्चात्य संस्कृति शीत ऋतु के पड़ाव तक अर्थात् अपने पतन के चरण तक पहुंच गई है.स्पेंगलर की प्रसिद्धि का मुख्य आधार प्रारब्ध पर लिखी उसकी युद्ध विरोधी पुस्तक 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' है. स्पेंगलर विश्व इतिहास को महान संस्कृतियों का एक नाटक मानता है. इस नाटक में प्रत्येक संस्कृति स्वयमेव पल्लवित होती है. प्रत्येक संस्कृति एक जैव इकाई के समान है जिसके कि विभिन्न जीवन-चक्र होते हैं.

स्पेंगलर आठ प्रमुख संस्कृतियों का उल्लेख करता है. ये आठ संस्कृतियां हैं - मिस्र की, बेबीलोनियन, भारतीय, चीनी, ग्रीको-रोमन (क्लासिकल), अरबी, मैक्सिकन और पाश्चात्य (यूरोपियन-अमेरिकन). स्पेंगलर के अनुसार प्रत्येक संस्कृति का जीवन औसतन 1000 वर्ष का होता है. अपनी भौतिक प्रगति पर गर्व करने वाले पाश्चात्य देशवासियों की दुखद स्थिति पर स्पेंगलर शोक व्यक्त करता है.स्पेंगलर की दृष्टि में संस्कृति तब सभ्यता के रूप में विकसित हो जाती है जब कि उसमें सृजनात्मक प्रेरणा क्षीण पड़ जाती स्पेंग्लर संस्कृति को जीवित सभ्यता और सभ्यता को पतनोन्मुख सभ्यता मानता है .

स्पेंगलर के इतिहास-दर्शन को सुगमता के साथ दो भागों में विभक्त किया जा सकता है. पहले भाग में हम उसके प्रकृति-विषयक सिद्धांत ले सकते हैं और दूसरे भाग में उसके इतिहास-विषयक सिद्धांत ले सकते हैं. स्पेंगलर इतिहास को एक निरंतर एवं क्रमबद्ध प्रक्रिया नहीं मानता है. इतिहास को 'प्रागैतिहासिक काल', 'प्राचीन काल', 'मध्य काल' तथा 'आधुनिक काल' में विभाजित किया जाना उसे स्वीकार्य नहीं है. उसके अनुसार इतिहास की प्रवृत्ति रेखात्मक नहीं अपितु वृत्तात्मक (चक्रीय) है. स्पेंगलर संस्कृति को धार्मिक सृजनात्मकता का पर्याय मानता है.

स्पेंगलर की दृष्टि में लोकतंत्र, समानता, मूल अधिकार, सार्वभौमिक मताधिकार, प्रेस के स्वतंत्रता आदि सभी सिद्धांत, छद्म रूप से मध्यवर्ग तथा आभिजात्य वर्ग के बीच वर्ग-संघर्ष हैं. उसकी दृष्टि में 'स्वतंत्रता' एक नकारात्मक अवधारणा है जो कि परम्पराओं का परित्याग-मात्र है.'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट', के दूसरे खण्ड में स्पेंगलर ने मित्र

राष्ट्रों की विजय के खोखलेपन को दर्शाया है.स्पेंगलर के विश्व-विषयक ऐतिहासिक दृष्टिकोण को गोथे तथा नीत्ज़े के दर्शन ने प्रभावित किया है.

इतिहास समीक्षकों ने 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वेस्ट' में स्पेंगलर के अवैज्ञानिक दृष्टिकोण की कटु आलोचना की. कार्ल पोपर ने उसके शोध को दिशाहीन बताया. पुराकाल-विशेषज्ञ, इतिहासकार एडुअर्ड मेयर ने किंचित आलोचना के बावजूद स्पेंगलर के ग्रन्थ को महान बताया. स्पेंगलर की अस्पष्टता, उसका आत्मानुभुतिवाद, नियतिवाद और उसका रहस्यवाद, सदैव प्रत्यक्षवादियों तथा नियो-कांटीनियंस (इमानुअल कांट के नए अनुयायी) के निशाने पर रहे. टॉयनबी को भी उसका यांत्रिक नियतिवाद स्वीकार्य नहीं है किन्तु वह उसके चक्रीयवाद का अनुकरण करता है.
स्पेंगलर की अन्य रचनाओं में 'प्रशियनडम एण्ड सोशलिज़्म', 'मैन एण्ड दि टैक्नीक', 'दि मैटाफ़िज़िकल आइडिया ऑफ़ हेराक्लिटिस फ़िलोसॅफ़ी' उल्लेखनीय हैं. स्पेंगलर की फ़ास्टियन चक्रीय, तथा पाश्चात्य सभ्यता के अवश्यम्भावी विनाश की अवधारणाओं ने आने वाली पीढ़ी के दार्शनिकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों, चित्रकारों, फ़िल्मकारों और समीक्षकों को अत्यधिक प्रभावित किया है.स्पेंगलर ने अपने विचारों से अपने समकालीन चिंतन को बहुत अधिक प्रभावित किया था- प्रवर्तक-दर्शन के क्षेत्र में उसका स्थान बहुत ऊंचा है और उसकी गणना युग-इतिहास . .चिंतकों में की जाती है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य प्रथम विश्व युद्ध के दौरान हुए भयंकर विनाश के बाद विचारकों में घोर निराशा का संचार तथा फिर उनके द्वारा वैचारिक स्तर पर विश्व-शांति की स्थापना के प्रयासों से आपको अवगत कराना है. इतिहास-दार्शनिक ओसवाल्ड स्पेंगलर की रचनाओं के माध्यम से आपको संस्कृति और सभ्यता की प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की प्रगति अथवा अवनति का ज्ञान भी प्राप्त हो सकेगा. इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भयंकर विनाश के बाद शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व तथा विश्व-शांति की स्थापना के प्रयासों के विषय में.
2. स्पेंगलर द्वारा संस्कृति तथा सभ्यता के मध्य भेद किए जाने के विषय में.
3. स्पेंगलर के चक्रीय सिद्धांत के विषय में
4. 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' की विषय-वस्तु के विषय में.
5. स्पेंगलर द्वारा वर्णित 8 संस्कृतियों के विषय में.
6. स्पेंगलर के वैश्विक दृष्टिकोण के विषय में.
7. टॉयनबी तथा अन्य विद्वानों द्वारा स्पेंगलर की परिकल्पनाओं की आलोचना के विषय में.
8. दार्शनिकों, साहित्यकारों, इतिहासकारों तथा कलाकारों पर स्पेंगलर की विचारधारा के प्रभाव के विषय में.
9. एक दार्शनिक-इतिहासकार के रूप में स्पेंगलर के आकलन के विषय में.

7.3 स्पेंगलर का प्रारंभिक परिचय

7.3.1 बीसवीं शताब्दी के विचारकों के चिंतन पर विश्व युद्ध की विभीषिका का प्रभाव

ओस्वाल्ड आर्नाल्ड स्पेंगलर (1880-1936) एक जर्मन इतिहासकार और इतिहास-दार्शनिक था. ओस्वाल्ड स्पेंगलर का जन्म 29 मई, 1880 को जर्मनी के ब्लाकनबर्ग में हुआ था. हार्ले, बर्लिन तथ म्यूनिख के विश्वविद्यालयों में उसने गणित तथा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की और अपनी अभिरुचियों के कारण उसने इतिहास और दर्शन का भी गहन अध्ययन किया. एक अध्यापक, एक राजनीतिज्ञ तथा एक विचारक के रूप में उसने बीसवीं शताब्दी के इतिहास दर्शन पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है.

ओस्वाल्ड स्पेंगलर ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद और अर्नौल्ड जे. टॉयनबी ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इतिहास में संश्लेषण और उद्देश्य की आवश्यकता पर बल दिया. स्पेंगलर तथा टॉयनबी की रचनाएं प्राथमिक स्रोतों पर आधारित इतिहास तथा सार्वभौमिक इतिहास के समाकलन के दो उदाहरण हैं. स्पेंगलर की रचनाओं में सामान्यीकरण की अधिकता है जब कि टॉयनबी स्रोत पर आधारित इतिहास लेखन तथा सार्वभौमिक इतिहास-लेखन के समाकलन के साथ मानव सभ्यताओं के अध्ययन की ओर अग्रसर होता है. दोनों ही इतिहासकारों ने इतिहास के प्रस्तुतीकरण में सोद्देश्यवादी सिद्धान्तों को समाहित करने का प्रयास किया है.प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध की भयावह विनाश लीला ने बीसवीं शताब्दी के विचारकों को दार्शनिक स्तब्धता और निराशा की स्थिति में डाल दिया था. स्पेंगलर की रचना 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में भी विचारकों की ऐसी ही मनःस्थिति का प्रतिबिम्बन है.

7.3.2 स्पेंगलर द्वारा संस्कृति को एक जैव-प्राणी के रूप में स्थापित करने की चेष्टा

'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में इस धारणा को प्रस्तुत किया गया है कि संस्कृतियों के इतिहास को जन्म, विकास और पतन के निश्चित नियम संचालित करते हैं. स्पेंगलर द्वारा सार्वाभौमिक इतिहास की व्यवस्थित व्याख्या का प्रयास सराहनीय है. इसमें स्पेंगलर ने एक नए सिद्धान्त - 'प्रत्येक मानव-सभ्यता की एक सीमित जीवन-अवधि होती है' का प्रतिपादन किया है. स्पेंगलर इतिहास को शाश्वत मानता है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का उत्थान और पतन होता रहता है. प्रत्येक संस्कृति का अपना बचपन, जवानी और बुढ़ापा होता है और एक समय ऐसा भी आता है जब कि उस संस्कृति की मृत्यु हो जाती है.प्रत्येक संस्कृति एक जीवधारी प्राणी के समान पैदा होती है और अंततः मर जाती है. इसकी अपनी आत्मा होती है जो कि दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य, भाषा आदि में अभिव्यक्त होती है. प्रत्येक संस्कृति का उत्थान एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में होता है और जब यह उस क्षेत्र से निकल कर अपना विस्तार करती है तो उसका अंत समीप आ जाता है. स्पेंगलर संस्कृति के जन्म, उत्थान, विस्तार और अंतत्तः पतन के इस क्रम में प्राणियों के बचपन, जवानी और बुढ़ापे का साम्य देखता है और ऋतुओं में पतझड़, वसंत आदि का भी.

स्पेंगलर का यह विचार है कि जब किसी संस्कृति की आत्मा का विकास रुक जाता है तो वह अपने अन्तिम रूप में सभ्यता में प्रविष्ट होती है. स्पेंगलर पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है. स्पेंगलर के अनुसार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक पाश्चात्य संस्कृति शीत ऋतु के पड़ाव तक अर्थात् अपने पतन के चरण तक पहुंच गई है.

समीक्षकों ने स्पेंगलर के अवश्यम्भावी पतन के नियतिवादी सिद्धान्त की आलोचना की है. स्पेंगलर की फ़ास्टियन, चक्रीय, तथा पाश्चात्य सभ्यता के अवश्यम्भावी विनाश की अवधारणाओं ने आने वाली पीढ़ी के दार्शनिकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों, चित्रकारों, फ़िल्मकारों और समीक्षकों को अत्यधिक प्रभावित किया है.

7.4 स्पेंगलर का युग चक्रवादी सिद्धान्त

7.4.1 स्पेंगलर का संस्कृतियों के उत्थान-पतन विषयक विचार

स्पेंगलर की प्रसिद्धि का मुख्य आधार 1918 तथा 1922 में प्रकाशित प्रारब्ध पर लिखी उसकी युद्ध विरोधी पुस्तक 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' है. इस पुस्तक में स्पेंगलर ने सम्पूर्ण विश्व के इतिहास का अध्ययन किया है. अपने इस ग्रंथ में उसने एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। वह सिद्धान्त है - 'प्रत्येक मानव-सभ्यता की एक सीमित जीवन-अवधि होती है और अन्ततः प्रत्येक सभ्यता का पतन होता है.' स्पेंगलर इतिहास को शाश्वत मानता है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का उत्थान और पतन होता रहता है. स्पेंगलर विश्व इतिहास को रेखीय आकार (जिसके अनुसार इतिहास को विभिन्न कालों - प्राचीन, मध्य और आधुनिक में विभाजित किया जाता है।) में कल्पित नहीं करता है. स्पेंगलर विश्व इतिहास को महान संस्कृतियों का एक नाटक मानता है. इस नाटक में प्रत्येक संस्कृति स्वयमेव पल्लवित होती है. प्रत्येक संस्कृति एक जैव इकाई के समान है जिसके कि विभिन्न जीवन-चक्र होते हैं. प्रत्येक संस्कृति का अपना बचपन, जवानी और बुढ़ापा होता है और एक समय ऐसा भी आता है जब कि उस संस्कृति की मृत्यु हो जाती है, अर्थात् वह पूरी तरह नष्ट हो जाती है. प्रत्येक संस्कृति आरम्भ में बर्बरता के दौर से गुज़रती है और कालान्तर में विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं, कला, विज्ञान आदि का विकास होता है. अपने अंतिम दौर में संस्कृति विकृत होकर अपनी सृजनशीलता को खोकर पतन की ओर अग्रसर होती है जिसमें सर्वत्र विकृतियां दिखाई देने लगती हैं और संस्कृति की सृजनशीलता समाप्त हो जाती है. अन्ततः संस्कृति नष्ट हो जाती है. स्पेंगलर, जातियों, भाषाओं, भू-प्रदेशों आदि को वृक्ष-रूपी संस्कृतियों की फूल-पत्तियां मानता है. वह संस्कृतियों को जैविक मानते हुए विश्व इतिहास को उनकी सामूहिक जीवनियां मानता है. संस्कृतियों के जीवन में वसन्त, ग्रीष्म, पतझड़ और शीत ऋतु आते हैं.

7.4.2 स्पेंगलर का विश्व-इतिहास को संस्कृतियों के इतिहास तक सीमित करना

स्पेंगलर इतिहास को संस्कृति की जीवन-लीला मानता है, जिसके कि नियम निश्चित तथा अपरिवर्तनीय हैं. स्पेंगलर आठ प्रमुख संस्कृतियों का उल्लेख करता है. ये आठ संस्कृतियां हैं - मिस्र की, बेबीलोनियन, भारतीय, चीनी, ग्रीको-रोमन (क्लासिकल), अरबी, मैक्सिकन और पाश्चात्य (यूरोपियन-अमेरिकन). इनमें से प्रत्येक संस्कृति अपने-अपने प्रमुख परिसर अथवा मूल प्रतीक पर आधारित है और यही उसके विज्ञान, दर्शन, कला, आस्था, जीवन-पद्धति, विचार और कार्यों को निर्दिष्ट करते हैं.

स्पेंगलर इन सभी संस्कृतियों के युगों के चक्र को निश्चित मानता है. प्रत्येक संस्कृति का जीवन औसतन 1000 वर्ष का होता है. स्पेंगलर का यह विचार है कि जब किसी संस्कृति की आत्मा का विकास रुक जाता है तो वह अपने अन्तिम रूप में सभ्यता में प्रविष्ट होती है. स्पेंगलर पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है. स्पेंगलर मिस्र, बेबीलोनिया तथा मिनोन सभ्यताओं को मृत सभ्यताएं, पोलीनीसियन, एस्किमो, नामाड, स्पार्तन तथा ओसमानली सभ्यताओं को अवरुद्ध (जिनका विकास रुक गया हो) सभ्यताएं तथा आधुनिक पाश्चात्य ईसाई समाज, कट्टरपंथी ईसाई समाज, मुस्लिम, हिन्दू तथा सुदूर पूर्व की सभ्यताओं को वर्तमान काल में भी जीवित सभ्यताएं मानता है.

जब संस्कृति सभ्यता के स्तर पर आ जाती है तो उसमें रहने वालों के मन-मस्तिष्क में धर्म का स्थान धर्म-हीन विज्ञान, समष्टि के स्थान पर व्यष्टि, वास्तविक शाश्वत मूल्यों के स्थान पर धन-सम्पदा सम्बन्धी मूल्य और मातृत्व जैसी पवित्र व निश्छल भावना के स्थान पर काम-भावना विकसित हो जाती है. जैसे दिया बुझने पहले एक बार फिर तेज़ हो

जाता है उसी प्रकार सभ्यता अपने पतन से पूर्व एक बार फिर धर्म की ओर उन्मुख होती है जिसके कारण धर्म सुधार आन्दोलन का विकास होता है और रहस्यवादी प्रवृत्तियां भी प्रबल हो जाती हैं किन्तु यह प्रवृत्ति एक संस्कृति के पतन और दूसरी संस्कृति के जन्म की सूचक है. स्पेंगलर का नियतिवादी दर्शन गेटे के जीवन दर्शन पर आधारित है.

7.4.3 स्पेंगलर द्वारा वर्णित सभ्यताएँ

स्पेंगलर ने जिन 8 संस्कृतियों का उल्लेख किया है, उनमें से उसने मुख्यतः चार संस्कृतियों की विस्तृत चर्चा की है. इनमें प्रथम भारतीय संस्कृति है, द्वितीय संस्कृति - पुरातन यूरोपीय संस्कृति (ग्रीको-रोमन) है, तृतीय मध्यकालीन संस्कृति है (इसमें ईसाई और मुस्लिम संस्कृतियां सम्मिलत हैं)और चौथी संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति है. स्पेंगलर ने मुसलमानों, ईसाइयों तथा यहूदियों के विचारों को तो प्रस्तुत किया ही है, साथ ही साथ उनके ईरानी व सामी पूर्वजों के विचारों को भी प्रस्तुत किया है.

स्पेंगलर के अनुसार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक अपने जन्म से 1000 वर्ष पूरा करने के बाद पाश्चात्य संस्कृति शीत ऋतु के पड़ाव तक अर्थात् अपने पतन के चरण तक पहुंच गई है. स्पेंगलर के अनुसार पाश्चात्य संस्कृति अब सभ्यता की अवस्था में पहुँच चुकी है और अब उसका पतन सुनिश्चित है. पतन की इस नियति को कोई रोक नहीं सकता. स्पेंगलर कहता है –

'आधुनिक पाश्चात्य देश वासी फ़ास्टियन (अपनी आत्मा बेचकर भौतिक सुख खरीदने वाले) हैं.'

अपनी भौतिक प्रगति पर गर्व करने वाले इन पाश्चात्य देशवासियों की दुखद स्थिति पर स्पेंगलर शोक व्यक्त करता है क्योंकि वो स्वयं अपने भीतर-भीतर जानते हैं कि वो जिस लक्ष्य तक पहुँचने का अनवरत एवं अनथक प्रयास कर रहे हैं, उस तक वो कभी पहुंचेंगे नहीं.

7.4.4 स्पेंगलर की दृष्टि में प्रत्येक संस्कृति की अपनी-अपनी विशिष्टताएं

प्रत्येक संस्कृति की अपनी-अपनी विशिष्टताएं होती हैं जिसका प्रतिबिम्बन हमको उस संस्कृति के निवासियों के आचार-विचार में मिलता है. स्पेंगलर का यह मानना है कि किसी एक संस्कृति की भावना किसी दूसरी संस्कृति को हस्तान्तरित नहीं हो सकती. हर संस्कृति का मूल प्रतीक विशिष्ट और अन्य सभी सभ्यताओं सें अलग होता है. मिस्र की संस्कृति का मूल प्रतीक - पाषाण है, ग्रीक संस्कृति का मूल प्रतीक - सौन्दर्य का आदर्श है, भारतीय संस्कृति का मूल प्रतीक - आत्मा की मुक्ति है और पाश्चात्य संस्कृति का मूल प्रतीक - कंदरा अथवा गुंबद है.रूपविधानस्पेंगलर के , वह इसमें ऐसी प्रणाली का उपयोग करता है जिसमें कि इतिहास तथा ऐतिहासिक .दर्शन का एक प्रमुख अंग है-इतिहास प्रकार को कोई -इसमें सभ्यताओं के कार्य .तुलनाओं का आधार सभ्यताओं के रूप तथा उनकी संरचनाएं होती हैं .महत्त्व नहीं दिया जाता

7.4.5 संस्कृति तथा सभ्यता

स्पेंगलर, इन दो शब्दों का उपयोग एक ख़ास तरीके से करता है और उनके साथ विशिष्ट मूल्य जोड़ देता है. उसकी दृष्टि में संस्कृति तब सभ्यता के रूप में विकसित हो जाती है जब कि उसमें सृजनात्मक प्रेरणा क्षीण पड़ जाती है और आलोचनात्मक प्रेरणा बलशाली हो जाती है. स्पेंगलर संस्कृति को जीवित सभ्यता और सभ्यता को पतनोन्मुख सभ्यता मानता है. इस पतनोन्मुख सभ्यता में वहां के निवासियों को युद्ध जैसी विभीषिकाओं का सामना करना पड़ता

है. स्पेंगलर से पहले गौतम बुद्ध, सुकरात तथा रूसो ने भी संस्कृति के सभ्यता में परिवर्तित होने की बात कही है. इन विचारकों के अनुसार जब विश्व-दृष्टि में आत्मा से अधिक महत्ता बौद्धिकता की हो जाती है तो संस्कृति, सभ्यता में परिवर्तित हो जाती है.

स्पेंगलर प्राचीन सभ्यताओं के लिए 'अपोलोनियन' अरबी सभ्यता के लिए 'मागियन' तथा पाश्चात्य सभ्यता के लिए 'फ़ास्टियन' शब्दों का उपयोग करता है.अपोलोनियन संस्कृति तथा सभ्यता को प्राचीन यूनान तथा प्राचीन रोम पर केन्द्रित किया गया है. स्पेंगलर इसके वैश्विक दृष्टिकोण में मानव-शरीर के सौन्दर्य के प्रति प्रशंसा के भाव तथा स्थानीय मुद्दों व तात्कालिक क्षणों को प्राथमिकता दिया जाना, देखता है.मागियन संस्कृति तथा सभ्यता में स्पेंगलर 400 ईसा पूर्व से यहूदी, प्रारंभिक ईसाई तथा इस्लाम के उदय तक के विभिन्न अरबी क्षेत्रों की संस्कृतियों तथा सभ्यताओं को सम्मिलित करता है.स्पेंगलर के अनुसार फ़ास्टियन सभ्यता का प्रारंभ पाश्चात्य यूरोप में 10 वीं शताब्दी से हुआ था और 20 वीं शताब्दी तक इसका विस्तार किंचित मुस्लिम प्रभुत्व के क्षेत्रों को छोड़कर, समस्त विश्व में हो गया था.

7.4.6 छद्म रूपाकृति अर्ध विकसित संस्कृतियाँ

स्पेंगलर ने छद्म रूपाकृति की अवधारणा खनिज विज्ञान से ली है. इसके माध्यम से वह अर्ध-विकसित संस्कृतियों की व्याख्या करता है, विशेष रूप से छद्म रूपाकृति एक प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता को एक क्षेत्र में इतना अधिक जकड़ लेती है कि एक नवोदित संस्कृति न तो वहां अपना सम्पूर्ण रूप प्राप्त कर पाती है और न ही वह स्वयं को पूरी तरह व्यक्त कर पाती है. इन परिस्थितियों में नवीन संस्कृति ख़ुद को पुरानी स्थापित संस्कृति के ढांचे में ढालने को विवश हो जाती है. जरा-जीर्ण पद्धतियों को अपनाने के लिए विवश, नवीन विचार, अपनी सृजनात्मकता का विस्तार करने के स्थान पर प्राचीन सभ्यता के प्रति अपनी घृणा एवं अपना विरोध व्यक्त करने में अपना समय व्यर्थ करते हैं. स्पेंगलर का विचार है कि मागियन छद्म-रूपाकृति बैक्टियम के युद्ध से प्रारंभ हुई. इसमें अरब सभ्यता पर रोमन सभ्यता की विजय हुई.

7.5 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट'

7.5.1 संस्कृतियों के उत्थान और पतन का चक्र

'डिक्लाइन ऑफ़ दी वेस्ट' मुख्यतः प्राचीन संस्कृति तथा पाश्चात्य संस्कृति के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बद्ध है किन्तु इसमें किंचित उदाहरण अरबी, चीनी तथा मिस्र की सभ्यता से भी लिए गए हैं. 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में इस धारणा को प्रस्तुत किया गया है कि संस्कृतियों के इतिहास को जन्म, विकास और पतन के निश्चित नियम संचालित करते हैं और इन नियमों का गहन अध्ययन व विश्लेषण कर हम इतिहास के विषय में सटीक भविष्यवाणी कर सकते हैं. स्पेंगलर के अनुसार 'उत्थान के बाद पतन होता है' का सिद्धान्त संस्कृतियों-सभ्यताओं के इतिहास पर भी लागू होता है. गर्वोन्मत्त मिस्र, सुन्दर ग्रीस और महान रोम की सभ्यताएं , सभी एक दिन काल के गर्त में समा गईं. जूडिया, फ़ोनेसिया, कार्थेज, बेबीलोनिया, असीरिया और पर्शिया की सभ्यताएं भी विनष्ट हो गईं. स्पेंगलर यह प्रश्न उठाता है –

'क्या उत्थान और पतन का यह नियम आधुनिक इटली, स्पेन, फ़्रांस, इंग्लैण्ड और जर्मनी जैसे देशों वाले यूरोप पर लागू नहीं होगा?'

7.5.2 इतिहास का अर्थ

स्पेंगलर इतिहास-दार्शनिक होने के साथ-साथ गणितज्ञ और वैज्ञानिक भी था. उसके इतिहास-दर्शन में एक गणितज्ञ तथा एक वैज्ञानिक का दृष्टिकोण परिलक्षित होता है. उसके इतिहास-दर्शन को सुगमता के साथ दो भागों में विभक्त किया जा सकता है. पहले भाग में हम उसके प्रकृति-विषयक सिद्धांत ले सकते हैं और दूसरे भाग में उसके इतिहास-विषयक सिद्धांत ले सकते हैं.प्रकृति-विषयक सिद्धांतों में – स्थायित्व, मूर्तिमान और सादृश्य विशेषता वाली वस्तुएं आती हैं. ये सभी – 'देश' (स्पेस) से सम्बद्ध हैं. देश (स्पेस) की प्रवृत्ति (नेचर ऑफ़ स्पेस), हेतुवाद (कॉज़ेविटी) है.प्रकृति में कार्य-कारण की परंपरा ढूंढ़ी जा सकती है. इतिहास-विषयक सिद्धांतों में गतिशील, अमूर्त, प्रक्रियात्मक और निर्माण रूप आते हैं. ये सभी 'काल' (टाइम) से सम्बद्ध हैं.काल की प्रवृत्ति (नेचर ऑफ़ टाइम) नियति (डेस्टिनी) है.इतिहास में हम केवल गति, नियति और प्रक्रिया ही पा सकते हैं.स्पेंगलर इतिहास की व्याख्या करते हुए कहता है –

मानव-जीवन अपनी आतंरिक प्रवृत्ति तथा मौलिक प्रेरणा से विकास और निर्माण की जिस प्रक्रिया में गतिमान है, उसी का नाम इतिहास है.'

7.5.3 स्पेंगलर द्वारा इतिहास में काल-विभाजन की परंपरा का विरोध

स्पेंगलर इतिहास को एक निरंतर एवं क्रमबद्ध प्रक्रिया नहीं मानता है. इतिहास को 'प्रागैतिहासिक काल', 'प्राचीन काल', 'मध्य काल' तथा 'आधुनिक काल' में विभाजित किया जाना उसे स्वीकार्य नहीं है. स्पेंगलर के अनुसार इतिहास की प्रवृत्ति रेखात्मक नहीं अपितु वृत्तात्मक (चक्रीय) है. वह विश्व-इतिहास को अनंत निर्माणों, पुनर्निर्माणों तथा जीवित प्राणियों के उत्थान-पतन का चित्रण मानता है. यह मानते हुए भी कि सभी लोग, इतिहास का अंग हैं, स्पेंगलर इतिहास-पूर्व के तथा विश्व इतिहास के राष्ट्रों, राज्यों में अंतर करता है. उसका तर्क है कि विशिष्ट संस्कृतियों ने ही इतिहास के विकास में व्यापक योगदान दिया है.

स्पेंगलर की दृष्टि में स्वयं वैश्विक ऐतिहासिक दृष्टिकोण, इतिहास के अर्थ को दर्शाता है. इतिहासकार को एक दृष्टा के रूप में स्वयं को इतिहास के संकीर्ण एवं अपरिष्कृत सांस्कृतिक वर्गीकरण से अलग करना होगा. अन्य सभ्यताओं के विभिन्न चरणों का अध्ययन करके ही कोई व्यक्ति अपनी सभ्यता को और ख़ुद स्वयं को, अच्छी तरह से समझ सकता है.स्पेंगलर प्राचीन (शास्त्रीय) तथा भारतीय सभ्यताओं को इतिहास-पूर्व की सभ्यता मानता है. उसकी दृष्टि में मिस्र की सभ्यता तथा पाश्चात्य सभ्यता ने ऐतिहासिक समय की अवधारणाओं का विकास किया. स्पेंगलर की दृष्टि में वैश्विक ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करने के लिए सभी संस्कृतियों का अध्ययन आवश्यक है. इस विचार से ऐतिहासिक तुलनावाद तथा ऐतिहासिक वितरणवाद प्रवाहित होता है.

स्पेंगलर की दृष्टि में आदिम संस्कृति अपने अवयवों तथा असम्बद्ध अंशों का जोड़ अथवा संग्रह मात्र है (व्यक्ति, जनजाति, कुल आदि). उच्च संस्कृति अपनी परपक्वता तथा सम्बद्धता में स्वयं एक जीव की भांति बन जाती है. संस्कृति विभिन्न प्रथाओं, मिथकों, तकनीकों, कला, राष्ट्रों, राज्यों और वर्गों का सशक्त, एकाकी, संगठित

ऐतिहासिक प्रवृत्ति में परिष्कार करने में सक्षम है. स्पेंगलर संस्कृति की तथा सभ्यता की अवधारणाओं का विभाजन करता है. संस्कृति आभ्यांतर (आतंरिक) केन्द्रित होती है और यह वृद्धिमान होती है जब कि सभ्यता बाह्य होती है और इसका केवल विस्तार होता है (इसकी वृद्धि नहीं होती है). हालांकि वह प्रत्येक संस्कृति की नियति, सभ्यता के रूप में परिवर्तन में देखता है. जब संस्कृति की सृजनशीलता समाप्त हो जाती है और उसकी वृद्धि रुक जाती है तो वह सभ्यता के रूप में परवर्तित हो जाती है. स्पेंगलर इसका उदाहरण देता है – कल्पनाशील यूनानी संस्कृति का पतन हुआ और वह पूर्णतया व्यावहारिक रोमन सभ्यता के रूप में दिखाई दी.

7.5.4 मानव-विकास के इतिहास में सभ्यता को पतन के द्योतक के रूप में देखना

स्पेंगलर सभ्यताओं को मानव-विकास के इतिहास में निम्न स्थान पर रखता है. यहाँ तक कि उन सभ्यताओं को भी, जिनका विश्व-व्यापी विस्तार हुआ था. उदाहरण के लिए वह विश्व में अपना प्रभुत्व स्थापित करने वाली रोमन सभ्यता की उपलब्धियों को भी विशेष महत्त्व नहीं देता है. स्पेंगलर की दृष्टि में रोमन सभ्यता का विस्तार इसलिए संभव हो सका क्योंकि उसे कहीं भी प्रबल प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा. रोमन साम्राज्य, रोमन सांस्कृतिक ऊर्जा के कारण नहीं, अपितु यह तो विभिन्न राज्यों की अराजकतापूर्ण स्थिति तथा उनकी दुर्बल सैनिक-शक्ति के कारण अस्तित्व में आया.

7.5.5 जातियां, राष्ट्र (राज्य) तथा संस्कृतियाँ

स्पेंगलर कहता है – वनस्पतियों की तरह जाति (नस्ल) की भी जड़ होती है. यह एक परिदृश्य से जुड़ी होती है और अगर अपने ही उस परिदृश्य हमको वह जाति नहीं दिखाई देती तो इसका अर्थ यह होता है कि अब उसका अस्तित्व नहीं है. जाति का देशांतरण नहीं होता. मनुष्य देशांतरण करता है और उसकी परवर्ती पीढ़ियाँ इस सतत परिवर्तनशील परिदृश्य में उत्पन्न होती हैं; किन्तु परिदृश्य प्राचीन जाति के विलोपन पर तथा नई जाति के प्रकटन पर एक गुप्त-शक्ति के रूप में कार्य करता है. इस दृष्टि से जाति, ठीक वनस्पति के समान नहीं है.'स्पेंगलर कहता है – 'साहचर्य जाति को उत्पन्न करता है.' स्पेंगलर कहता है - 'जाति से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध, राष्ट्र एक आत्मा के समान हैं. इतिहास की महान घटनाएं वास्तव में राष्ट्रों की उपलब्धि नहीं थीं अपितु उन घटनाओं ने ख़ुद ही राष्ट्रों को बनाया था.' स्पेंगलर की दृष्टि में – ' राष्ट्र न तो भाषागत इकाइयाँ हैं , न राजनीतिक इकाइयाँ हैं और न ही प्राणि-विज्ञान की इकाइयाँ हैं, बल्कि वो तो आत्मिक इकाइयाँ है.'

जाति तथा संस्कृति को एक साथ रखने के प्रयास में स्पेंगलर फ्रेडरिक राटज़ेल तथा रुडोल्फ केलेन के राष्ट्रीय समाजवादी तथा जर्मन संस्कृति-विषयक विचारों को दोहराता है. अपने बाद के ग्रंथों – 'मैन एंड टेक्निक्स' (1931) तथा 'दि आवर ऑफ़ डिसीज़न' (1933) में स्पेंगलर, जाति के आध्यात्मिक मत का विस्तार करता है और इसे शाश्वत संघर्ष की धारणा से जोड़ता है और अपने इस विचार से भी कि 'मनुष्य एक शिकारी जानवर है.' जर्मनी की नाजीवादी सरकार ने स्पेंगलर की इस पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया था.

7.5.6 संस्कृति के विकास में धर्म की भूमिका

स्पेंगलर संस्कृति को धार्मिक सृजनात्मकता का पर्याय मानता है. वैसे स्पेंगलर न तो पूरी तरह धर्म के समर्थन में है और न ही पूरी तरह से धर्म के विरुद्ध है. वह प्रत्येक संस्कृति के प्रारंभिक काल में उसकी एक धार्मिक पहचान देखता है जो कि अंततः धर्म-सुधार जैसे दौर से गुज़रती है, इसके बाद बौद्धिकता का युग आता है जिसमें विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति होती है और अंत में संस्कृति की बौद्धिक सृजनात्मकता के पतन के समय पुनः धर्म का महत्त्व बढ़ जाता है.

धर्म सुधार के बाद के समय से सम्बद्ध वैज्ञानिक स्थिति – शुद्धिवाद थी जिसमें कि बुद्धिवाद के मूलतत्व सम्मिलित थे. अंततः संस्कृति में बुद्धिवाद का प्रसार पूर्णतया हो गया और वैचारिक क्षेत्र में भी उसका वर्चस्व स्थापित हो गया. स्पेंगलर की दृष्टि में संस्कृति धार्मिक सृजनात्मकता का पर्याय है. प्रत्येक महान संस्कृति का प्रारंभ धार्मिक प्रवृत्ति से होता है जिसका कि उदय ग्रामीण अंचल में होता है और फिर वह सांस्कृतिक नगरों तक पहुँचती है और फिर उसका अंत वैश्विक नगरों में, भौतिकतावाद में होता है.

7.5.7 लोकतंत्र, संचार माध्यम तथा धन

स्पेंगलर की दृष्टि में लोकतंत्र, सीधी तरह से धन का राजनीतिक हथियार है और धन, संचार माध्यम की सहायता से राजनीतिक व्यवस्था को संचालित करता है. इसी सम्पूर्ण धन-शक्ति के समाज में प्रविष्ट होने पर संस्कृति शनैः शनैः सभ्यता की ओर मुड़ जाती है. स्पेंगलर, लोकतंत्र को धन-तंत्र के समकक्ष रखता है. स्पेंगलर की द्रष्टि में समानता, मूल अधिकार, सार्वभौमिक मताधिकार, प्रेस के स्वतंत्रता आदि सभी सिद्धांत, छद्म रूप से मध्यवर्ग तथा आभिजात्य वर्ग के बीच वर्ग-संघर्ष हैं. स्पेंगलर की दृष्टि में 'स्वतंत्रता' एक नकारात्मक अवधारणा है जो कि परम्पराओं का परित्याग-मात्र है. प्रेस की स्वतंत्रता की वास्तविकता यह है कि उसके लिए धन की आवश्यकता होती है और धन के लिए स्वामित्व की आवश्यकता होती है. चुनाव में चंदे पर ही होते हैं. चाहे समाजवाद हो और चाहे उदारवाद, प्रत्याशी चाहे किसी भी सिद्धांत को अपनाते हों किन्तु किसी की चलती है तो वह है – पैसा. स्पेंगलर ने यह स्वीकार किया था कि उसके अपने समय में लोकतंत्र के रूप में धन की पहले ही जीत हो चुकी है किन्तु प्राचीन संस्कृति के तत्वों का विनाश करने के साथ ही यह सीज़र जैसे किसी शक्तिशाली अधिनायक के उत्थान का मार्ग प्रशस्त कर देता है.

7.5.8 स्पेंगलर का 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में वैश्विक दृष्टिकोण

'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट', आटो सीक की रचना 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि एन्टीक्विटी' से प्रभावित थी. इसमें समकालीन विश्व-व्यापी युद्ध-विरोधी मानसिकता का प्रतिबिम्बन है. 'इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में स्पेंगलर ने एक ऐसा वैश्विक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिसमें प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात जर्मनी और आस्ट्रिया के निवासियों की भावनाओं की प्रतिध्वनि है. स्पेंगलर ने मित्र राष्ट्रों की विजय के खोखलेपन को भी दर्शाया है. इस पुस्तक में लोकतन्त्र को पतनशील सभ्यता का द्योतक माना गया है. जर्मनी में लोकतन्त्र की असफलता के पश्चात बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारम्भ में स्पेंगलर ने तानाशाही अथवा अधिनायक तन्त्र के उत्थान का समर्थन किया है.

'डिक्लाइन ऑफ़ दि वेस्ट' का प्रथम खंड लिखते समय स्पेंगलर की योजना – जर्मनी को केंद्र बनाकर यूरोप का इतिहास लिखने की थी किन्तु 1911 के 'अगादिर संकट' ने उसे बहुत आंदोलित कर दिया और फिर उसने अपने ग्रन्थ का क्षेत्र विस्तृत करने का निश्चय किया.स्पेंगलर ने अपने ग्रन्थ 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वेस्ट' में मात्र यूरोप पर केन्द्रित ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अस्वीकार किया है. वह इतिहास के रेखीय विभाजन, विशेषकर उसके – प्राचीन काल, मध्य काल तथा आधुनिक काल में विभाजन को अस्वीकार करता है. वह इतिहास की सार्थक इकाई 'युग' में नहीं, अपितु समस्त संस्कृति में देखता है जो कि एक जीव के समान विकसित होती है.स्पेंगलर के विश्व-विषयक ऐतिहासिक दृष्टिकोण को गोथे तथा नीत्ज़े के दर्शन ने प्रभावित किया है. उसका विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण सादृश्यमूलक है. इन साधनों से हम विश्व में ध्रुवीकरण तथा आवर्तन में अंतर कर पाने में सक्षम होते हैं.

1918 में 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वेस्ट' का प्रकाशन हुआ. इस पुस्तक को अपार सफलता मिली. 1919 जर्मनी के लिए घोर अपमानजनक वर्साय की संधि, पहले आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि और फिर विश्व-व्यापी आर्थिक मंदी ने इस पुस्तक में स्पेंगलर द्वारा की गयी निराशावादी भविष्यवाणियों को सच साबित कर दिया. स्पेंगलर ने जर्मनी के पतन को वैश्विक ऐतिहासिक प्रक्रिया के एक अंग के रूप में देखा था.

7.5.9 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में स्पेंगलर का अवैज्ञानिक दृष्टिकोण

इतिहास समीक्षकों ने 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वेस्ट' में स्पेंगलर के अवैज्ञानिक दृष्टिकोण की कटु आलोचना की. जहाँ मैक्स वेबर ने स्पेंगलर को एक सच्चा और विद्वान कला-प्रेमी बताया वहीं कार्ल पोपर ने उसके शोध को दिशाहीन बताया. पुराकाल-विशेषज्ञ इतिहासकार एडुअर्ड मेयर ने किंचित आलोचना के बावजूद स्पेंगलर के ग्रन्थ को महान बताया. स्पेंगलर की अस्पष्टता, उसका आत्मानुभुतिवाद और उसका रहस्यवाद, सदैव प्रत्यक्षवादियों तथा नियो-कांटीनियंस (इमानुअल कांट के नए अनुयायी) के निशाने पर रहे. हैरी कैसलर ने उसकी विचारधारा को नितांत अमौलिक बताया. किन्तु इतिहास-दर्शन के क्षेत्र में स्पेंगलर के दृष्टिकोण का व्यापक प्रभाव पड़ा और उसे हम 'सामाजिक चक्रीय सिद्धांत' (सोशल साइकिल थ्योरी) की स्थापना का श्रेय दे सकते हैं.

7.6 स्पेंगलर की अन्य रचनाएं

1920 में स्पेंगलर ने 'प्रशियनडम एण्ड सोशलिज़्म' की रचना की जिसमें कि उसने समाजवाद और सत्तावाद के एक सुगठित राष्ट्रवादी रूप के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किए हैं. अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड दि टैक्नीक' (1931) में स्पेंगलर ने संस्कृति पर तकनीकी विकास और औद्योगिकीकरण के हानिकारक प्रभाव को दर्शाया है. स्पेंगलर की दर्शन सम्बन्धी एक पुस्तक - 'दि मैटाफ़िज़िकल आइडिया ऑफ़ हेराक्लिटिस फ़िलोसॅफ़ी' है.

अपने निजी पत्रों में स्पेंगलर ने यहूदी-विरोधी विचारधारा की खुलकर भर्त्सना की है. स्पेंगलर ने आने वाले समय में एक ऐसा विश्व युद्ध होने की चेतावनी दी थी जिसमें कि पाश्चात्य सभ्यता के विनष्ट होने का संकट था.

7.7 एक इतिहाकार के रूप में स्पेंगलर का आकलन

7.7.1 स्पेंगलर की आलोचना

गोबिल जैसे नाज़ी, स्पेंगलर को अपना बौद्धिक अग्रदूत मानते थे किन्तु 1933 में उसे जर्मनी तथा समस्त यूरोप के भविष्य के विषय में निराशावादी दृष्टिकोण रखने, जातीय श्रेष्ठता की नाज़ी विचारधारा का समर्थन न करने,

और अपनी विवादास्पद आलोचनात्मक रचना - 'दि आवर ऑफ़ डिसीज़न' के लेखन के आरोप में जर्मनी से निर्वासित कर दिया गया. हिटलर के राजनीतिक उत्थान के बावजूद वह अपने दृष्टिकोण पर निरन्तर कायम रहा.

स्पेंगलर द्वारा सार्वाभौमिक इतिहास की व्यवस्थित व्याख्या का प्रयास सराहनीय है. स्पेंगलर द्वारा सन्निकट निष्ठुर तानाशाही की भविष्यवाणी हिटलर के उत्थान और उसके सत्ताग्रहण से सत्य सिद्ध हुई. परन्तु अब स्पेंगलर की पुस्तक अधिकांशतया एक कपोल-कल्पना जैसी प्रतीत होती है, विशेषकर उसके द्वारा की गई पाश्चात्य सभ्यता के सन्निकट अनिष्टसूचक विनाश की निराशाजनक भविष्यवाणी. इतिहास विशेषज्ञों ने स्पेंगलर की अप्रामाणिक तरीकों की आलोचना की है क्योंकि वह इसकी परवाह ही नहीं करता कि तथ्यों का प्रस्तुतीकरण गलत है या सही है. मानव-समाज को एक जैविक इकाई के रूप में प्रस्तुत करने की स्पेंगलर की असफल कोशिश के कारण सामाजिक सिद्धान्त के क्षेत्र में 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' के महत्वपूर्ण योगदान पर भी शंकाएं उठी हैं. समीक्षकों ने स्पेंगलर के अवश्यम्भावी पतन के नियतिवादी सिद्धान्त की आलोचना की है और साथ ही साथ उसके द्वारा ज्ञानोदय, प्रगति के सिद्धान्त तथा सैकड़ों वर्षों के संघर्ष के बाद हासिल की गई लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता के परित्याग को भी दोषपूर्ण माना है.मार्क्सवादी आलोचनात्मक सिद्धांत के फ्रैंकफ़र्ट स्कूल के सदस्य अडोर्नो ने स्पेंगलर के इतिहास के अतिनियतिवादी - इतिहास में मनुष्य की ,अडोर्नो के अनुसार स्पेंगलर ने अपने नियतिवादी दृष्टिकोण में .दृष्टिकोण की आलोचना की है .भूमिका की उपेक्षा की है (तरंगी) अननुमेय

स्पेंगलर ने पाश्चात्य सभ्यता का अंत की भविष्यवाणी जर्मन प्रभुत्व के रूप में की थी किन्तु दो विश्व-युद्धों में जर्मनी की पराजय से विश्व में जर्मन प्रभुत्व स्थापित नहीं हो सका और न ही उसके द्वारा की गयी भविष्यवाणी के अनुरूप पाश्चात्य सभ्यता का अंत हुआ.टॉयनबी ने 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में स्पेंगलर के ग्रंथ 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में प्रतिपादित चक्रीय सिद्धान्त का अनुकरण किया है किन्तु उसे उसका प्राचीन यान्त्रिक नियतिवाद का आदर्श स्वीकार्य नहीं है.

स्पेंगलर का संस्कृतियों को जीवित शरीर मानना नितांत काल्पनिक है. उसका यह मानना भी त्रुटिपूर्ण है कि व्यक्ति और समाज इस संस्कृति रूपी शरीर के कोश हैं. स्पेंगलर द्वारा संस्कृति और सभ्यता में जो भेद बताए गए हैं वो भी सर्व-ग्राह्य नहीं है. मनुष्य का ग्रामीण जीवन छोड़ कर शहरों में बस जाने को सभ्यता के पतन की निशानी बताना भी नितांत अवैज्ञानिक है. उसका नियतिवाद का विचार भी सर्व-ग्राह्य नहीं है.

7.7.2 दार्शनिकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों, चित्रकारों, फ़िल्मकारों, समीक्षकों आदि पर स्पेंगलर के दर्शन का प्रभाव

स्पेंगलर की फ़ास्टियन (अपनी आत्मा बेचकर दुनियावी समृद्धि प्राप्त करने का सौदा), चक्रीय, तथा पाश्चात्य सभ्यता के अवश्यम्भावी विनाश की अवधारणाओं ने आने वाली पीढ़ी के दार्शनिकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों, चित्रकारों, फ़िल्मकारों और समीक्षकों को अत्यधिक प्रभावित किया है. उसकी विचारधारा से प्रभावित दार्शनिकों में मार्टिन हीडेगर, लुडविग विट्जेन्सटीन तथा फ्रांसिस पार्कर याकी के नाम प्रमुख हैं. उससे प्रभावित लेखकों तथा कवियों में अर्नेस्ट हेमिंग्वे ('फेयरवेल टू आर्म्स'), विला कार्थर, हेनरी मिलर, एच0 जी0 वेल्स तथा मैल्कम लोली, हैरमन कान ('दि ईयर 2000' में फ़ास्टियन अवधारणा), जॉन डास पैसोस, एफ़0 स्काट फ़िट्ज़ेराल्ड, विलियम एस0 बरो, जैक कैरोक, कवि विलियम बटलर यीट्स आदि प्रमुख हैं. चित्रकार कोकोशका तथा फ़िल्मकार फ़्रिट्ज़ लैग पर भी स्पेंगलर की विचारधारा का प्रभाव पड़ा है.

स्पेंगलर के इतिहास-दर्शन में बहुत दोष हैं किन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि उसने अपने विचारों से अपने समकालीन चिंतन को बहुत अधिक प्रभावित किया था. इतिहास-दर्शन के क्षेत्र में उसका स्थान बहुत ऊंचा है और उसकी गणना युग-प्रवर्तक इतिहास-चिंतकों में की जाती है.

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. स्पेंगलर द्वारा संस्कृति को एक जैव इकाई के रूप में देखना
2. स्पेंगलर द्वारा वर्णित 8 संस्कृतियाँ
3. दार्शनिकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों तथा कलाकारों पर स्पेंगलर की विचारधारा का प्रभाव
4.

7.8 सारांश

ओस्वाल्ड आर्नाल्ड स्पेंगलर (1880-1936) ने एक इतिहास-दार्शनिक के रूप में बीसवीं शताब्दी के इतिहास-दर्शन पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है. स्पेंगलर ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद इतिहास में संश्लेषण और उद्देश्य की आवश्यकता पर बल दिया. स्पेंगलर की रचनाएं प्राथमिक स्रोतों पर आधारित इतिहास तथा सार्वभौमिक इतिहास के समाकलन का उदाहरण है.

प्रथम विश्व युद्ध की भयावह विनाश लीला ने विचारकों को दार्शनिक स्तब्धता और निराशा की स्थिति में डाल दिया था. स्पेंगलर की रचना 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में भी विचारकों की ऐसी ही मनःस्थिति का प्रतिबिम्बन है.'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में इस धारणा को प्रस्तुत किया गया है कि संस्कृतियों के इतिहास को जन्म, विकास और पतन के निश्चित नियम संचालित करते हैं. इसमें स्पेंगलर ने एक नए सिद्धान्त - 'प्रत्येक मानव-सभ्यता की एक सीमित जीवन-अवधि होती है' का प्रतिपादन किया है. प्रत्येक संस्कृति का अपना बचपन, जवानी और बुढ़ापा होता है और एक समय ऐसा भी आता है जब कि उस संस्कृति की मृत्यु हो जाती है. स्पेंगलर का यह विचार है कि जब किसी संस्कृति की आत्मा का विकास रुक जाता है तो वह अपने अन्तिम रूप में सभ्यता में प्रविष्ट होती है. स्पेंगलर की प्रसिद्धि का मुख्य आधार प्रारब्ध पर लिखी उसकी युद्ध विरोधी पुस्तक 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' है. स्पेंगलर विश्व इतिहास को महान संस्कृतियों का एक नाटक मानता है. इस नाटक में प्रत्येक संस्कृति स्वयमेव पल्लवित होती है. प्रत्येक संस्कृति एक जैव इकाई के समान है जिसके कि विभिन्न जीवन-चक्र होते हैं.

स्पेंगलर आठ प्रमुख संस्कृतियों का उल्लेख करता है. ये आठ संस्कृतियां हैं - मिस्र की, बेबीलोनियन, भारतीय, चीनी, ग्रीको-रोमन (क्लासिकल), अरबी, मैक्सिकन और पाश्चात्य (यूरोपियन-अमेरिकन). स्पेंगलर के अनुसार प्रत्येक संस्कृति का जीवन औसतन 1000 वर्ष का होता है. स्पेंगलर पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है. स्पेंगलर के अनुसार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक पाश्चात्य संस्कृति शीत ऋतु के पड़ाव तक अर्थात् अपने पतन के चरण तक पहुंच गई है.स्पेंगलर की दृष्टि में संस्कृति तब सभ्यता के रूप में विकसित हो जाती है जब कि उसमें सृजनात्मक प्रेरणा क्षीण पड़ जाती हैस्पेंगलर संस्कृति को जीवित सभ्यता और सभ्यता को . .पतनोन्मुख सभ्यता मानता हैउसके अनुसार प्रत्येक संस्कृति की अपनी आत्मा होती है जो कि दर्शन ,कला ,विज्ञान , .है भाषा आदि में अभिव्यक्त होती ,साहित्य

स्पेंगलर के इतिहास-दर्शन इतिहास-दर्शन को सुगमता के साथ दो भागों में विभक्त किया जा सकता है. पहले भाग में हम उसके प्रकृति-विषयक सिद्धांत ले सकते हैं और दूसरे भाग में उसके इतिहास-विषयक सिद्धांत ले सकते हैं.स्पेंगलर इतिहास को एक निरंतर एवं क्रमबद्ध प्रक्रिया नहीं मानता है. इतिहास को 'प्रागैतिहासिक काल', 'प्राचीन

काल', 'मध्य काल' तथा 'आधुनिक काल' में विभाजित किया जाना उसे स्वीकार्य नहीं है. स्पेंगलर के अनुसार इतिहास की प्रवृत्ति रेखात्मक नहीं अपितु वृत्तात्मक (चक्रीय) है.

स्पेंगलर सभ्यताओं को मानव-विकास के इतिहास में निम्न स्थान पर रखता है. यहाँ तक कि उन सभ्यताओं को भी, जिनका विश्व-व्यापी विस्तार हुआ था. स्पेंगलर संस्कृति को धार्मिक सृजनात्मकता का पर्याय मानता है. प्रत्येक महान संस्कृति का प्रारंभ धार्मिक प्रवृत्ति से होता है और फिर उसका अंत वैश्विक नगरों में, भौतिकतावाद में होता है.स्पेंगलर की दृष्टि में लोकतंत्र, समानता, मूल अधिकार, सार्वभौमिक मताधिकार, प्रेस के स्वतंत्रता आदि सभी सिद्धांत, छद्म रूप से मध्यवर्ग तथा आभिजात्य वर्ग के बीच वर्ग-संघर्ष हैं. स्पेंगलर की दृष्टि में 'स्वतंत्रता' एक नकारात्मक अवधारणा है जो कि परम्पराओं का परित्याग-मात्र है.'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट', के दूसरे खण्ड में स्पेंगलर ने मित्र राष्ट्रों की विजय के खोखलेपन को भी दर्शाया है. जर्मनी में लोकतन्त्र की असफलता के पश्चात बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारम्भ में स्पेंगलर ने तानाशाही अथवा अधिनायक तन्त्र के उत्थान का समर्थन किया है. स्पेंगलर के विश्व-विषयक ऐतिहासिक दृष्टिकोण को गोथे तथा नीत्ज़े के दर्शन ने प्रभावित किया है.

इतिहास समीक्षकों ने 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वेस्ट' में स्पेंगलर के अवैज्ञानिक दृष्टिकोण की कटु आलोचना की. कार्ल पोपर ने उसके शोध को दिशाहीन बताया. स्पेंगलर की अस्पष्टता, उसका आत्मानुभुतिवाद, उसका नियतिवाद और उसका रहस्यवाद, सदैव प्रत्यक्षवादियों तथा नियो-कांटीनियंस (इमानुअल कांट के नए अनुयायी) के निशाने पर रहे. टॉयनबी ने उसके चक्रीय सिद्धांत का अनुकरण तो किया है किन्तु उसे उसका यांत्रिक नियतिवाद स्वीकार्य नहीं है. स्पेंगलर की अन्य रचनाओं में 'प्रशियनडम एण्ड सोशलिज़्म', 'मैन एण्ड दि टैक्नीक', 'दि मैटाफ़िज़िकल आइडिया ऑफ़ हेराक्लिटिस फ़िलोसॅफ़ी' उल्लेखनीय हैं.

स्पेंगलर द्वारा सार्वाभौमिक इतिहास की व्यवस्थित व्याख्या का प्रयास सराहनीय है किन्तु अब स्पेंगलर की पुस्तक अधिकांशतया एक कपोल-कल्पना जैसी प्रतीत होती है, विशेषकर उसके द्वारा की गई पाश्चात्य सभ्यता के सन्निकट अनिष्टसूचक विनाश की निराशाजनक भविष्यवाणी. स्पेंगलर की फ़ास्टियन चक्रीय, तथा पाश्चात्य सभ्यता के अवश्यम्भावी विनाश की अवधारणाओं ने आने वाली पीढ़ी के दार्शनिकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों, चित्रकारों, फ़िल्मकारों और समीक्षकों को अत्यधिक प्रभावित किया है. स्पेंगलर के इतिहास-दर्शन में अनेक दोष हैं किन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि उसने अपने विचारों से अपने समकालीन चिंतन को अत्यधिक प्रभावित किया. इतिहास-दार्शनिक के रूप में उसका स्थान बहुत ऊंचा है और उसकी गणना युग प्रवर्तक इतिहास-दार्शनिकों में की जाती है.

7.9 पारिभाषिक शब्दावली

सार्वभौमिक इतिहास – वैश्विक इतिहास
डिक्लाइन ऑफ़ दि वेस्ट – पश्चिम का पतन
फ़ास्तियन – अपनी आत्मा बेचकर भौतिक सुख खरीदने वाला
अवरुद्ध सभ्यता – ऐसी सभ्यता जिसका विकास रुक गया हो
दि ऑवर ऑफ़ डिसीज़न – फ़ैसले की घड़ी
अगादिर संकट – अप्रैल, 1911 में फ़्रांस द्वारा मोरक्को के आतंरिक भाग पर अधिकार करने के बाद जर्मनी और फ़्रांस के बीच तनाव और फिर यूरोप के देशों में युद्ध होने का संकट

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

देखिए 7.3.2 स्पेंगलर द्वारा संस्कृति को एक जैव-प्राणी के रूप में स्थापित करने की चेष्टा

2. देखिए 7.4.3 स्पेंगलर द्वारा वर्णित सभ्यताएँ
3. देखिए 7.7.2 दार्शनिकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों, चित्रकारों, फ़िल्मकारों, समीक्षकों आदि पर स्पेंगलर के दर्शन का प्रभाव
4.

7.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

कालिंगवुड, आर0 जी0 - दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री, लन्दन, 1978

श्रीधरन, ई0 - ए टैक्स्ट बुक ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफ़ी, नई दिल्ली, 2013

कार, ई0 एच0 (अनुवादकः चक्रधर, अशोक) - 'इतिहास क्या है', नई दिल्ली, 1993

थापर, रोमिला (सम्पादक) - 'इतिहास की पुनर्व्याख्या' नई दिल्ली, 1991

बुद्धप्रकाश - 'इतिहास दर्शन' इलाहाबाद, 1962

वर्मा, लालबहादुर - 'इतिहास के बारे में', इलाहाबाद, 2000

शर्मा, रामविलास - 'इतिहास दर्शन', नई दिल्ली, 1995

टोश, जॉन – 'दि पर्सूट ऑफ़ हिस्ट्री: एम्स, मेथड्स एंड न्यू डायरेक्शंस इन दि स्टडी ऑफ़ मॉडर्न हिस्ट्री' हार्लो, 1999

कॉलिंगवुड आर. जी. – 'दि मैप ऑफ़ नॉलिज', ऑक्सफ़ोर्ड, 1924

टोश, जॉन – 'दि पर्सूट ऑफ़ हिस्ट्री: एम्स, मेथड्स एंड न्यू डायरेक्शंस इन दि स्टडी ऑफ़ मॉडर्न हिस्ट्री' हार्लो, 1999

नौफ़, एल्फ्रेड ए. – 'ओसवाल्ड स्पेंगलर, दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट', न्यूयॉर्क, 1962

हटिंगटन, सैमुअल पी. – 'क्लैश ऑफ़ सिविलाइज़ेशंस एंड रिमेकिंग ऑफ़ वर्ड ऑर्डर', न्यूयॉर्क, 2003

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वेस्ट' का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए.

इकाई आठ: इतिहास का दर्शन, अर्नाल्ड जे. टॉयनबी

8.1 प्रस्तावना

8. 2 उद्देश्य

8.3 एक इतिहासकार के रूप में टॉयनबी की जीवन-यात्रा

- **8.3.1 टॉयनबी का प्रारंभिक परिचय**
- **8.3.2 आदि काल से लेकर टॉयनबी से पूर्व तक 'युग-चक्रीय' अवधारणा**
- **8.3.3 सभ्यताओं के अध्ययन में टॉयनबी की अभिरुचि**
- **8.3.4 टॉयनबी तथा स्पेंगलर के सभ्यता विषयक विचार**
- **8.3.5 टॉयनबी द्वारा सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन को एक आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में देखना**
- **8.3.6 इतिहास-लेखन में टॉयनबी का विश्व-व्यापी दृष्टिकोण**
- **8.3.7 सभ्यताओं के इतिहास में पाश्चात्य सभ्यता को ही केंद्र-बिंदु बनाए जाने की मानसिकता का विरोध**
- **8.3.8 टॉयनबी द्वारा भारतीय संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता की प्रशंसा**
- **8.3.9 सभ्यताओं का वर्गीकरण**
- **8.3.10 सभ्यताओं के पतन के कारण**

8.4. चुनौती और उसके प्रत्युत्तर का सिद्धांत

- **8.4.1 'चुनौती और उसके प्रत्युत्तर के सिद्धांत के' द्वारा सभ्यताओं के उत्थान और उनके पतन के चक्र को समझने का प्रयास**
- **8.4.2 सभ्यता के विघटन के कारण**

8.5 टॉयनबी का युग-चक्रीय सिद्धांत

8.6. टॉयनबी की रचनाएं

8.7 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री'

- **8.7.1 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' की विषय-वस्तु**
- **8.7.2 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' द्वारा सभ्यताओं के अध्ययन की एक नई प्रणाली का विकास**

8.8 एक इतिहास-दार्शनिक के रूप में टॉयनबी का आकलन

- **8.8.1 विद्वानों द्वारा 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' का आकलन**
- **8.8.2 आज के युग में टॉयनबी के इतिहास-दर्शन की प्रासंगिकता**

8.9 सारांश

8.10 पारिभाषिक शब्दावली

8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

अर्नाल्ड जोज़फ़ टॉयनबी (1889-1975) 20 वीं शताब्दी का महान इतिहास-दार्शनिक था. बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति ने 'ग्लोबल विलेज' (भारतीय दर्शन में जिसे हम वसुधैव कुटुम्बकम कहते हैं) की अवधारणा प्रबल होने लगी थी. टॉयनबी का दृष्टिकोण यही था. वह विश्व-भ्रातृत्व की भावना से ओत-प्रोत था. एक इतिहासकार के रूप में सार्वभौमिक इतिहास लिखने में उसकी अभिरुचि थी. उसने विश्व की 26 सभ्यताओं का अध्ययन कर इतिहास-लेखन को एक विश्व-व्यापी दृष्टिकोण दिया. सभ्यताओं के विकास के सन्दर्भ में उसकी 'चैलेंज एंड रिस्पोंस थ्योरी' (चुनौती और जवाब का सिद्धांत) ने सभ्यता के विकास और उसके पतन के विषय में बहुत से अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर देने में सफलता प्राप्त की किन्तु विद्वानों ने इस सिद्धांत की व्यापक स्तर पर आलोचना भी की.

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इतिहास एक स्वतन्त्र वैज्ञानिक विषय के रूप में स्थापित हो चुका था और इसकी प्रणाली व तकनीक पर सी. वी. लैंग्लोइस, चार्ल्स सीग्नोबोस, तथा लार्ड एक्टन द्वारा इतिहास के सिद्धान्त के पुनर्परीक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हुआ. डर्खेम, वेबर और फ्रायड ने ऐतिहासिक विश्लेषण की परम्परागत प्रणाली को एक नया आयाम दिया. स्पेंगलर ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद और टॉयनबी ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विशेषज्ञता के इस युग में इतिहास में संश्लेषण और उद्देश्य की आवश्यकता पर बल दिया. स्पेंगलर तथा टॉयनबी की रचनाएं प्राथमिक स्रोतों पर आधारित इतिहास तथा सार्वभौमिक इतिहास के समाकलन के दो उदाहरण हैं. स्पेंगलर की रचनाओं में सामान्यीकरण की अधिकता है जब कि टॉयनबी स्रोत पर आधारित इतिहास लेखन तथा सार्वभौमिक इतिहास लेखन के समाकलन के साथ मानव सभ्यताओं के अध्ययन की ओर अग्रसर होता है. दोनों ही इतिहासकारों ने इतिहास के प्रस्तुतीकरण में सोद्देश्यवादी सिद्धान्तों को समाहित करने का प्रयास किया है. स्पेंगलर और टॉयनबी वास्तव में विश्व युद्ध प्रारम्भ होने से ठीक पहले के समय के उत्तर-आधुनिक शैली के अनुदारवादी विचारक हैं. इस युद्ध की भयावह विनाश लीला ने बीसवीं शताब्दी के विचारकों को दार्शनिक स्तब्धता और निराशा की स्थिति में डाल दिया था.

टॉयनबी ने 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में स्पेंगलर के ग्रंथ 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में प्रतिपादित चक्रीय सिद्धान्त का अनुकरण किया था किन्तु उसे उसका प्राचीन यान्त्रिक नियतिवाद का आदर्श स्वीकार्य नहीं था. टॉयनबी ने अनुभवाश्रित एवं प्रेरक आदर्श का चयन किया। इस कार्य-प्रणाली में 26 सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है क्योंकि टॉयनबी यह मानता है कि ऐतिहासिक अध्ययन की सुबोधगम्य इकाइयां राष्ट्र अथवा काल नहीं बल्कि समाज अथवा सभ्यताएं हैं. टॉयनबी की इतिहास रूपी पहेली की प्रमुख कुंजी अपने द्वारा प्रतिपादित 'चुनौती और प्रतिक्रिया' की परिकल्पना है. टॉयनबी ने चुनौती और प्रतिक्रिया की परिकल्पना द्वारा विभिन्न सभ्यताओं के जन्म, विकास, विघटन और पतन के चक्र को समझने का प्रयास किया है.

टॉयनबी का यह मानना है कि किसी सभ्यता का विकास तब होता है जबकि उसके समक्ष आई हुई चुनौती का उसके द्वारा दिया गया जवाब न केवल सफल हो अपितुआगे अधिक कठिन चुनौती का मुकाबला करने के लिए उसके नागरिक तत्पर हों. टॉयनबी सभ्यताओं के विकास और उनके पतन को एक आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में देखता है. आज हम इतिहास को कला और विज्ञान दोनों के सम्मिलन के रूप में जानते हैं और इस निष्कर्ष तक पहुंचने में टॉयनबी के दृष्टिकोण ने हमारी सहायता की है.

8. 2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको प्राचीन काल व मध्यकाल में युगों के विभिन्न चक्रीय सिद्धान्तों की संक्षिप्त चर्चा करते हुए आधुनिक काल के, विशेषकर टॉयनबी के युगों के चक्रीय सिद्धांतों से परिचित कराना है. इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- प्राचीन काल से लेकर बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक युगों के चक्रीय सिद्धान्तों के विषय में.

2- आदि काल से लेकर 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' की रचना से पूर्व तक की मानव सभ्यताओं के जन्म, विकास, पतन व अन्त के विषय में.

3- टॉयनबी द्वारा 26 सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन के विश्लेषणात्मक अध्ययन के के विषय में.

4. टॉयनबी के युग-चक्रवादी सिद्धान्त के विषय में.

5. टॉयनबी द्वारा सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन की व्याख्या के विषय में.

6. टॉयनबी के इतिहास-दर्शन के गुण-दोषों के विषय में.

7. इतिहास-दर्शन के क्षेत्र में टॉयनबी के योगदान के विषय में.

8.3 एक इतिहासकार के रूप में टॉयनबी की जीवन-यात्रा

8.3.1 टॉयनबी का प्रारंभिक परिचय

अर्नाल्ड जोज़फ़ टॉयनबी (1889-1975) प्रसिद्द अर्थशास्त्री अर्नोल्ड टॉयनबी का भतीजा था. उसकी बहन जोस्लीन टॉयनबी एक पुरातत्वज्ञ तथा कला-इतिहासकार थी. उसकी शिक्षा ऑक्सफ़ोर्ड के विनचेस्टर कॉलेज तथा बैलिओल कॉलेज में हुई थी और कुछ समय तक उसने ब्रिटिश स्कूल ऑफ़ एथेंस में भी उसने शिक्षा प्राप्त की थी. एथेंस में ही उसने सभ्यताओं का पतन-विषयक अपना विचार विकसित किया था. टॉयनबी ने ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर लन्दन विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में अध्यापन किया. टॉयनबी ने ग्रीक एवं लैटिन साहित्य का गहन अध्ययन कर और अनेक बार विश्व-भ्रमण कर इतिहास के प्रति अपने दृष्टिकोण को परिपक्व एवं व्यापक बनाया था.

दोनों विश्व-युद्धों के दौरान वह इंग्लैंड के विदेश विभाग में कार्यरत रहा. वह 1925 से 1955 तक 'रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंटरनेशनल स्टडीज़ का निर्देशक तथा यूनिवर्सिटी ऑफ़ लन्दन में इंटरनेशनल हिस्ट्री का रिसर्च प्रोफ़ेसर रहा. बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति ने 'ग्लोबल विलेज' (भारतीय दर्शन में जिसे हम

वसुधैव कुटुम्बकम कहते हैं) की अवधारणा प्रबल होने लगी थी. 1893 में विवेकानंद के शिकागो के धर्म-सम्मेलन में दिए गए भाषण के बाद तो अनेक पाश्चात्य विचारक भी विश्व के समस्त राष्ट्रों को मिलजुल कर रहते हुए देखना चाहते थे. महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, आइन्स्टाइन जैसे विश्व-मानव भी शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना के पोषक थे. टॉयनबी का दृष्टिकोण भी यही था. वह विश्व-भ्रातृत्व की भावना से ओत-प्रोत था और सार्व-भौमिक राज्य की स्थापना का स्वप्न देखता था.

एक इतिहासकार के रूप में सार्वभौमिक इतिहास लिखने में उसकी अभिरुचि थी. टॉयनबी की इतिहास-लेखन में गहरी अभिरुचि थी. उसको लगता था कि दुनिया में इतिहास के धरातल पर बहुत काम होना बाक़ी है. अपने समय में टॉयनबी की गणना विश्व के सबसे चर्चित विद्वानों में की जाती थी. उसकी रचनाओं के पाठकों की संख्या अत्यधिक थी. अनेक भाषाओँ में उसकी रचनाओं के अनुवाद हुए थे. उसकी 10 खण्डों में प्रकाशित पुस्तक - 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' कार्ल मार्क्स की पुस्तक 'कैपिटल' के बाद की सबसे लोकप्रिय रचना मानी जाती है.

8.3.2 आदि काल से लेकर टॉयनबी से पूर्व तक 'युग-चक्रीय' अवधारणा

भारतीय अवधारणा के अनुसार इतिहास एक निरंतर चलायमान युग-चक्र है. मानव-जीवन, उसका सुख-दुःख, उसका उत्थान-पतन आदि सब इसी चक्र द्वारा नियंत्रित होते हैं. सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग ये चार युग हैं. इतिहास चक्रीय है. चूंकि हम बार-बार जन्म लेते हैं अतः हमको बार-बार यह अवसर मिलता है कि हम ख़ुद को सही कर सकें, अर्थात हम स्वयं का ब्रह्मांडीय चेतना के साथ एकाकार कर सकें. इतिहास का चक्र घूमता रहता है, कभी इसमें उत्थान होता है तो कभी पतन होता है किन्तु इतिहास में कुछ भी अंतिम नहीं है. भारतीय इतिहास दर्शन में समय के चक्र और धर्म के क्षेत्र में होने वाले निरंतर विकास के साथ इतिहास का स्वरुप भी बदलता रहता है. सत तथा असत दोनों ही, इस इतिहास-चक्र में बार-बार आते हैं.

इतिहास के चक्रीय सिद्धांत का पोषक अरब इतिहासकार इब्न खल्दून का विचार है कि जब कोई समाज एक महान सभ्यता के रूप में विकसित हो जाता है तो अपने चरमोत्कर्ष के बाद उसके पतन का काल प्रारंभ हो जाता है. इसका अर्थ यह हुआ कि एक विकसित सभ्यता को पराजित करने वाला समाज, पराजित समाज की तुलना में असभ्य होता है. फिर विजयी समाज भी असभ्य से सभ्य होने के मार्ग पर अग्रसर होता है और अंततः विकास के चरमोत्कर्ष के बाद उसका भी पतन हो जाता है. इब्न खलदून ने इतिहास को मानव-समाज, विश्व-संस्कृति, सामाजिक परिवर्तन, संघर्ष, क्रान्ति तथा विद्रोह के फलस्वरूप राज्यों के उत्थान एवं पतन का विवरण बताता है. वह इतिहास को संस्कृति का विज्ञान मानता है.

स्पेंगलर विश्व इतिहास को महान संस्कृतियों का एक नाटक मानता है. इस नाटक में प्रत्येक संस्कृति स्वयमेव पल्लवित होती है. प्रत्येक संस्कृति एक जैव इकाई के समान है जिसके कि विभिन्न जीवन-चक्र होते हैं. प्रत्येक संस्कृति

का अपना बचपन, जवानी और बुढ़ापा होता है और एक समय ऐसा भी आता है जब कि उस संस्कृति की मृत्यु हो जाती है, अर्थात् वह पूरी तरह नष्ट हो जाती है. प्रत्येक संस्कृति आरम्भ में बर्बरता के दौर से गुज़रती है और कालान्तर में विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं, कला, विज्ञान आदि का विकास होता है. अपने अंतिम दौर में संस्कृति विकृत होकर अपनी सृजनशीलता को खोकर पतन की ओर अग्रसर होती है जिसमें सर्वत्र विकृतियां दिखाई देने लगती हैं और संस्कृति की सृजनशीलता समाप्त हो जाती है. अन्ततः संस्कृति नष्ट हो जाती है. वह संस्कृतियों को जैविक मानते हुए विश्व इतिहास को उनकी सामूहिक जीवनियां मानता है. संस्कृतियों के जीवन में वसन्त, ग्रीष्म, पतझड़ और शीत ऋतु आते हैं.

8.3.3 सभ्यताओं के अध्ययन में टॉयनबी की अभिरुचि

टॉयनबी की इतिहास-लेखन में गहरी अभिरुचि थी. उसको लगता था कि दुनिया में इतिहास के धरातल पर बहुत काम होना बाक़ी है.टॉयनबी की पहले इतिहास की प्रतीयमान पुनरावृत्ति के प्रतिमानों में अभिरुचि थी और बाद में उसकी रूचि सभ्यताओं की उत्पत्ति में हो गई थी. सभ्यताओं की उत्पत्ति में रूचि के कारण ही उसने स्पेंगलर के ग्रन्थ 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वेस्ट'' का गहन अध्ययन किया था. स्पेंगलर तथा टॉयनबी, दोनों ने ही सभ्यताओं के उत्थान, पुष्पण तथा पतन का वर्णन किया है किन्तु दोनों के ग्रंथों की दिशाएँ भिन्न-भिन्न हैं.

8.3.4 टॉयनबी तथा स्पेंगलर के सभ्यता विषयक विचार

टॉयनबी, स्पेंगलर के इस विचार से सहमत है कि बीसवीं शताब्दी की यूरोपीय सभ्यता तथा प्राचीन ग्रीको-रोमन सभ्यता में बहुत कुछ समानताएं हैं. किन्तु स्पेंगलर की तुलना में वह अपना दृष्टिकोण अधिक वैज्ञानिक तथा आनुभविक मानता है. वह स्वयं को मेटा-हिस्टोरियन (दार्शनिक इतिहासकार) कहता है जिसका कि अध्ययन का क्षेत्र सभ्यता है.टॉयनबी के ऐतिहासिक दृष्टिकोण को तुलनात्मक इतिहास की श्रेणी में रखा जाता हैउसके दृष्टिकोण पर . हेरोडोटस तथा थ्यूसीडाइड्स के दृष्टिकोणों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है .

टॉयनबी ने 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में स्पेंगलर के ग्रंथ 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में प्रतिपादित चक्रीय सिद्धान्त का अनुकरण किया है किन्तु उसे उसका प्राचीन यान्त्रिक नियतिवाद का आदर्श स्वीकार्य नहीं है. टॉयनबी ने अनुभवाश्रित एवं प्रेरक आदर्श का चयन किया है. इस कार्य-प्रणाली में 26 सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है क्योंकि टॉयनबी यह मानता है कि ऐतिहासिक अध्ययन की सुबोधगम्य इकाइयां राष्ट्र अथवा काल नहीं बल्कि समाज अथवा सभ्यताएं हैं. टॉयनबी की इतिहास रूपी पहेली की प्रमुख कुंजी अपने द्वारा प्रतिपादित 'चुनौती और प्रतिक्रिया' की परिकल्पना है. टॉयनबी ने चुनौती और प्रतिक्रिया की परिकल्पना द्वारा विभिन्न सभ्यताओं के जन्म, विकास, विघटन और पतन के चक्र को समझने का प्रयास किया है. टॉयनबी का यह मानना है कि किसी सभ्यता का विकास तब होता है जबकि उसके समक्ष आई हुई चुनौती का उसके द्वारा दिया गया जवाब न केवल सफल हो अपितु आगे अधिक कठिन चुनौती का मुकाबला करने के लिए उसके नागरिक तत्पर हों.

8.3.5 टॉयनबी द्वारा सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन को एक आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में देखना

टॉयनबी सभ्यताओं के विकास और उनके पतन को एक आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में देखता है. टॉयनबी पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है. टॉयनबी की शोध प्रविधि अनुभववादी है. उसका यह दावा है कि हम अतीत के अनुभव के आधार पर भविष्य के विषय में अनुमान लगा सकते हैं.

टॉयनबी ने विभिन्न सभ्यताओं के आध्यात्मिक पक्ष पर विशेष बल दिया है और राष्ट्र, उद्योग, भौतिक उन्नति तथा मनुष्य की बौद्धिक शक्ति के विकास की उपेक्षा की है. एच. ई. ब्रान्स तथा पीटर गेल, टॉयनबी के विचारों में एक धर्मदूत की मानसिकता के दर्शन करते हैं. टेलर ने टॉयनबी की नियतिवाद में आस्था की आलोचना की है. टायनबी ने 26 सभ्यताओं का चयन किसी वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर नहीं किया है अपितु अपनी सुविधानुसार किया है. टॉयनबी ने मुख्यतः यूनानी सभ्यता का गहन करके अपना अनुभववादी सिद्धान्त विकसित किया है और फिर इस सिद्धान्त को उसने अन्य सभ्यताओं पर लागू किया है.

8.3.6 इतिहास-लेखन में टॉयनबी का विश्व-व्यापी दृष्टिकोण

समस्त विश्व का एकीकरण, विश्व के समस्त धर्मों का समन्वय तथा आर्थिक, सामाजिक असमानताओं का उन्मूलन, टॉयनबी के इतिहास-दर्शन की विशेषताएँ हैं. टॉयनबी ने राष्ट्रीयता की संकुचित भावना से प्रेरित होकर समाज पर और उसकी इकाई – मनुष्य पर, राज्य की निरंकुश प्रभुसत्ता का विरोध किया है. टॉयनबी के समय तक राष्ट्रीय राज्य की भावना के स्थान पर राज्य-संघ की अवधारणा का विकास हो चुका था. 'लीग ऑफ़ नेशंस' की स्थापना इस विचार को साकार रूप देने का एक प्रयास था. अब 'राष्ट्रवाद' के स्थान पर 'महाद्वीपीयवाद' और फिर उस से भी ऊपर 'विश्ववाद' की अवधारणा का विकास हो चुका था. टॉयनबी को यह श्रेय दिया जाता है कि उसने यूरोप-केन्द्रित इतिहास लेखन की परम्परा पर सबसे गहरी चोट की थी. टॉयनबी ने अपने इतिहास-दर्शन का आधार राष्ट्र को नहीं, अपितु सभ्यता को माना. वह कहता है –

'सभ्यता से मेरा अभिप्राय ऐतिहासिक अध्ययन का वह लघुतम भाग है जिस पर, अपने देश का इतिहास समझते समय मनुष्य की दृष्टि पड़ती है.'टॉयनबी द्वारा सभ्यताओं के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से हम अपनी संकुचित एवं संकीर्ण मानसिकता का परित्याग कर अपनी सभ्यता के अतिरिक्त दूसरी सभ्यताओं के इतिहास के प्रति अभिरुचि और सम्मान की भावना जागृत कर सकते हैं और सम्पूर्ण मानव-जाति के विकास की गाथा समझने की क्षमता का विकास कर सकते हैं.

संकीर्ण पश्चिम-मुखी इतिहास के स्थान पर वास्तव में सार्वभौमिक इतिहास की रचना द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात अविकसित क्षेत्र के देशों के उत्थान के सन्दर्भ में और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है. उसने विभिन्न समाजों के उद्गम, विकास और पतन का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति से किया है. आज हम इतिहास को कला और विज्ञान दोनों के सम्मिलन के रूप में जानते हैं और इस निष्कर्ष तक पहुंचने में टॉयनबी के दृष्टिकोण ने हमारी सहायता की है. टॉयनबी ने इतिहास को एक नई दृष्टि दी है. 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' आधुनिक ऐतिहासिक शोध की अति विशिष्टता की प्रवृत्ति को सन्तुलित करने में सफल सिद्ध हुई है. अमेरिकी राजनीतिक विचारक हैन्स मार्जेन्थ्यू ने टॉयनबी को महान दार्शनिक मानते हुए उसकी उपलब्धियों को कालजयी बताया है.

8.3.7 सभ्यताओं के इतिहास में पाश्चात्य सभ्यता को ही केंद्र-बिंदु बनाए जाने की मानसिकता का विरोध

टॉयनबी मानव-इतिहास और मानव-अस्तित्व के सन्दर्भ में सभ्यताओं को अपेक्षाकृत हाल ही में हुई घटना मानता है. टॉयनबी पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है. वह मिस्र, बेबीलोनिया तथा मिनोन सभ्यताओं को मृत सभ्यताएं, पोलीनीसियन, एस्किमो, नामाड, स्पार्तन तथा ओसमानली सभ्यताओं को अवरुद्ध (जिनका विकास रुक गया हो) सभ्यताएं तथा आधुनिक पाश्चात्य ईसाई समाज, कट्टरपंथी ईसाई समाज (इसमें रूस तथा दक्षिण-पूर्वी यूरोप के देश सम्मिलित हैं), मुस्लिम, हिन्दू तथा सुदूर पूर्व (इसमें जापान, कोरिया व चीन सम्मिलित हैं) की सभ्यताओं को वर्तमान काल में भी जीवित सभ्यताएं मानता है.

8.3.8 टॉयनबी द्वारा भारतीय संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता की प्रशंसा

दो विश्व-युद्धों की विभीषिकाओं ने पाश्चात्य सभ्यता के भौतिकतावादी दृष्टिकोण तथा साम्राज्यवादी होड़ के खोखलेपन को उजागर कर दिया था. टॉयनबी को भारतीय सभ्यता और संस्कृति में निहित 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा को अपनाने में ही मानव-जाति का कल्याण दिखाई दे रहा था. भारतीय सभ्यता और संस्कृति के श्रेष्ठ तत्वों की प्रशंसा करते हुए वह कहता है -

'वृहद् साहित्य, अथाह धन-संपत्ति, भव्य विज्ञान, आत्मा को छू लेने वाला संगीत, विस्मयकारी देवतागण, यह पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि यदि मानव-जाति स्वयं अपना विनाश करने पर आमादा नहीं है तो उसने जिस अध्याय का प्रारंभ पाश्चात्य सभ्यता से किया है, उसका अंत उसे भारतीय सभ्यता से करना होगा.इतिहास की इस अत्यंत संकटपूर्ण घड़ी में मानव-जाति के मुक्ति का यदि कोई एक मात्र मार्ग है तो वह है – भारतीय मार्ग.'

8.3.9 सभ्यताओं का वर्गीकरण

टॉयनबी ने आधुनिक काल की सभ्यता को कुल 5 सभ्यताओं में बांटा है –

1. पश्चिमी यूरोप की सभ्यता (पश्चिमी क्रिस्तानी सभ्यता)
2. पूर्वी यूरोप की सभ्यता अथवा वाईज़ेन्ताइन सभ्यता (पूर्वी क्रिस्तानी सभ्यता)
3. इस्लामिक सभ्यता
4. भारतीय सभ्यता (हिन्दू सभ्यता)
5. सुदूर पूर्वी जगत की सभ्यता

उसने इनकी कुल 18 सभ्यताएँ बताईं और 3 के दो-दो उपभेद होने से उन्हें कुल 21 सभ्यताओं की गणना की है. इसके अतिरिक्त उसने 3 भग्न और 5 अवरुद्ध सभ्यताओं को मिलाकर कुल 29 सभ्यताओं का उल्लेख किया है किन्तु वह इनमें से केवल 26 सभ्यताओं को ही स्पष्ट कर सका है.

8.3.10 सभ्यताओं के पतन के कारण

सभ्यताओं के पतन के सबसे आम कारणों में आर्थिक, पर्यावरण-सम्बंधित, सामाजिक एवं सांस्कृतिक, प्राकृतिक विपदाएं (सूनामी, भूकंप, दावानल, जलवायु-परिवर्तन), जनसँख्या-विस्फोट, महामारी, संसाधनों का अप्रत्याशित ह्रास, सर्वहारा वर्ग का विद्रोह, जातीय हिंसा, वाह्य-आक्रमण (जैसे 5 वीं शताब्दी में बर्बरों के आक्रमण

और 7 वीं शताब्दी में अरब आक्रमण ने महान रोमन सभ्यता का विनाश कर दिया और ऑस्ट्रेलिया, उत्तरी अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका में यूरोपीय उपनिवेशियों स्थानीय सभ्यताओं का उन्मूलन कर दिया) आदि प्रमुख हैं.

टॉयनबी यह तर्क करता है कि सभ्यताओं का पतन पर्यावरण पर नियंत्रण हट जाने से नहीं होता और न जन-विद्रोहों से और न ही वाह्य-आक्रमणों से. उसकी दृष्टि में सभ्यताओं का तब अंत होता है जब समाज की समस्याओं और चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने की क्षमता समाप्त हो जाती है, और जब सृजनात्मक अल्प-संख्यक अपनी सत्ता के मद में चूर होकर मात्र प्रभुत्व-पूर्ण अल्प-संख्यक में परिवर्तित होकर सार्वभौमिक राज्य अथवा सार्वभौमिक चर्च की स्थापना कर लेते हैं. इसके बाद स्थानीय तथा वाह्य सर्वहारा वर्ग का विद्रोह होता है और सभ्यता का विनाश हो जाता है.

8.4. चुनौती और उसके प्रत्युत्तर का सिद्धांत

8.4.1 'चुनौती और उसके प्रत्युत्तर के सिद्धांत के' द्वारा सभ्यताओं के उत्थान और उनके पतन के चक्र को समझने का प्रयास

इतिहास के अध्ययन में टॉयनबी 26 सभ्यताओं के उत्थान और पतन की चर्चा करता है. अपने विश्लेषण में वह 'चैलेन्ज एंड रिस्पौंस' (चुनौती और उसका प्रत्युत्तर) सिद्धांत के अंतर्गत, सभ्यताओं के उत्थान और पतन को नैतिक तथा धार्मिक चुनौतियों का सफल अथवा असफल सामना करने से जोड़ता है. वह सभ्यताओं के समानांतर जीवन-चक्रों की वृद्धि तथा उनके विलोपन की चर्चा करता है. किसी सभ्यता के विलोपन को वह 'विपदा की घड़ी', 'सार्वभौमिक पतन की स्थिति' और अंततः 'सभ्यता का पतन' के रूप में दर्शाता है.

टॉयनबी की इतिहास रूपी पहेली की प्रमुख कुंजी अपने द्वारा प्रतिपादित 'चुनौती और उसका प्रत्युत्तर' की परिकल्पना है. उसने चुनौती और उसका प्रत्युत्तर की परिकल्पना द्वारा विभिन्न सभ्यताओं के जन्म, विकास, विघटन और पतन के चक्र को समझने का प्रयास किया है. सभ्यता की, एक इकाई के रूप में पहचान कर, वह प्रत्येक सभ्यता के इतिहास को चुनौती और उसका प्रत्युत्तर के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है. टॉयनबी ने 'चुनौती तथा उसका प्रत्युत्तर' की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए बताया है कि प्रत्येक सभ्यता के जीवन में चुनौतियाँ आती हैं. ये चुनौतियाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अथवा प्राकृतिक हो सकती हैं. इन चुनौतियों से समस्याएं खड़ी होती हैं और जहाँ उस सभ्यता के निवासी उस समस्या के समाधान का अथक प्रयास करते हैं उसे चुनौती का प्रत्युत्तर कहा जा सकता है. जब समस्या का समाधान हो जाता है तो सभ्यता प्रगति-मार्ग पर अग्रसर हो जाती है.

टॉयनबी की दृष्टि में - सभ्यताओं का तब उत्थान होता है जब सृजनशील अल्प-संख्यक कठिन से कठिन चुनौती का सामना करने के लिए ऐसे समाधानों की खोज कर लेते हैं जिनसे कि सम्पूर्ण समाज में नव-चेतना का संचार हो जाता है. अपने इस विचार की पुष्टि के लिए टॉयनबी भौतिक चुनौती के रूप में सुमेरियन सभ्यता का दृष्टान्त देता है. सुमेरिया के निवासियों के समक्ष दक्षिण ईराक का दुर्दमनीय दलदल उनके अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा खतरा था. सुमेरिया के नव-प्रस्तरयुगीन सृजनशील अल्प-संख्यकों ने वहां के निवासियों को संगठित कर विशाल सिंचाई योजनाओं को साकार किया और दलदल की समस्या का स्थायी समाधान किया. सामाजिक चुनौती के रूप में

टॉयनबी रोमन साम्राज्य के विघटन के कारण उत्पन्न अराजकता के संकट का निवारण करने के लिए कैथोलिक चर्च के योगदान का उल्लेख करता है जिसने कि जर्मन-जातीय राज्यों को धार्मिक समुदाय की एक इकाई के रूप में संगठित किया था.

टॉयनबी का यह मानना है कि किसी सभ्यता का विकास तब होता है जबकि उसके समक्ष आई हुई चुनौती (यह चुनौती भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक अथवा किसी अन्य प्रकार की भी हो सकती है) का उसके द्वारा दिया गया जवाब न केवल सफल हो अपितु आगे अधिक कठिन चुनौती का मुकाबला करने के लिए उसके नागरिक तत्पर हों. जब एक सभ्यता के नेता चुनौतियों का सृजनात्मक रूप से जवाब देने में असफल रहे तो राष्ट्रवाद, सैनिकवाद के उदय अथवा अल्प-संख्यक स्वेच्छाचारियों के अत्याचार के कारण उसका पतन हुआ. टॉयनबी सभ्यताओं के विकास और उनके पतन को एक आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में देखता है.

टॉयनबी की शोध प्रविधि अनुभववादी है. वह प्राचीन से प्राचीन युग के साथ स्वयं को सम्बद्ध करके उनमें हुई घटनाओं का प्रत्यक्ष अनुभव करता है. उस का यह दावा है कि हम अतीत के अनुभव के आधार पर भविष्य के विषय में अनुमान लगा सकते हैं.

8.4.2 सभ्यता के विघटन के कारण

टॉयनबी उन सभ्यताओं की सूची देता है जो कि या तो नष्ट हो गईं या फिर दूसरी सभ्यता में विलुप्त हो गईं.

वो प्रमुख सभ्यताएँ जो विनष्ट हो गईं

अक्कादी साम्राज्य की सभ्यता

हिट्टी साम्राज्य की सभ्यता

मेसीनिया (ग्रीस) के साम्राज्य की सभ्यता

नव-असीरियन साम्राज्य की सभ्यता

सिन्धु घाटी की सभ्यता

ख्मेर साम्राज्य की अंगकोर सभ्यता,

चीन के हैन और तथा टैंग राजवंश की सभ्यता

पाश्चात्य रोमन साम्राज्य की सभ्यता

महान माया साम्राज्य की सभ्यता

वो प्रमुख सभ्यताएँ जो कि दूसरी सभ्यताओं में समाहित हो गईं

अक्कादी साम्राज्य द्वारा सुमेर सभ्यता,

लीबियंस, असीरियंस, बैबीलोनियंस, ईरानी, यूनानियों तथा रोमनों द्वारा प्राचीन मिस्र की सभ्यता

हित्तियों द्वारा बैबीलोनियंस की सभ्यता

रोमन साम्राज्य द्वारा महान यूनानी सभ्यता

अरबों तथा तुर्कों द्वारा बाईज़ेन्ताइन के पूर्वी रोमन साम्राज्य की सभ्यता

टॉयनबी का यह मानना है कि कोई भी सभ्यता अपनी उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँचने के बाद विघटन की ओर अग्रसर होती है. यह विघटन की स्थिति तब आती है जब चुनौतियों का सफलतापूर्वक प्रत्युत्तर देने में सभ्यता असफल हो जाती है. इस असफलता के मुख्यतः तीन कारण हैं -

1. सृजनशील अल्प-संख्यकों रचनात्मकता का अभाव.
2. सर्वहारा बहु-संख्यकों द्वारा सृजनात्मक अल्प-संख्यकों का अनुकरण न करना.
3. सामाजिक एकता में कमी आने के कारण एकजुट होकर चुनौतियों का सामना करने की शक्ति का लुप्त हो जाना.

टॉयनबी का विश्वास है कि समाजों का विनाश प्राकृतिक कारणों से नहीं अपितु हत्या अथवा आत्मघात के कारण होता है और इसमें भी ज़्यादातर आत्मघात ही इसका कारण होता है.सभ्यताओं के पतन के सबसे आम कारणों में आर्थिक-जलवायु ,दावानल ,भूकंप ,सूनामी) प्राकृतिक विपदाएं ,सामाजिक एवं सांस्कृतिक ,सम्बंधित-पर्यावरण , ,(परिवर्तनजनसँख्याजा ,सर्वहारा वर्ग का विद्रोह ,संसाधनों का अप्रत्याशित ह्रास ,महामारी ,विस्फोट-तीय हिंसा , वीं शताब्दी में अरब आक्रमण ने महान रोमन 7 वीं शताब्दी में बर्बरों के आक्रमण और 5 जैसे) आक्रमण-वाह्य उत्तरी अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका में यूरोपीय उपनिवेशियों ,सभ्यता का विनाश कर दिया और ऑस्ट्रेलिया आदि प्रमु (स्थानीय सभ्यताओं का उन्मूलन कर दियाख हैं .

टॉयनबी यह तर्क करता है कि सभ्यताओं का पतन पर्यावरण पर नियंत्रण हट जाने से नहीं होता और न जन-विद्रोहों से और न ही वाह्य-आक्रमणों से. उसकी दृष्टि में सभ्यताओं का तब अंत होता है जब समाज की समस्याओं और चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने की क्षमता समाप्त हो जाती है, और जब सृजनात्मक अल्प-संख्यक अपनी सत्ता के मद में चूर होकर मात्र प्रभुत्व-पूर्ण अल्प-संख्यक में परिवर्तित होकर सार्वभौमिक राज्य अथवा सार्वभौमिक चर्च की स्थापना कर लेते हैं. इसके बाद स्थानीय तथा वाह्य सर्वहारा वर्ग का विद्रोह होता है और सभ्यता का विनाश हो जाता है.

टॉयनबी भौतिक विकास को सभ्यता का विकास नहीं अपितु उसके पतनोन्मुख होने का संकेत मानता है. टॉयनबी के अनुसार सभ्यता का विघटन न तो उसके एक भू-क्षेत्र तक सीमित होने के कारण होता है और न ही नैसर्गिक विपत्तियों (बाढ़, अनावृष्टि, अकाल, भूकंप आदि) के कारण. सबयता का विघटन तो मनुष्यों की आत्मघाती प्रवृत्ति के कारण होता है. वह मानता है कि मनुष्यों की क्रियात्मक-सृजनात्मक शक्ति का ह्रास ही सभ्यता के विघटन का मूल कारण है.

टॉयनबी सभ्यता के विघटन के दौर में समाज को तीन भागों - सत्ताधारी अल्प-संख्यक, आतंरिक सर्वहारा वर्ग तथा वाह्य सर्वहारा वर्ग में विभाजित होते हुए देखता है. जहाँ स्पेंगलर यह मानता है कि विघटन के बाद सभ्यता का विनाश हो जाता है, वहां टॉयनबी विघटन के बाद भी सभ्यता का विनाश आवश्यक नहीं मानता है. अगर सभ्यता के विघटन की चुनौतियों को उसके निवासी स्वीकार कर उसका उचित जवाब देते हैं तो सभ्यता पुनः प्रगति पथ पर

अग्रसर हो जाती है.टॉयनबी सभ्यता तथा धर्म में प्रगाढ़ सम्बन्ध देखता है. वह धर्म को रथ और सभ्यता को उस रथ के पहिए मानता है. इस धर्म रूपी रथ के सभ्यता रूपी पहिए घूमते हैं और समय की गति के साथ सभ्यता का विकास अथवा उसका पतन होता है. सभ्यता के उत्थान और पतन के विषय में टॉयनबी सभी सभ्यताओं के लिए एक ही विचार रखता है.

8.5 टॉयनबी का युग-चक्रीय सिद्धांत

टॉयनबी ने 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में स्पेंगलर के ग्रंथ 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में प्रतिपादित चक्रीय सिद्धान्त का अनुकरण किया है किन्तु उसे उसका प्राचीन यान्त्रिक नियतिवाद का आदर्श स्वीकार्य नहीं है. टॉयनबी ने ब्रिटिश परम्परा के अनुभवाश्रित एवं प्रेरक आदर्श का चयन किया है. इस कार्य-प्रणाली में 26 सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है क्योंकि वह यह मानता है कि ऐतिहासिक अध्ययन की सुबोधगम्य इकाइयां राष्ट्र अथवा काल नहीं बल्कि समाज अथवा सभ्यताएं हैं.

8.6. टॉयनबी की रचनाएं

टॉयनबी की रचनाएं हैं –

'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री',

'सिविलाइज़शन ऑन ट्रायल',

'दि वर्ड एण्ड दि वैस्ट',

'क्रिश्चियैनिटी अमन्ग दि रिलीजन्स ऑफ़ दि वर्ड'',नैशनैलिटी एण्ड वार',

'ए हिस्टोरियन्स व्यू ऑफ़ रिलीजन',

'ग्रीक हिस्टोरिकल थॉट',

'ईस्ट टु वैस्टः ए जर्नी राउण्ड दि वर्ड', 'हेलेनिज़्म',

'ए हिस्ट्री ऑफ़ सिविलाइज़ेशन',

'आटोबायग्राफ़ी',

'सर्वे ऑफ़ इण्टर-नेशनल अफ़ेयर्स'(वार्षिक पत्रिका जिसकी कि अन्तिम कड़ी 'मैनकाइन्ड एण्ड दि मदर अर्थ' है।) आदि.

8.7 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री'

8.7.1 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' की विषय-वस्तु

'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' (1934 से 1961) अपने समय के सबसे लोकप्रिय इतिहास-ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है. इस ग्रन्थ को 'हिस्ट्री ऑफ़ दि वर्ड' के नाम से भी जाना जाता है.बुल्गारिया के किसानों को जब टॉयनबी ने लोमड़ी की खाल से बनी टोपियाँ पहने देखा तो उसे उनमें इतिहासकार हेरोडोटस द्वारा वर्णित ज़ेरज़ेस के सैनिकों के शिरस्त्राणों से समानता लगी. इस घटना से टॉयनबी यह बोध हुआ कि इतिहास में एक निरंतरता है और इसी बोध के साथ उसने 1922 में अपने महत्वकांक्षी ग्रन्थ 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' को लिखना प्रारंभ किया. अपने ग्रन्थ में वह

सभ्यताओं के पतन का कारण - उसके सृजनशील नेताओं (शासक, नायक) की सृजनात्मकता का समाप्त होना (अथवा सृजनात्मकता से मुंह मोड़ लेना) तथा राष्ट्रवाद, सैनिकवाद और अल्प-संख्यक निरंकुशों का अत्याचार बताता है.

स्पेंगलर अपने ग्रन्थ - 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वेस्ट' में सभ्यता की मृत्यु को अवश्यम्भावी बताता है किन्तु टॉयनबी इसके विपरीत यह मानता है कि सभ्यता का अंत अवश्यम्भावी नहीं है.सभ्यता एक के बाद एक आने वाली चुनौतियों का जवाब दे भी सकती है और नहीं भी दे सकती है. कार्ल मार्क्स ने इतिहास को आर्थिक बलों द्वारा रूप-आकार दिए जाने की बात की थी किन्तु टॉयनबी यह मानता है कि इतिहास को रूप-आकार आत्मिक बल देते हैं.
'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में इतिहास की प्रकृति, इतिहास के अर्थ तथा ऐतिहासिक परिवर्तन के कारण व उसकी महत्ता का अध्ययन किया गया है. '1914 (प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने का वर्ष) के बाद सभ्यता पर संकट छा गया है'', टॉयनबी की इस अनुभूति ने उसे सभ्यता के उद्गम और विकास की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया. क्यों किंचित सभ्यताएं विकसित होती हैं जब कि वैसी ही लाभदायी परिस्थितियों के बावजूद अन्य किंचित सभ्यताओं का पतन हो जाता है?

टॉयनबी के ग्रंथ का विशिष्ट विषय संस्कृतियों के उद्गम, विकास और विघटन कादार्शनिक अन्वेषण है. इस अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रन्थ ने चक्रीय विकास एवं सभ्यताओं के पतन के विश्लेषण पर आधारित इतिहास-दर्शन प्रस्तुत किया. इस ग्रंथ ने ओसवाल्ड स्पेंगलर के पृथक एवं स्वतन्त्र सभ्यताओं के दृष्टिकोण के विरुद्ध सांस्कृतिक विलयनीकरण पर अत्यधिक महत्व दिया है और इसने ऐतिहासिक सिद्धान्त को अत्यधिक प्रभावित किया है.

8.7.2 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' द्वारा सभ्यताओं के अध्ययन की एक नई प्रणाली का विकास

टॉयनबी यह मानता है कि सभ्यताओं को अनुशासित अध्ययन के माध्यम से नहीं समझा जा सकता. वह अपने अध्ययन में अनुभव को अत्यधिक महत्त्व देता है और अपनी बात कहने के लिए वह मनोविज्ञान तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों की पद्धतियों का उपयोग करता है.जहाँ स्पेंगलर यह मानता है कि प्रत्येक सभ्यता अलग-अलग विकसित होती है और तदन्तर उसका अंत हो जाता है, वहीं टॉयनबी सभ्यताओं में आपसी आदान-प्रदान का उल्लेख करता है. वह यह मानता है कि कोई भी सभ्यता अन्य सभ्यताओं से पूरी तरह अलग-थलग रहकर विकसित नहीं हो सकती. सभ्यताओं के सन्दर्भ में उसका विचार है कि किसी एक निश्चित समय में, सभी सभ्यताओं के अनेक पहलुओं में, समानांतर विकास होता है.

टॉयनबी ने इस विषय में 431 ईसा पूर्व में थ्यूसीडाईडस द्वारा लिखित 'हिस्ट्री ऑफ़ पेलोपोनीशियन वॉर' का उल्लेख किया था. थ्यूसीडाईडस ने अपने इस ग्रन्थ में हेलेनिक समाज के विघटन का जिस प्रकार से चित्रण किया था, टॉयनबी को वैसा ही सामाजिक विघटन प्रथम विश्व युद्ध के समय दिखाई दिया था. इस साम्य ने टॉयनबी को वर्तमान

सभ्यता को समझने के लिए प्राचीन सभ्यताओं का अध्ययन करने की प्रेरणा दी. टॉयनबी ने यूनानी-रोमन सभ्यताओं का अध्ययन किया तथा उनके इतिहास को, सभ्यताओं के तुलनात्मक इतिहास के प्रतिमान के रूप में स्थापित किया.

8.8 एक इतिहास-दार्शनिक के रूप में टॉयनबी का आकलन

8.8.1 विद्वानों द्वारा 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' का आकलन

अनेक विद्वानों द्वारा 'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' को इतिहास के विश्वकोश और बीसवीं शताब्दी के महानतम ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में मान्यता दी गई है. 1947 में 'टॉयनबी पर 'टाइम्स मैगज़ीन' में प्रकाशित एक लेख में 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' को इंग्लैण्ड में कार्ल मार्क्स की पुस्तक 'कैपिटल' के बाद ऐतिहासिक सिद्धान्त पर रचित सबसे उत्तेजनात्मक ग्रंथ बताया गया था. बीसवीं शताब्दी के पाँचवें तथा छठे दशक में टॉयनबी सम्भवतः सबसे अधिक पढ़ा जाने वाला तथा सबसे चर्चित विद्वान रहा है.

अर्न्स्ट रोबर्ट कर्टियस ने अपने ग्रन्थ - 'यूरोपियन लिटरेचर एंड दि लैटिन अमेरिकन एजेज़' में लिखा है – 'किस प्रकार संस्कृतियों और उनके माध्यम की भूमिका निभाने वाले व्यक्तित्वों का उदय, उत्थान और पतन होता है? इसका उत्तर तो तुलनात्मक आकृति-विज्ञान के शोध की उचित प्रणाली को अपनाकर ही प्राप्त किया जा सकता है. और यह अर्नाल्ड जे. टॉयनबी था जिसने कि इन प्रश्नों का उत्तर देने का दायित्व संभाला था.'

8.8.2 आज के युग में टॉयनबी के इतिहास-दर्शन की प्रासंगिकता

टॉयनबी के लेखन में धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण की परम-व्याप्ति के कारण 1960 के बाद उसकी लोकप्रियता में अप्रत्याशित कमी आई और आज उसकी रचनाएं विवादास्पद मानी जाती हैं. उसके आलोचकों ने उसके अनुभववादी सिद्धान्त की विश्वसनीयता पर सन्देह व्यक्त किया है. टॉयनबी ने विभिन्न सभ्यताओं के आध्यात्मिक पक्ष पर विशेष बल दिया है और राष्ट्र, उद्योग, भौतिक उन्नति तथा मनुष्य की बौद्धिक शक्ति के विकास की उपेक्षा की है. एच. ई. ब्रान्स ने टॉयनबी के ग्रंथ को ऐतिहासिक ग्रंथ के स्थान पर ईश-स्तुति का ग्रंथ माना है. टॉयनबी का कटु आलोचक पीटर गेल उसे धर्मदूत कहकर उसका उपहास उड़ाता है. गेल का मानना है कि इतिहास में अनन्त जटिलताएं हैं और ऐतिहासिक घटनाएं इतनी जल्दी-जल्दी बदलती हैं कि सार्वभौमिक इतिहास को किसी निश्चित प्रणाली के अन्तर्गत बांधने से निराशा ही हमारे हाथ लगती है इसलिए वह टॉयनबी द्वारा अपने सभी तर्कों तक केवल अनुभवात्मक पद्धति द्वारा पहुँचने के दावे को खोखला बताता है. टेलर ने टॉयनबी की नियतिवाद में आस्था की आलोचना की है. सभ्यताओं विकास में मनुष्य की अपनी स्वतन्त्र एवं महत्वपूर्ण भूमिका होती है किन्तु टॉयनबी इस सत्य को सर्वथा नकार देता है. टॉयनबी ने 26 सभ्यताओं का चयन किसी वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर नहीं किया है अपितु अपनी सुविधानुसार किया है.

टॉयनबी ने मुख्यतः यूनानी सभ्यता का गहन करके अपना अनुभववादी सिद्धान्त विकसित किया है और फिर इस सिद्धान्त को उसने अन्य सभ्यताओं पर लागू किया है. सभ्यता के जन्म, उत्थान, विकास और विनाश विषयक टॉयनबी की अवधारणा की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाए जाने स्वाभाविक हैं. किसी भी सभ्यता में यदि परिवर्तन आते हैं

तो टॉयनबी उसे मृत मान लेता है और एक नई सभ्यता के जन्म की घोषणा कर देता है. वास्तव में सभ्यताएं कभी पूरी तरह से विनष्ट नहीं होतीं और वो आगामी समय की सभ्यताओं के लिए विरासत में बहुत कुछ छोड़ जाती हैं.

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1.भारतीय युग चक्रवादी सिद्धान्त

2.स्पेंगलर से टॉयनबी का वैचारिक मतभेद

3. टॉयनबी का वैश्विक दृष्टिकोण

8.9 सारांश

अर्नाल्ड जोज़फ़ टॉयनबी (1889-1975) ने ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर लन्दन विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में अध्यापन किया. टॉयनबी ने ग्रीक एवं लैटिन साहित्य का गहन अध्ययन कर और अनेक बार विश्व-भ्रमण कर इतिहास के प्रति अपने दृष्टिकोण को परिपक्व एवं व्यापक बनाया था.बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति ने 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा प्रबल होने लगी थी. टॉयनबी विश्व-भ्रातृत्व की भावना से ओत-प्रोत था और सार्व-भौमिक राज्य की स्थापना का स्वप्न देखता था.

एक इतिहासकार के रूप में सार्वभौमिक इतिहास लिखने में उसकी अभिरुचि थी. अपने समय में टॉयनबी की गणना विश्व के सबसे चर्चित विद्वानों में की जाती थी. उसकी 10 खण्डों में प्रकाशित पुस्तक - 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' कार्ल मार्क्स की पुस्तक 'कैपिटल' के बाद की सबसे लोकप्रिय रचना मानी जाती है.भारतीय अवधारणा के अनुसार इतिहास एक निरंतर चलायमान युग-चक्र है. मानव-जीवन, उसका सुख-दुःख, उसका उत्थान-पतन आदि सब इसी चक्र द्वारा नियंत्रित होते हैं. सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग ये चार युग हैं.

इतिहास के चक्रीय सिद्धांत का पोषक अरब इतिहासकार इब्न खल्दून का विचार है कि जब कोई समाज एक महान सभ्यता के रूप में विकसित हो जाता है तो अपने चरमोत्कर्ष के बाद उसके पतन का काल प्रारंभ हो जाता है.स्पेंगलर के अनुसार प्रत्येक संस्कृति एक जैव इकाई के समान है जिसके कि विभिन्न जीवन-चक्र होते हैं. प्रत्येक संस्कृति का अपना बचपन, जवानी और बुढ़ापा होता है और एक समय ऐसा भी आता है जब कि उस संस्कृति की मृत्यु हो जाती है.विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं से लेकर आधुनिक काल तक की सभी सभ्यताओं के अध्ययन में टॉयनबी की गहरी अभिरुचि थी.स्पेंगलर तथा टॉयनबी, दोनों ने ही सभ्यताओं के उत्थान, पुष्पण तथा पतन का वर्णन किया है किन्तु दोनों के ग्रंथों की दिशाएँ भिन्न-भिन्न हैं.

टॉयनबी के ऐतिहासिक दृष्टिकोण को तुलनात्मक इतिहास की श्रेणी में रखा जाता है. उसके दृष्टिकोण पर हेरोडोटस तथा थ्यूसीडाइड्स के दृष्टिकोणों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है.टॉयनबी ने 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' में

स्पेंगलर के ग्रंथ 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' में प्रतिपादित चक्रीय सिद्धान्त का अनुकरण किया है किन्तु उसे उसका प्राचीन यान्त्रिक नियतिवाद का आदर्श स्वीकार्य नहीं है. टॉयनबी ने अनुभवाश्रित एवं प्रेरक आदर्श का चयन किया है. इस कार्य-प्रणाली में 26 सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है. टॉयनबी ने मुख्यतः यूनानी सभ्यता का गहन करके अपना अनुभववादी सिद्धान्त विकसित किया है और फिर इस सिद्धान्त को उसने अन्य सभ्यताओं पर लागू किया है.

टॉयनबी की रचनाएं हैं – 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री', 'सिविलाइज़शन ऑन ट्रायल', 'दि वर्ड एण्ड दि वैस्ट', 'क्रिश्चियैनिटी अमन्ग दि रिलीजन्स ऑफ़ दि वर्ड'', नैशनैलिटी एण्ड वार', 'ए हिस्टोरियन्स व्यू ऑफ़ रिलीजन', 'ग्रीक हिस्टोरिकल थॉट', 'ईस्ट टु वैस्टः ए जर्नी राउण्ड दि वर्ड', 'हेलेनिज़्म', 'ए हिस्ट्री ऑफ़ सिविलाइज़ेशन', 'आटोबायग्राफ़ी'.टॉयनबी की इतिहास रूपी पहेली की प्रमुख कुंजी अपने द्वारा प्रतिपादित 'चुनौती और उसका प्रत्युत्तर' की परिकल्पना है. अपनी इसी पर्काल्पना से टॉयनबी ने विभिन्न सभ्यताओं के जन्म, विकास, विघटन और पतन के चक्र को समझने का प्रयास किया है.

टॉयनबी पाश्चात्य सभ्यता को ही एकमात्र सभ्यता मानने वालों से सहमत नहीं है. उसकी शोध प्रविधि अनुभववादी है. उसका यह दावा है कि हम अतीत के अनुभव के आधार पर भविष्य के विषय में अनुमान लगा सकते हैं.टॉयनबी ने विभिन्न सभ्यताओं के आध्यात्मिक पक्ष पर विशेष बल दिया है और राष्ट्र, उद्योग, भौतिक उन्नति तथा मनुष्य की बौद्धिक शक्ति के विकास की उपेक्षा की है. एच. ई. ब्रान्स तथा पीटर गेल, टॉयनबी के विचारों में एक धर्मदूत की मानसिकता के दर्शन करते हैं. टेलर ने टॉयनबी की नियतिवाद में आस्था की आलोचना की है. टायनबी ने 26 सभ्यताओं का चयन किसी वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर नहीं किया है अपितु अपनी सुविधानुसार किया है.टॉयनबी के अनुसार सभ्यताओं का पतन तब होता है जब समाज की समस्याओं और चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने की क्षमता समाप्त हो जाती है.

टॉयनबी सभ्यता तथा धर्म में प्रगाढ़ सम्बन्ध देखता है. वह धर्म को रथ और सभ्यता को उस रथ के पहिए मानता है. टॉयनबी को भारतीय सभ्यता और संस्कृति में निहित 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा को अपनाने में ही मानव-जाति का कल्याण दिखाई देता है. समस्त विश्व का एकीकरण, विश्व के समस्त धर्मों का समन्वय तथा आर्थिक, सामाजिक असमानताओं का उन्मूलन, टॉयनबी के इतिहास-दर्शन की विशेषताएँ हैं. टॉयनबी को यह श्रेय दिया जाता है कि उसने यूरोप-केन्द्रित इतिहास लेखन की परम्परा पर सबसे गहरी चोट की थी. आज हम इतिहास को कला और विज्ञान दोनों के सम्मिलन के रूप में जानते हैं और इस निष्कर्ष तक पहुंचने में टॉयनबी के दृष्टिकोण ने हमारी सहायता की है. टॉयनबी ने इतिहास को एक नई दृष्टि दी है. 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' आधुनिक ऐतिहासिक शोध की अति विशिष्टता की प्रवृत्ति को सन्तुलित करने में सफल सिद्ध हुई है.

8.10 पारिभाषिक शब्दावली

ग्लोबल विलेज – समस्त संसार को एक ऐसे ग्राम के रूप में देखना जहाँ के लोग एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहते हैं.

पुनर्परीक्षण - फिर से जांच करना

'डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट' - पश्चिम (पाश्चात्य सभ्यता) का पतन

नियतिवाद - भाग्यवाद

'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' - इतिहास का अध्ययन

मेटा हिस्टोरियन – दार्शनिक इतिहासकार

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 8.3.2 आदि काल से लेकर टॉयनबी से पूर्व तक 'युग-चक्रीय' अवधारणा

2. देखिए 8.3.4 टॉयनबी तथा स्पेंगलर के सभ्यता विषयक विचार तथा 8.7.2 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' द्वारा सभ्यताओं के अध्ययन की एक नई प्रणाली का विकास

3. देखिए 8.3.6 इतिहास-लेखन में टॉयनबी का विश्व-व्यापी दृष्टिकोण

8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

टॉयनबी, अर्नाल्ड, जे. –' ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री, 12 खण्ड, लन्दन, 1946

टॉयनबी, अर्नाल्ड, जे. –' क्रिश्चियैनिटी अमन्ग दि रिलीजन्स ऑफ़ दि वर्ड, न्यूयॉर्क, 1956

श्रीधरन, ई. – ' ए टैक्स्ट बुक ऑफ़ हिस्टोरियोग्राफ़ी, नई दिल्ली, 2013

कार, ई. एच. - व्हाट इज़ हिस्ट्री, लन्दन, 1962

कालिंगवुड, आर. जी. - दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री, लन्दन, 1978

टाम्सन, जे. डब्लू. – 'ए हिस्ट्री ऑफ़ हिस्टोरिकल राइटिंग्स, न्यूयॉर्क, 1954

वर्मा, लालबहादुर - 'इतिहास के बारे में', इलाहाबाद, 2000

शर्मा, रामविलास - 'इतिहास दर्शन', नई दिल्ली, 1995

गेल, पी. –'टॉयनबी सिस्टम ऑफ़ सिविलाइज़ेशन'

('जर्नल ऑफ़ दि हिस्ट्री ऑफ़ आइडियाज़' भाग 8, अंक 1, 1948)

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. एक इतिहास-दार्शनिक के रूप में टॉयनबी का आकलन कीजिए.

इकाई नौ : इतिहास का दर्शन: जोहन गोटफ्राइड हर्डर

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 रूमानीवादी विचारधारा का प्रारंभिक विकास

9.3.1 रूमानीवाद के विकास से पूर्व का ऐतिहासिक चिंतन

9.3.2 रूमानीवाद के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

9.3.3 रूमानीवाद की व्याख्या

9.3.4 रूमानीवाद के प्रमुख लक्षण

9.4 रूमानीवाद का प्रसार

9.4.1 जीन जेकुअस रूसो

9.4.2 ब्रिटिश रूमानीवादी कवि

9.4.3 ब्रिटिश रूमानीवादी उपन्यासकार सर वाल्टर स्कॉट

9.4.4 दक्षिण अमेरिकी रूमानीवाद

9.4.5 विज्ञान और रूमानीवाद

9.4.6 इतिहास-लेखन में रूमानीवाद

9.4.7 रूमानी राष्ट्रवाद

9.4.8 जर्मनी में रूमानीवाद का विकास

9.5 जोहन गोटफ्राइड हर्डर

9.5.1 हर्डर का प्रारंभिक जीवन

9.5.2 हर्डर की विचारधारा पर समकालीन विद्वानों के विचारों का प्रभाव

9.5.3 हर्डर की रचनाएँ

9.5.4 हर्डर का इतिहास-दर्शन

9.5.5 हर्डर के जीवन के अंतिम दिन

9.5.6 रूमानीवादी विचारधारा का अवसान

9.5.7 एक इतिहासकार तथा दार्शनिक के रूप में हर्डर का आकलन

9.6 सारांश

9.7 पारिभाषिक शब्दावली

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.11 उपयोगी ग्रन्थ

9.1 प्रस्तावना

ज्ञानोदय काल के अधिकांश बुद्धिजीवी आस्था और विश्वास को भी बुद्धि की कसौटी पर परखने के पक्षधर थे किन्तु किंचित विचारकों ने भावना को बौद्धिकता से अधिक महत्ता प्रदान की. रूमानीवाद में मानव-जीवन को भावनाओं पर आधारित किया गया. विवेकवादी युग के संशयवाद, तर्कवाद तथा बुद्धिवाद को प्रत्येक क्षेत्र में आस्था, मनोभाव, कल्पना, रहस्य, भावना तथा रोमांस द्वारा चुनौती दी गयी. रूमानीवाद वह बौद्धिक दृष्टिकोण है जिसने 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर 19 वीं शताब्दी के मध्य तक पाश्चात्य जगत के संगीत, चित्रकला, स्थापत्यकला, साहित्य, आलोचनात्मक दृष्टिकोण और इतिहास-लेखन को प्रभावित किया.इस आन्दोलन के उत्कर्ष का काल 1800 -से .तक का था 1850

रूमानीवाद के प्रमुख लक्षणों में भावनाओं तथा व्यक्तिवाद को महत्ता दिए जाने के अतिरिक्त अतीत का तथा प्रकृति का महिमा-मंडन सम्मिलित हैं. रूमानीवाद को हम आंशिक रूप से आधुनिकीकरण के तत्वों - औद्योगिक क्रान्ति के अति-यांत्रिकीकरण एवं ज्ञानोदय काल के सामाजिक तथा राजनीतिक मूल्यों तथा प्रकृति की वैज्ञानिक व्याख्याओं से उपजी मानसिक कुंठा की अभिव्यक्ति के रूप में देख सकते हैं. जीन जेकुअस रूसो रूमानी आन्दोलन का मसीहा माना जाता है. रूसो ने प्रकृति की अवस्था का रूमानी चित्र प्रस्तुत किया.

रूमानी कवियों का यह विश्वास था कि इस भौतिक संसार से परे भी किसी अलौकिक शक्ति का अस्तित्व है जो कि मानव को अत्याचारी शासन का तख्ता पलटने की हिम्मत और प्रेरणा देती है तथा साहित्य के क्षेत्र में भी अनाचार के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित करती है. रूमानीवादियों में सर वाल्टर स्कॉट सम्मिलित है. वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों में मध्यकालीन इंग्लैंड तथा मध्यकालीन स्कॉटलैंड के इतिहास से सामग्री लेकर जीवन के विराट चित्र प्रस्तुत किये हैं. इन कथाओं में कल्पना तथा यथार्थ का सुन्दर सम्मिश्रण है.

रूमानी आन्दोलन ने बौद्धिक जीवन के लगभग प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया था. अनेक वैज्ञानिक अनुभववाद का परित्याग किए बिना ही 'नेचर फ़िलोसोफ़ी' के दर्शन से प्रभावित थे. इतिहास-लेखन पर रूमानीवाद का अत्यधिक प्रभाव पड़ा था. इंग्लैंड में प्रसिद्द निबंधकार तथा इतिहासकार थॉमस कार्लाइल ने 'हीरो-वर्शिप' (नायक-स्तुति) की अवधारणा का अपने इतिहास-ग्रंथों में विकास किया. 19 वीं शताब्दी के रूमानीवादी इतिहासकारों ने इतिहास-लेखन में वस्तुनिष्ठता के गुण का परित्याग कर अपने-अपने राष्ट्रों का इतिहास इस प्रकार लिखा कि उनके राष्ट्र के नायक तो महानायक लगें और उनके शत्रु महा-खलनायक. रूमानीवाद में राष्ट्रवाद को कला तथा राजनीतिक दर्शन का केंद्र बिंदु बनाया गया था. इसमें राष्ट्रीय भाषा, लोक कथाओं, स्थानीय रीति-रिवाज तथा स्थानीय परम्पराओं को महत्व दिया गया. प्रारंभिक रूमानीवादी राष्ट्रवाद के बीज रूसो ने बोए थे और हर्डर ने उसकी फ़सल तैयार की थी.

18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ में जर्मन-भाषी देशों में रूमानीवाद प्रमुख विचारधारा के रूप में उभरा और उसने सौंदर्यवाद, साहित्य तथा आलोचनात्मक दृष्टिकोण को प्रभावित किया. प्रारंभिक जर्मन रूमानीवाद के प्रमुख दार्शनिक तथा लेखक थे – विल्हेम हेनरिक वैकेनरोडर, फ्रेडरिक विल्हेम जोसेफ़ शीलिंग, फ्रेडरिक शीलीमाकर, कार्ल विल्हेम फ्रेडरिक श्लीगेल, औगस्ट विल्हेम श्लेगेल, लुडविक टाइक तथा फ्रेडरिक वोन हार्देनबर्ग. इन दार्शनिकों ने मध्य काल को समाकलित संस्कृति का सरल युग मानते हुए उसका अवलोकन करने के लिए कला, दर्शन तथा विज्ञान का संश्लेषण किया.

इतिहास-दर्शन तथा संस्कृति-दर्शन के प्रवर्तक, रूमानीवादी जोहन गोटफ्राइड हर्डर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना – 'आइडिया फ़ॉर ए फ़िलोसोफ़िकल हिस्ट्री ऑफ़ मैनकाइंड' है. हर्डर की गणना 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जर्मनी में हुए 'स्टर्म उंड ड्रेंग' साहित्यिक आन्दोलन के प्रमुख स्तंभों में की जाती है. हर्डर ने अपने समय के आलोचक-भविष्यवक्ता के रूप में आने वाली पीढ़ियों के बौद्धिक विकास को चित्रित किया. हर्डर ने प्रत्येक राष्ट्रीय संस्कृति को - अपने अन्तर्निहित लक्षण 'राष्ट्रीय चरित्र' के साथ एक जैविक इकाई माना जिसकी कि अभिव्यक्ति भाषा, साहित्य, कला और नैतिक-संहिता में होती है.

हर्डर ने इतिहास और प्रकृति में समन्वय स्थापित किया है. मानव-इतिहास और प्रकृति, दोनों में वैभिन्य होते हुए भी हर्डर इन दोनों की प्रक्रिया में एक प्रवाह देखता है.हर्डर यह मानता है कि आदि-मानव से चिंतनशील सभ्य मानव तक की विकास प्रक्रिया में जलवायु में हुए परिवर्तनों तथा भौगोलिक परिवर्तनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है. हर्डर का यह मानना है कि सभी जातियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं और सभी जातीय-व्यक्तित्व अपनी-अपनी विशिष्ट जीवन-प्रक्रिया में उम्र के विभिन्न पड़ावों (बचपन, जवानी, बुढ़ापा) से गुज़रते हुए अंततः मृत्यु को प्राप्त होते हैं. जीवन-प्रक्रिया के इन सभी पड़ावों में एकता का सूत्र बना रहता है. हर्डर को जर्मन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का जनक माना जाता है .हर्डर एक प्रतिष्ठित ब्रह्मज्ञानीविषयक सिद्धांत का -आलोचक तथा इतिहास-साहित्य ,प्राणिविज्ञान शास्त्री ,दार्शनिक , उसके विचारों ने अपने समय के बुद्धिजीवियों के चिंतन पर तथा अपने बाद की पीढ़ियों के .प्रतिपादक था चिंतकों के विचारों पर गहरी छाप छोडी है.

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको रूमानीवाद की उत्पत्ति, उसके विकास, उसके लक्षण, उसके गुण व दोष की जानकारी देना है और इतिहास-लेखन में रूमानीवादी विचारधारा के क्रमिक विकास से आपको परिचित करना है. रूमानीवादी इतिहासकार तथा इतिहास-दार्शनिक जे. जी. हर्डर की रचनाओं तथा उसके विचारों से आपको अवगत कराना इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है. इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- रूमानीवाद के विकास से पहले का ऐतिहासिक चिंतन तथा इतिहास-लेखन की परंपरा.
2. रूमानीवाद के प्रमुख लक्षण.
3- रूमानीवादियों द्वारा ज्ञानोदय काल की बौद्धिक विचारधारा का खंडन.
4. विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में रूमानीवादी विचारधारा का प्रसार
5. जर्मनी में रूमानीवाद का विकास
6. जे. जी. हर्डर के चिंतन पर अन्य विचारकों का प्रभाव.
7. हर्डर की प्रमुख रचनाएँ
8. हर्डर का इतिहास-दर्शन
9. इतिहास-लेखन में हर्डर का योगदान
10. रूमानीवाद के गुण तथा उसके दोष

9.3 रूमानीवादी विचारधारा का प्रारंभिक विकास

9.3.1 रूमानीवाद के विकास से पूर्व का ऐतिहासिक चिंतन

ज्ञानोदय काल के दार्शनिकों ने विगत काल, जैसे कि मध्य-युग को, अपरिष्कृत तथा असभ्य माना था और इसलिए उसे गंभीर ऐतिहासिक अन्वेषण के लिए अनुपयुक्त समझा था. इन दार्शनिकों ने मानव-प्रकृति को सार्वभौमिक तथा

अपरिवर्तनशील माना था. इन दार्शनिकों के अनुसार उपरोक्त दोनों अवधारणाओं का पोषण करते हुए ही ऐतिहासिक चिंतन के क्षेत्र में कोई प्रगति संभव थी.

9.3.2 रूमानीवाद के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

यद्यपि रूमानीवादी आन्दोलन की जड़ें जर्मन – 'स्त्रुम उंड द्रंग' आन्दोलन में थीं (इस आन्दोलन में अंतरानुभूति तथा भावनाओं को ज्ञानोदय के बुद्धिवाद की तुलना में वरीयता दी गयी थी) किन्तु इसके साथ ही फ़्रांसीसी क्रान्ति के दौरान हुई घटनाओं और उसमें प्रतिपादित व विकसित सिद्धांतों ने भी इस आन्दोलन को बल प्रदान किया था. रूमानीवाद में नायकों की वीरोचित उपलब्धियों तथा कलाकारों की उत्कृष्ट सृजनशीलता को अत्यधिक महत्त्व दिया गया था क्योंकि ऐसा समझा जाता था कि इनके वृतांतों से समाज को और उसमें रहने वाले व्यक्तियों को ख़ुद को ऊंचा उठाने की प्रेरणा प्राप्त होगी. रूमानीवाद ने कला के क्षेत्र में शास्त्रीय मापदंडों तथा आदर्शों की अवज्ञा करते हुए, व्यक्तिगत कल्पनाशीलता को अधिक महत्ता प्रदान की.

रूमानीवाद का प्रारंभिक काल युद्धों का काल था. पहले फ़्रांसीसी क्रान्ति में हज़ारों लोगों का रक्त बहा, फिर नेपोलियन के अनेक युद्धों ने यूरोप का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वरुप ही बदल दिया. इसी युद्ध की विभीषिका की पृष्ठभूमि में, बंदूकों और तोपों की गड़गड़ाहट के बीच, मरने वालों की आहों और घायलों की कराहों के मध्य, राजनीतिक विप्लव तथा आर्थिक विनाश के दौरान, रूमानीवादी विचारधारा का विकास हुआ. फ़्रांसीसी रूमानीवादी एल्फ्रेड दी विग्नी के शब्दों में – रूमानीवादी विचारों का विकास - युद्धों तथा ड्रम बजाने की आवाज़ के मध्य हुआ था,'

9.3.3 रूमानीवाद की व्याख्या

रूमानीवाद एक कलात्मक, साहित्यिक, संगीतात्मक तथा बौद्धिक आन्दोलन था जो कि यूरोप में 18 वीं शताब्दी के अंतिम चरण में विकसित हुआ था. यह प्रबल रूप से दृश्य-कलाओं, संगीत, तथा साहित्य में व्यक्त हुआ था किन्तु इसने इतिहास-लेखन, शिक्षा तथा मानविकी विज्ञान तथा प्राकृतिक विज्ञान की अनेक विधाओं पर अपनी गहरी छाप छोडी थी. रूमानीवाद ने राजनीतिक चिंतन को भी प्रभावित किया था. रूमानीवादी चिंतकों ने उदारवाद, अतिवाद, अनुदारवाद तथा राष्ट्रवाद को भी प्रभावित किया था.इस आन्दोलन में भावनाओं के तीव्र उद्वेग को सौन्दर्यानुभूति के प्रामाणिक स्रोत के रूप में स्थापित किया गया था और आशंका, भय, आतंक जैसी भावनाओं को प्रकृति के उत्कृष्ट सौन्दर्य का अनुभव करने में होने वाली बाधाओं में सम्मिलित किया गया था.

रूमानीवाद को हम आंशिक रूप से आधुनिकीकरण के तत्वों - औद्योगिक क्रान्ति के अति-यांत्रिकीकरण एवं ज्ञानोदय काल के सामाजिक तथा राजनीतिक मूल्यों तथा प्रकृति की वैज्ञानिक व्याख्याओं से उपजी मानसिक कुंठा की अभिव्यक्ति के रूप में देख सकते हैं. रूमानीवाद ने लोक-कला तथा प्राचीन रीति-रिवाज को महत्ता प्रदान की थी. इसने संगीत के क्षेत्र में बुद्धिवादियों तथा ज्ञानोदय के आचार्यों के विपरीत संगीत की शास्त्रीयता व शुद्धता से अधिक महत्त्व उसकी मधुरता तथा उससे होने वाले आनंद को दिया था. रूमानीवाद ने जनसँख्या-वृद्धि, औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप शहरों के भद्दे प्रसार और उद्योगवाद की विभीषिका से बचने के प्रयास में मध्यकाल की महत्ता को प्रतिष्ठित किया था.

9.3.4 रूमानीवाद के प्रमुख लक्षण

रूमानीवादी इतिहासकारों ने कल्पनाशीलता को महत्ता प्रदान की. उनके अभिगम काव्यात्मक, आदर्शात्मक तथा अतिरंजित होते थे. उनके लेखन की पृष्ठभूमि में धर्म होता था और उस में स्वप्न-चित्र तथा रहस्य का समावेश होता था.

18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के तथा 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ के विद्वानों ने रहस्यवाद को तथा मध्यकालीन सजीव आदर्शवाद अपनाया. उनके लेखन में सादगी तथा समरसता का अभाव था.

9.4 रूमानीवाद का प्रसार

9.4.1 जीन जेकुअस रूसो

जीन जेकुअस रूसो **.** एक युग प्रवर्तक (1778-1712) रूसो, रूमानी आन्दोलन का मसीहा माना जाता है. फ़्रांस में, विशेषकर रूसो के लेखन से, रूमानी इतिहास-लेखन का प्रारंभ हुआ. रूसो ने प्रकृति की अवस्था का रूमानी चित्र प्रस्तुत किया. वह अपने समय की उपज तो था किन्तु उसने सदैव अपने युग की मान्यताओं से, परम्पराओं से तथा मूल्यों से, अलग हटकर अपनी बात की थी. उसके स्वयं अपने विचारों में अंतर्विरोध था और विरोधाभास भी था, इसीलिए वह एक विवादास्पद दार्शनिक माना जाता है.

रूसो के समय की सबसे प्रतिष्ठित विचारधारा 'बुद्धिवाद' थी किन्तु रूसो ने बुद्धि से अधिक महत्त्व सहज मानवीय संवेदनाओं को दिया.उसके अमर युगांतरकारी ग्रन्थ - 'सोशल कॉन्ट्रैक्ट' (सामाजिक प्रसंविदा) में सामाजिक बंधन तथा राजनीतिक दासता को पूर्णतया अस्वीकार किया गया. किन्तु उसने व्यक्ति तथा समाज के अस्तित्व के लिए राज्य को आवश्यक माना. उसने आवश्यकता से अधिक व्यक्तिगत धन-संचय तथा आर्थिक असमानता को समाज के लिए कलंक ठहराया. उसके ये दोनों विचार यह भ्रम उत्पन्न कर सकते हैं कि वह साम्यवादी विचारधारा का पोषक था किन्तु ऐसा बिलकुल भी नहीं था.रूसो का दर्शन व्यक्तिवाद से होते हुए अंततः समष्टिवाद तक पहुँचता है. रूसो स्वतंत्रता का पुजारी था तथा लोकतंत्र का प्रबल समर्थक था किन्तु इतिहास की यह विडम्बना है कि 'आतंक का राज्य' (रेन ऑफ़ टेरर) का खलनायक, निरंकुशतावादी रोबेस्पीयर, ख़ुद को रूसो का अनुयायी मानता था.

रूसो की मुख्य रचनाएँ हैं –

1. 'डिस्कोर्स ऑन दि ऑरिजिन ऑफ़ इनइक्वेलिटी'
2. 'इकॉनमी पोलिटिक'
3. 'दि सोशल कॉन्ट्रैक्ट'
4. 'एमिली'

रूसो का निजी जीवन चारित्रिक दुर्बलताओं से भरा हुआ था किन्तु उसने अपने व्यक्तिगत दोषों के लिए समाज को दोषी ठहराया. वह मनुष्य-मात्र को नैसर्गिक रूप से नेक तथा निष्पाप मानता है. उसके भावुक हृदय को पेरिस की भौतिकतावादी संस्कृति रास नहीं आई, उसके कृत्रिम और प्रदर्शनतापूर्ण वातावरण में उसका दम घुंटता था. उसे आदिम-सभ्यता के सीधे-सरल और निष्पाप मानव-जीवन ने बहुत आकर्षित किया. आदिम काल में भाषा का विकास नहीं हुआ था और बौद्धिक विलासिता की दुरूहता से भी मानव प्रायः अनछुआ था. मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्तियों के अनुसार आचरण करता था, वह नैतिकता तथा अनैकिकता के विवाद से परे था. वह दुःख और सुख की अनुभूतियों से भी दूर था. अपने लेखन में उसने ऐसे ही सरल जीवन का चित्र प्रस्तुत किया. शिक्षित, सभ्य, आभिजात्य वर्ग के साथ उसका कभी भी सामंजस्य नहीं हो सका इसीलिए वह अपने कल्पना लोक के रूमानी जीवन में ही आनंद का अनुभव करता रहा. रूसो की कृतियाँ उसकी सहज अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हैं. किन्तु रूसो ने इस आदिम जीवन को अपना आदर्श नहीं माना. वह बुद्धि तथा भावना के सामंजस्य में ही आदर्श मानव-जीवन की कल्पना करता था. उसकी दृष्टि में - भाषा का विकास, सामाजिक सहयोग की भावना, शांति की स्थापना तथा पारस्परिक सौहार्द्र, आदर्श मानव-जीवन की स्थापना के लिए आवश्यक तत्व थे. किन्तु जब बुद्धि भावनाओं के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती है तो

श्रद्धा, प्रेम और दया का स्थान क्रमशः अविश्वास, वैमनस्य तथा स्वार्थ ले लेते हैं. इसके परिणामस्वरुप व्यक्तिगत संपत्ति की अवधारणा का विकास होता है और फिर साधारण व सरल प्रकृति का मनुष्य, दासता की बेड़ियों में जकड़ता जाता है. आर्थिक शोषण व सामाजिक अत्याचार के बीच वह अपनी निजी पहचान खो बैठता है. रूसो का लेखन - फ्रांसीसी क्रान्ति की पूर्व-अवस्था (धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक) का प्रतिबिम्बन है.

'सोशल कॉन्ट्रैक्ट' में रूसो यह बताता है कि – मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है. समाज में रहते हुए ही उसके मानवोचित गुणों का विकास संभव है. किन्तु वर्तमान समाज ने उसे अनावश्यक और अनिष्टकारी बंधनों से जकड़ रक्खा है. 'सोशल कॉन्ट्रैक्ट' का उद्देश्य – एक ऐसे समाज की स्थापना करना है जो कि अपनी सम्पूर्ण सामूहिक शक्ति द्वारा समाज में रह रहे प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा उसकी संपत्ति की रक्षा कर सके. रूसो एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना करता है जहाँ मनुष्य समाज में रहते हुए भी अपनी आत्मा की आज्ञा का पालन करे और उसकी निजी स्वतंत्रता में समाज का कोई हस्तक्षेप न हो. इस प्रसंविदा के परिणामस्वरूप जिस राज्य की उत्पत्ति होती है वह नैतिक नियमों से संचालित होता है तथा वह लोक-कल्याण की भावना का निर्वाहन करने के साथ-साथ व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भी रक्षा करता है.

रूसो प्रत्यक्ष जनतंत्र में विश्वास करता है. राष्ट्र-संघ की सभावना मानते हुए भी वह राष्ट्र-राज्य को विशेष महत्त्व देता है. किन्तु वह उसके शासन की बागडोर जनता के हाथों में सौंपना चाहता है. वह सरकार को केवल जनता के हित का साधन मानता है और ऐसा न कर पाने की स्थिति में उसे जनता की इच्छानुसार कभी भी बदला जा सकता है. इतिहास समीक्षक गायार्के ने रूसो के इस विचार को – 'नित्य क्रान्ति का सिद्धांत' कहा है.रूसो ने आधुनिक राज-दर्शन में यूनानी दार्शनिक अरस्तू का वह दृष्टिकोण पुनर्स्थापित किया जिसके अनुसार राज्य की सामूहिक चेतना ही व्यक्ति की नैतिकता तथा उसकी स्वतंत्रता का स्रोत है.आदर्शवादी इमानुअल कांट ने उसे आचारशास्त्र का न्यूटन कहा है. हेगेल तथा उसके आंग्ल अनुयायियों (ग्रीव तथा बोसांके) पर उसके विचारों का स्पष्ट प्रभाव है. आधुनिक जनतंत्र तथा आधुनिक राष्ट्रवाद के विकास में भी उसकी विचारधारा एक प्रेरक तत्व रही है.

9.4.2 ब्रिटिश रूमानीवादी कवि

इंग्लैंड में साहित्य के क्षेत्र में रूमानीवादी विचारधारा का विकास मुख्यतः 1785 से 1830 के मध्य हुआ था. ब्रिटिश रूमानी कवियों में कीट्स, शेली, वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, ब्लेक तथा बाइरन प्रसिद्द हैं.रूमानी कवियों का यह विश्वास था कि इस भौतिक संसार से परे भी किसी अलौकिक शक्ति का अस्तित्व है जो कि मानव को अत्याचारी शासन का तख्ता पलटने की हिम्मत और प्रेरणा देती है तथा साहित्य के क्षेत्र में भी अनाचार के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित करती है. जहाँ अमरीकी रूमानीवादियों ने इस अलौकिक शक्ति के विकराल एवं भयावह रूप को अधिक उत्साह के साथ प्रदर्शित किया था वहां ब्रिटिश रूमानीवादियों ने इस अलौकिक शक्ति की ऊर्जा तथा उसके सौन्दर्य-वर्णन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया था.

9.4.3 ब्रिटिश रूमानीवादी उपन्यासकार सर वाल्टर स्कॉट

सर वाल्टर स्कॉट (1771-1832), अंग्रेजी का प्रसिद्द ऐतिहासिक उपन्यासकार, नाटककार तथा कवि था. अपनी बाल्यावस्था में वाल्टर स्कॉट ने अपने दिन अपने पितामह के साथ ट्वीड नदी की घाटी में बिताये थे जहाँ उसका मन, प्रकृति प्रेम और स्कॉटलैंड के प्रति अनन्य भक्ति से भर गया था. स्कॉटलैंड के सीमान्त प्रदेश की शौर्य गाथाओं ने उसे अत्यधिक रोमांचित किया था. उसके लेखन में रूमानीवाद की पृष्ठभूमि में संभवतः यही शौर्य-गाथाएँ हैं. वाल्टर स्कॉट की रचनाओं में उसका अपना उदात्त चरित्र, उसका स्वाभिमान और उसका उत्कट देश-प्रेम झलकता है.वाल्टर स्कॉट

की प्रारंभिक काव्य-रचनाओं – 'दि ले ऑफ़ दि लास्ट मिंसट्रेल', 'मार्मियन' तथा 'राक्बी' में शौर्य-वर्णन की भरमार है तथा स्वच्छंदतावादी उपकरणों की प्रधानता है. स्कॉट ने चार-पांच नाटकों की भी रचना की जिनका कि सम्बन्ध स्कॉटलैंड के इतिहास तथा उस से सम्बद्ध जनश्रुतियों से है. स्कॉट के उपन्यासों में 'वेवर्ली', 'मैनरिंग'. 'दि एंटीक्वेरी', 'दि ब्लैक ड्वार्फ', 'दि लीजेंड ऑफ़ मान्त्रोज़', 'आइवन हो', 'दि ब्राइड ऑफ़ लैमरमूर', 'दि पाइरेट', 'काउंट रॉबर्ट ऑफ़ पेरिस', कैसिल डेंजरस' आदि प्रमुख हैं.

वाल्टर स्कॉट ने अपने उपन्यासों में मध्यकालीन इंग्लैंड तथा मध्यकालीन स्कॉटलैंड के इतिहास से सामग्री लेकर जीवन के विराट चित्र प्रस्तुत किये हैं. इन कथाओं में कल्पना तथा यथार्थ का सुन्दर सम्मिश्रण है. यद्यपि स्कॉट के उपन्यासों का वस्तु-विन्यास और उसकी शैली कहीं-कहीं त्रुटिपूर्ण है तथापि भावुकता, कवित्व, कल्पना और यथार्थ की मिली-जुली अभिव्यक्ति इन उपन्यासों को अत्यधिक रोचक बना देती हैं. स्कॉट के उपन्यासों का प्रभाव न केवल इंग्लैंड के साहित्यकारों पर, और यूरोप के अन्य देशों के साहित्यकारों पर, अपितु विश्व की अनेक भाषाओँ के साहित्यकों पर पड़ा है. भारतीय भाषाओँ के साहित्यकारों में बांग्ला के बंकिम चन्द्र, गुजराती के कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी तथा हिंदी के वृन्दावन लाल वर्मा और आचार्य चतुरसेन शास्त्री पर देखा जा सकता है.

9.4.4 दक्षिण अमेरिकी रूमानीवाद

स्पेनिश-भाषी दक्षिण अमेरिकी रूमानीवाद का प्रतिनिधि साहित्यकार एस्तेबान एशेवेरिया है जिसने कि 1830 से 1840 के मध्य अर्जेंटीना के तानाशाह जुआन मैन्युअल दी रोसास के अत्याचारी शासन के विरुद्ध अपनी घृणा व्यक्त की थी. उसके लेखन की विषय वस्तु में रक्त एवं आतंक का प्राचुर्य है. उसने रोसास के हिंसात्मक अत्याचारों को व्यक्त करने के लिए रूपक के रूप में एक बूचड़खाने का चित्रण किया है.

9.4.5 विज्ञान और रूमानीवाद

रूमानी आन्दोलन ने बौद्धिक जीवन के लगभग प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया था. अनेक वैज्ञानिक अनुभववाद का परित्याग किए बिना ही - जोहन गौटलिब फ़िश्ते के, फ्रेडरिक विल्हेम वोन शेलिंग के तथा विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल के 'नेचर फ़िलोसोफ़ी' के दर्शन से प्रभावित थे. ब्रिटिश वैज्ञानिक हम्फ्री डेवी मानव और प्रकृति के मध्य तादात्म्य स्थापित किए जाने को बहुत महत्त्व देता था. उसके अनुसार – 'केवल वही लोग ज्ञान अर्जित कर सकते हैं जो कि प्रकृति के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं, उसका सम्मान करते हैं और उसको पूजते हैं.'

9.4.6 इतिहास-लेखन में रूमानीवाद

इतिहास-लेखन पर रूमानीवाद का अत्यधिक प्रभाव पड़ा था. अनेक विद्वानों ने रूमानीवाद के इस प्रभाव को इतिहास-लेखन के लिए हानिकारक माना है. इंग्लैंड में प्रसिद्द निबंधकार तथा इतिहासकार थॉमस कार्लाइल ने 'हीरो-वर्शिप' (नायक-स्तुति) की अवधारणा का अपने इतिहास-ग्रंथों में विकास किया. उसने ओलिवर क्रोमवेल, फ्रेडरिक महान तथा नेपोलियन जैसे महा-नायकों की आँख मूंदकर प्रशंसा की. 19 वीं शताब्दी के रूमानीवादी इतिहासकारों ने इतिहास-लेखन में वस्तुनिष्ठता के गुण का परित्याग कर अपने-अपने राष्ट्रों का इतिहास इस प्रकार लिखा कि उनके राष्ट्र के नायक तो महानायक लगें और उनके शत्रु महा-खलनायक.

9.4.7 रूमानी राष्ट्रवाद

रूमानीवाद में राष्ट्रवाद को कला तथा राजनीतिक दर्शन का केंद्र बिंदु बनाया गया था. इसमें राष्ट्रीय भाषा, लोक कथाओं, स्थानीय रीति-रिवाज तथा स्थानीय परम्पराओं को महत्व दिया गया. यूरोप के अनेक राज्यों में, जैसे जर्मनी और आयरलैंड में, राष्ट्रीयता के आधार पर तथा आत्म-निर्णय के आधार पर यूरोप के मानचित्र को एक नया रूप दिए जाने के लिए आन्दोलन उठ खड़े हुए. प्रारंभिक रूमानीवादी राष्ट्रवाद के बीज रूसो ने बोए थे और हर्डर ने उसकी फ़सल तैयार की थी. फ़्रांसीसी क्रान्ति से तथा नेपोलियन के उत्थान से राष्ट्रवाद के स्वरुप में नाटकीय परिवर्तन हुआ थानेपोलियन की जर्मन राज्यों पर विजय से जर्मनी में नेपोलियन का प्रतिर .ोध करते हुए उसके निवासियों में राष्ट्रवाद की नई लहर उठ खड़ी हुई थी रूमानीवादी जोहन गौटलिब फित्शे ने .'वोक्सतुम' (राष्ट्रीयता) शब्द दिया और नेपोलियन के विरुद्ध जर्मनवासियों को उठ खड़े होने के लिए प्रेरित कियासर्बिया में वुक कैराद्जिक रूस में एलेग्जेंडर . एफेन्सियेव नॉर्वे में पीटर क्रिस्टन एस्ब्जोमसेन जोर्जेन मो इंग्लैंड में जोसफ जेकोब्स तथा पोलैंड के कवि एडम मिकीविक्ज़ ने रूमानी राष्ट्रवाद का उद्घोष किया .

9.4.8 जर्मनी में रूमानीवाद का विकास

18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ में जर्मन-भाषी देशों में रूमानीवाद प्रमुख विचारधारा के रूप में उभरा और उसने सौंदर्यवाद, साहित्य तथा आलोचनात्मक दृष्टिकोण को प्रभावित किया. जहाँ इंग्लिश रूमानीवाद में गंभीरता है, वहां जर्मन रूमानीवाद में वाग्विदग्धता, विनोद तथा सौन्दर्य का पुट है. प्रारंभिक जर्मन रूमानीवाद के प्रमुख दार्शनिक तथा लेखक थे – विल्हेम हेनरिक वैकेनरोडर (1773-1798) फ्रेडरिक विल्हेम जोसेफ़ शीलिंग (1775-1854) फ्रेडरिक शीलीमाकर (1768-1834), कार्ल विल्हेम फ्रेडरिक श्लीगेल (1772-1829), औगस्ट विल्हेम श्लेगेल (1767-1845), लुडविक टाइक (1773-1853) तथा फ्रेडरिक वोन हार्देनबर्ग (1772-1801).

इन दार्शनिकों ने मध्य काल को समाकलित संस्कृति का सरल युग मानते हुए उसका अवलोकन करने के लिए कला, दर्शन तथा विज्ञान का संश्लेषण किया. हालांकि जर्मन रूमानीवादियों ने उनके द्वारा सांस्कृतिक एकता की इस खोज के प्रयास को सारहीन माना. प्रारंभिक रूमानीवादियों द्वारा कला और समाज में एकता के परिप्रेक्ष्य में मध्यकाल को आदर्श के रूप में स्थापित किए जाने की प्रवृत्ति की हेनरिक हीन ने कटु आलोचना की है. जर्मन रूमानीवाद के प्रमुख स्तम्भ हैं –

जोहन गोटफ्राइड हर्डर , हेनरिक हीन, अकीम वोन एर्निम , बेटिना वोन एर्निम,क्लीमेंस ब्रेंतानो, जीन पॉल, जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल, ई. टी. ए. हॉफमैन, फ्रेडरिक होल्डरिन, एडम मुलर, हेनरिक वोन क्लीस्ट , नोवालिस (फ्रेडरिक वोन हार्डेनबर्ग), फ्रेडरिक विल्हेम जोसेफ़ शीलिंग, कैरोलिन शीलिंग, फ्रेडरिक श्लेगेल

9.5 जोहन गोटफ्राइड हर्डर

9.5.1 हर्डर का प्रारंभिक जीवन

इतिहास-दर्शन तथा संस्कृति-दर्शन के प्रवर्तक, जोहन गोटफ्राइड हर्डर का जन्म, 25 अगस्त, 1744 को पूर्वी प्रशा के नगर – मोहरुन्जेन में हुआ था. उसका पालन-पोषण धार्मिक वातावरण में हुआ था. सोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालय में वह प्रसिद्द दार्शनिक इमानुअल कांट के संपर्क में आया था. 1769 में 25 वर्ष की आयु में वह फ़्रांस की यात्रा के लिए निकल पड़ा और अपनी इस फ़्रांस-यात्रा के दौरान वह नवीन विचारों क वाले चिंतकों से मिला जिसने कि उसके विचारों पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ा. हर्डर ने दर्शन, इतिहास, समाज शास्त्र, भाषा-शास्त्र, साहित्य (विशेष रूप से

कविता), धर्म-शास्त्र आदि का गहन अध्ययन किया और इन सभी विषयों पर उसने विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों की रचना की अथवा निबंध लिखे.

9.5.2 हर्डर की विचारधारा पर समकालीन विद्वानों के विचारों का प्रभाव

हर्डर की गणना 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जर्मनी में हुए 'इस आन्दोलन में) आन्दोलन में थीं 'स्त्रुम उंड द्रंग' (अंतरानुभूति तथा भावनाओं को ज्ञानोदय के बुद्धिवाद की तुलना में वरीयता दी गयी थी साहित्यिक आन्दोलन के प्रमुख स्तंभों में की जाती है. इस आन्दोलन का प्रमुख लक्षण है – 'समाज के विरुद्ध व्यक्ति का ऐसा विद्रोह जिसमें कि उत्तेजक कार्यों तथा उच्च भावनाओं का समावेश हो.' हर्डर पर अमर काव्य 'फॉस्ट' के रचयिता तथा महान विचारक जे. डब्लू. वोन गेटे की रूमानीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव पड़ा था. उल्लेखनीय है कि गेटे पर भी हर्डर की विचारधारा का प्रभाव पड़ा था. हर्डर, आलोचनात्मक दर्शन के संस्थापक एमानुअल कांट के संपर्क में भी आया था. वह कांट के इस विचार से अत्यधिक प्रभावित था कि मानवीय विकास में जलवायु तथा भूगोल जैसी प्राकृतिक परिस्थितियां अत्यंत प्रभावी होती हैं. उसने मानव-इतिहास को समझने के लिए प्रकृति के सन्दर्भ में 'ब्रह्माण्ड में मानव का स्थान' समझने पर विशेष बल दिया था. हर्डर का संपर्क ज्ञानोदय काल के प्रसिद्द आलोचक जोहान जॉर्ज हैमन से भी हुआ था.

9.5.3 हर्डर की रचनाएँ

इतिहास दर्शन की दृष्टि से हर्डर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना – 'आइडिया फ़ॉर ए फ़िलोसोफ़िकल हिस्ट्री ऑफ़ मैनकाइंड' (मानव-जाति के दार्शनिक-इतिहास विषयक विचार) है. चार खण्डों की इस वृहद् पुस्तक का प्रकाशन 1782 से 1791 के मध्य हुआ था. हर्डर ने तत्कालीन रूसी साम्राज्य के नगर रिगा में अध्यापन करते समय 'ऑन रीसेंट जर्मन लिटरेचर: फ़्रैगमेन्ट्स' (1767) तथा 'रिफ्लेक्शंस ऑन दि साइंस एंड आर्ट ऑफ़ ब्यूटीफ़ुल' (1769) का प्रकाशन किया. 1769 में ही अपनी समुद्र-यात्रा के उपरांत उसने 'जर्नल ऑफ़ माय वॉयेज इन दि ईयर 1769' की रचना की. इस रचना में उसने अपने अतीत के अनुभवों से प्राप्त अंतर्दृष्टि के माध्यम से भविष्य के रहस्यों को उदघाटित करना प्रारंभ किया. हर्डर ने अपने समय के आलोचक-भविष्यवक्ता के रूप में आने वाली पीढ़ियों के बौद्धिक विकास को चित्रित किया. उसके इस चित्रण में काव्य के क्षेत्र में तथा सौन्दर्यपरक सिद्धांत के क्षेत्र में - गेटे, औगस्ट विल्हेम तथा फ्रेडरिक वोन श्लेगेल के विचार; भाषा-दर्शन के क्षेत्र में विल्हेम हुमबोल्ट के विचार; इतिहास-दर्शन के क्षेत्र में जी. डब्लू. हेगेल के विचार; विल्हेम दिल्थी तथा उसके अनुयायियों के ज्ञान-मीमांसा विषयक विचार; मानवशास्त्र में आर्नोल्ड गेलेन के विचार तथा राजनीतिक चिंतन में स्लाव राष्ट्रवादियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है.

9.5.4 हर्डर का इतिहास-दर्शन

दार्शनिक एवं ब्रह्मविज्ञानी हर्डर ने प्रत्येक राष्ट्रीय संस्कृति को - अपने अन्तर्निहित लक्षण 'राष्ट्रीय चरित्र' के साथ एक जैविक इकाई माना जिसकी कि अभिव्यक्ति भाषा, साहित्य, कला और नैतिक-संहिता में होती है। हर्डर जातीय श्रेष्ठता के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता है। हर्डर के अनुसार किसी भी देश का राष्ट्रीय चरित्र उसके इतिहास को अत्यधिक प्रभावित करता है। हर्डर इतिहासकारों को निर्देश देते हुए कहता है –

'किसी देश के बारे में लिखने से पहले तुम उस देश के साथ सहानुभूति रखो, उसके युग में जाओ, उसके भूगोल में जाओ, उसके सम्पूर्ण इतिहास में जाओ, यह अनुभव करो कि तुम वहीं हो।'

अपने ग्रन्थ 'ऐसे ऑन दि ओरिजिन ऑफ़ लैंग्वेज (1772) में उसने मानव प्रकृति में भाषा की उत्पत्ति विषयक विचार तथा 'प्लास्टिक' (1778) में उसने अपने आध्यात्मवादी विचार प्रस्तुत किए. ये दोनों निर्भीक मौलिक तथा सृजनात्मक साहित्यिक आन्दोलन 'स्टर्म उंड ड्रेंग' के मूलभूत ग्रन्थ कहे जा सकते हैं. इनके बिना उत्कृष्ट तथा रूमानी

जर्मन साहित्य का विकास असंभव था. जिस रूमानीवाद को हर्डर ने अपनाया उसमें विचारों का माध्यम भावना है. हर्डर ने इसकी तुलना स्पर्श के अनुभव से की है. हम अपनी दृष्टि वस्तुओं को दूर से देखकर समझते हैं जब कि भावना से वास्तविकता का तुरंत सीधा अनुभव किया जा सकता है.जब हर्डर के समकालीन मनोवैज्ञानिक विभिन्न मानव क्षमताओं –अभिधान, भावना, ज्ञान आदि को सावधानी के साथ श्रेणीबद्ध कर रहे थे, तब हर्डर ने मानव प्रकृति की एकता तथा अविभाज्य सम्पूर्णता पर बल दिया.

हर्डर ने इतिहास और प्रकृति में समन्वय स्थापित किया है. मानव-इतिहास और प्रकृति, दोनों में वैभिन्य होते हुए भी हर्डर इन दोनों की प्रक्रिया में एक प्रवाह देखता है . उसकी दृष्टि में इतिहास और प्रकृति दोनों काल से सम्बद्ध हैं, दोनों ही गतिशील हैं और दोनों ही में जीवन का संचार है.अतीत के माध्यम से वर्तमान स्थिति को समझने तथा भविष्य की संभावनाओं को तलाशने के प्रयास में हर्डर का इतिहास-दर्शन भी विकसित होने लगा था.हर्डर ने इतिहास में सन्निहित शक्तियों का विभाजन उसकी आतंरिक शक्ति तथा उसकी वाह्य शक्ति में किया है.

हर्डर ऐतिहासिक घटनाओं का क्रम निश्चित नियमानुसार मानता है. वह मानता है कि पृथ्वी पर जो भी घटित हुआ है अथवा जिसकी होने की सम्भावना है, उसका निर्धारण - स्थान, परिस्थिति, तत्कालीन आवश्यकता समय तथा उस क्षेत्र की जनता की क्रियाशीलता से होता है. अपने ग्रन्थ 'आउटलाइन्स ऑफ़ ए फ़िलोसोफ़ी ऑफ़ दि हिस्ट्री ऑफ़ मैन' (1784-1791) में यह बताता है कि जिस प्रकार प्राकृतिक घटनाओं का घटित होना नियमानुसार होता है उसी प्रकार ऐतिहासिक घटनाएँ भी नियमानुसार घटित होती हैं. इसी प्रकार मनुष्य के सामुदायिक जीवन में भी संघर्षरत बलों का मेल-मिलाप, मानवजाति के नियमों के अंतर्गत ही होता है. हर्डर यह मानता है कि अक्सर मनुष्य अपनी बौद्धिक अपरिपक्वता के कारण अपनी स्वतंत्रता का उपयोग प्रकृति के विरुद्ध करता है. हर्डर का यह मानना है कि अंतर्दृष्टि का विकास तथा सद्भावना मनुष्य को प्रकृति के साथ सामंजस्य करना सिखा देगी और राष्ट्रों का आपसी संघर्ष भी समाप्त होकर समस्त मानवजाति में एक संतुलन स्थापित होगा.

अपने ग्रन्थ 'ऑन रीसेंट जर्मन लिटरेचर: फ्रैगमेन्ट्स' में, हर्डर पहले ही ऐतिहासिक विकास तथा मानव-जीवन के विभिन्न आयु-चरणों में सादृश्यता रेखांकित कर चुका था. शेक्सपीयर पर अपने निबंध तथा 'एन अदर फिलोसोफ़ी ऑफ़ हिस्ट्री कन्सर्निंग दि डेवलपमेंट ऑफ़ मैनकाइंड' (1774) में उसने इतिहास-लेखन में बुद्धिवाद का विरोध किया था. हर्डर एमानुअल कांट और फ्रांसीसी दार्शनिक रूसो की विचारधारा से बहुत प्रभावित था. कांट ने मानवीय विकास में प्राकृतिक परिस्थितयों को (विशेषकर: जलवायु तथा भूगोल को) प्रभावी माना है. कांट ने मानव-इतिहास को समझने के लिए - ब्रह्माण्ड में प्रकृति के सन्दर्भ में मानव का स्थान समझना आवश्यक माना था. हर्डर यह मानता है कि आदि-मानव से चिंतनशील सभ्य मानव तक की विकास प्रक्रिया में जलवायु में हुए परिवर्तनों तथा भौगोलिक परिवर्तनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है. उल्लेखनीय बात यह है कि डार्विन के 'ऑन दि ओरिजिन ऑफ़ दि स्पेसीज़' के प्रकाशन से आधी सदी पहले ही हर्डर ने इन विचारों को व्यक्त किया था.

हर्डर के इतिहास-दर्शन का एक अन्य प्रमुख विचार यह है कि वह यह मानता है कि मानव-शरीर के भीतर जातीय-शरीर (रेशियल ऑर्गेनिज्म) जन्म लेता है और जातीय शरीर अथवा जातीय शरीरों में से ऐतिहासिक शरीरों की उत्पत्ति होती है. इन ऐतिहासिक शरीरों के विकास के लक्षण प्रगति तथा उन्नति होते हैं.सभी जातियों के लक्षणों में अंतर देखते हुए हर्डर का यह मानना है कि सभी जातियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं और सभी जातीय-व्यक्तित्व अपनी-अपनी विशिष्ट जीवन-प्रक्रिया में उम्र के विभिन्न पड़ावों (बचपन, जवानी, बुढ़ापा) से गुज़रते हुए अंततः मृत्यु को प्राप्त होते हैं. जीवन-प्रक्रिया के इन सभी पड़ावों में एकता का सूत्र बना रहता है.

हर्डर की इस परिकल्पना का प्रतिबिम्बन हमको 20 वीं शताब्दी के प्रसिद्द इतिहास-दार्शनिकों स्पेंगलर तथा टायनबी के विचारों में दिखाई पड़ता है.

हर्डर की दृष्टि में मानव-सभ्यता के विकास से पूर्व भी मनुष्य में काव्यात्मक प्रतिभा थी. हर्डर ने प्राचीन जर्मन लोकगीतों को पुनर्जीवित किए जाने के प्रयासों की सराहना की थी. उसने नोर्स-काव्य व मिथकशास्त्र, मिंनेसिंगर के ग्रंथों तथा मार्टिन लूथर की भाषा के अध्ययन को महत्ता दी थी. गेटे से प्रभावित होकर हर्डर ने वीमार में सामान्य आकृति-विज्ञान की आधारशिला का विकास किया. इसने उसे शेक्सपीयर के नाटकों को तथा अन्य साहित्यकारों की साहित्यिक रचनाओं को, उनके ऐतिहासिक सन्दर्भ में समझने में सक्षम बनाया. द्वंद्वात्मक तर्कशास्त्र के इतिहास में हर्डर की गणना प्रमुख विचारकों में होती है.

9.5.5 हर्डर के जीवन के अंतिम दिन

हर्डर की निजी आर्थिक कठिनाइयों, फ्रांसीसी क्रान्ति पर वैचारिक मतभेद और उसकी हठधर्मिता व दंभ ने उसे गेटे से दूर कर दिया. उसने 'लेटर्स फ़ॉर दि एडवांसमेंट ऑफ़ ह्यूमैनिटी' तथा 'अद्रास्ती' में कविता के शिक्षापूर्ण उद्देश्य पर बल दिया और इस तरह उसने इतिहास, दर्शन सौन्दर्य शास्त्र तथा साहित्य के सन्दर्भ में 'कला की स्वायत्तता' की वक़ालत करने वाली अपनी पुरानी बात का ख़ुद ही विरोध कर दिया. अपने जीवन के अंतिम दिनों में हर्डर को कांट का दर्शन भी अपने विश्व-विषयक ऐतिहासिक दृष्टिकोण के लिए खतरा लगने लगा. हर्डर ने कवि, उपन्यासकार क्रिस्टोफ़ मार्टिन वीलैंड तथा हास्य-व्यंग्य के प्रसिद्द रूमानीवादी कहानीकार, उपन्यासकार जीन पॉल ने 'क्रिटिक ऑफ़ प्योर रीज़न' में प्रतिपादित विचारधारा का खुलकर विरोध किया.1803 में हर्डर की मृत्यु हुई. उसकी मृत्यु के उपरांत उसके पत्नी ने 1805 और 1820 के मध्य, 45 खण्डों में, उसकी रचनाओं का सम्पादित संस्करण प्रकाशित करवाया.

9.5.6 रूमानीवादी विचारधारा का अवसान

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक आते-आते 'ज़ीटजीस्त' आन्दोलन के अंतर्गत ऐतिहासिक अवश्यम्भाविता तथा प्राकृतिक अवश्यम्भाविता की प्रबल वैचारिक लहर चलने लगी थी. 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रूमानीवाद की विपरीत विचारधारा के रूप में यथार्थवाद को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा. रूमानीवाद के अवसान के मुख्य कारण थे – सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तन तथा राष्ट्रवादी भावना का प्रबल होना. यूरोपीय बौद्धिक जीवन में 1860 के निकट एक ठहराव आ गया था जिसमें कला, साहित्य और संगीत का प्रभाव क्षीण पड़ गया था और भौतिकतावादी प्रवृत्तियां उस पर हावी होने लगी थीं. आतंरिक सामाजिक तनावों तथा वाह्य-विप्लवों ने भावुकता और रूमानी प्रकृति पर गहरी चोट की थी.

यूरोप में निरंतर हो रहे युद्धों, क्रांतियों तथा अमेरिका में गृह युद्ध के बाद दार्शनिक चिंतन में रूमानीवाद का स्थान यथार्थवाद ने ले लिया. अपने ही देश में हो रहे युद्धों में रक्तपात के भयानक दृश्यों को देखकर जनता का आशावाद, निराशा में बदल गया और उसकी ऊंची उड़ान वाली स्वप्न-दर्शिता यथार्थ की ठोस ज़मीन पर आ गयी. अब पाश्चात्य शक्तियां सारी दुनिया को अपना गुलाम बनाने की होड़ में लगी थीं. शक्ति संतुलन के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग, साम्राज्य-विस्तार अथवा राजनीतिक व आर्थिक प्रभाव बढ़ाने के उद्देश्य से किए गए कूटनीतिक गठबंधन आदि कोरे यथार्थवादी दृष्टिकोण का ही पोषण कर रहे थे. भारत को ब्रिटिश ताज के आधीन किया जाना और अफ्रीका का यूरोपीय शक्तियों के बीच बटवारा, रूमानीवादियों की काव्यात्मक, दार्शनिक भावुकता और कल्पना की उड़ान में नहीं, अपितु यथार्थ की ठोस ज़मीन पर ही हो सकता था.

9.5.7 एक इतिहासकार तथा दार्शनिक के रूप में हर्डर का आकलन

स्विट्ज़रलैंड में इतिहासकार फानब्यूलर उसके 'इतिहास में व्यक्ति की महत्ता' विषयक विचारों से प्रभावित हुए थे. गार्डिनर ने दर्शनशास्त्र के विकास में हर्डर के योगदान की सराहना की है. हेगेल ने एक प्रकार से हर्डर के ही इतिहास-दर्शन का विकास किया था. कॉलिंगवुड ने अपने ग्रन्थ 'दि आइडियाज़ ऑफ़ हिस्ट्री' में हर्डर के इतिहास-दर्शन के क्षेत्र

में योगदान की सराहना की है. किन्तु हर्डर के इतिहास-लेखन तथा उसके इतिहास-दर्शन में दोष भी हैं. उसके इतिहास-दर्शन में विरोधाभास है और उसके विचार इतने बिखरे हुए हैं कि उनको जोड़ पाना या उनमें समन्वय स्थापित कर पाना दुष्कर हो जाता है. हर्डर अपने जीवन के अंतिम चरण में अपनी पुरानी विचारधारा का स्वयं विरोध करने लगा था. अपने आदर्श – कांट और गेटे के विचारों का भी वह विरोध करने लगा था.

किन्तु हर्डर के ऐतिहासिक योगदान को नकारा नहीं जा सकता. उसने इतिहास-लेखन के शास्त्रीय मापदंडों की सर्वथा उपेक्षा की किन्तु उसने इतिहास की रुक्षता में कमी लाकर उसको जन-साधारण के लिए रोचक बना दिया. इतिहास को साहित्य, कला,कमी कर उसे जन-साधारण के लिए रोचक बनाने में सफलता प्राप्त की. उसने इतिहास को प्रकृति, भूगोल, साहित्य और कला से जोड़कर, उसके क्षेत्र का विस्तार किया.स्पेंगलर के तथा टायनबी के विचारों पर हर्डर के विचारों का व्यापक प्रभाव पड़ा था. हर्डर ने इतिहास दर्शन को एक नई दिशा प्रदान की थी. उसने ऐतिहासिक घटनाओं तथा प्राकृतिक घटनाओं में साम्य दर्शाकर इतिहास को प्रकृति से जोड़ने का कार्य किया था. हर्डर ने मानवीय विकास के क्रम का सिद्धांत, चार्ल्स डार्विन के ग्रन्थ - 'ओरिजिन ऑफ़ स्पेसीज़' से आधी शताब्दी पूर्व ही कर स्थापित कर दिया था. हर्डर का मानवता, व्यक्तित्व, कर दिया और इस तरह इतिहास को विज्ञान से भी घनिष्ठ रूप से जोड़ दिया. नवीन नवीन है. फ्रांस में गुइज़ों, मिशले,हर्डर को हम एक युग प्रवर्तक इतिहासकार और एक महान तथा मौलिक इतिहास-दार्शनिक कह सकते हैं.

9.6 सारांश

ज्ञानोदय काल के संशयवाद, तर्कवाद तथा बुद्धिवाद को प्रत्येक क्षेत्र में आस्था, मनोभाव, कल्पना, रहस्य, भावना तथा रोमांस द्वारा चुनौती दी गयी. रूमानीवाद वह बौद्धिक दृष्टिकोण है जिसने 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर 19 वीं शताब्दी के मध्य तक संगीत,के मध्य तक पाश्चात्य जगत के संगीत, चित्रकला, स्थापत्यकला, साहित्य, आलोचनात्मक दृष्टिकोण और इतिहास-लेखन को प्रभावित किया.इस आन्दोलन के उत्कर्ष का काल 1800 -से रूमानीवाद के प्रमुख लक्षणों में भावनाओं तथा व्यक्तिवाद को महत्ता दिए जाने के अतिरिक्त अतीत .तक का था 1850 प्रकृति का महिमा का तथा-मंडन सम्मिलित हैं - रूमानीवाद को हम आंशिक रूप से आधुनिकीकरण के तत्वों . यांत्रिकीकरण एवं ज्ञानोदय काल के सामाजिक तथा राजनीतिक मूल्यों तथा प्रकृति की -औद्योगिक क्रान्ति के अति .देख सकते हैं वैज्ञानिक व्याख्याओं से उपजी मानसिक कुंठा की अभिव्यक्ति के रूप मेंजीन जेकुअस रूसो रूमानी आन्दोलन का मसीहा माना जाता है. रूसो ने प्रकृति की अवस्था का रूमानी चित्र प्रस्तुत किया.

रूमानी कवियों का यह विश्वास था कि इस भौतिक संसार से परे भी किसी अलौकिक शक्ति का अस्तित्व है. रूमानीवादियों में सर वाल्टर स्कॉट सम्मिलित है. वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों में कल्पना तथा यथार्थ का सुन्दर सम्मिश्रण है. रूमानी आन्दोलन ने बौद्धिक जीवन के लगभग प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया था. अनेक वैज्ञानिक अनुभववाद का परित्याग किए बिना ही 'नेचर फ़िलोसोफ़ी' के दर्शन से प्रभावित थे. इतिहास-लेखन पर रूमानीवाद का अत्यधिक प्रभाव पड़ा था. इंग्लैंड में प्रसिद्द निबंधकार तथा इतिहासकार थॉमस कार्लाइल ने 'हीरो-वर्शिप' (नायक-स्तुति) की अवधारणा का अपने इतिहास-ग्रंथों में विकास किया. 19 वीं शताब्दी के रूमानीवादी इतिहासकारों ने इतिहास-लेखन में वस्तुनिष्ठता के गुण का परित्याग कर अपने-अपने राष्ट्रों का इतिहास इस प्रकार लिखा कि उनके राष्ट्र के नायक तो महानायक लगें और उनके शत्रु महा-खलनायक. रूमानीवाद में राष्ट्रवाद को कला तथा राजनीतिक दर्शन का केंद्र बिंदु बनाया गया था. इसमें राष्ट्रीय भाषा, लोक कथाओं, स्थानीय रीति-रिवाज तथा स्थानीय परम्पराओं को महत्व दिया गया. प्रारंभिक रूमानीवादी राष्ट्रवाद के बीज रूसो ने बोए थे और हर्डर ने उसकी फ़सल तैयार की थी.

18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ में जर्मन-भाषी देशों में रूमानीवाद प्रमुख विचारधारा के रूप में उभरा और उसने सौंदर्यवाद, साहित्य तथा आलोचनात्मक दृष्टिकोण को प्रभावित किया.

इतिहास-दर्शन तथा संस्कृति-दर्शन के प्रवर्तक, रूमानीवादी जोहन गोटफ्राइड हर्डर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना – 'आइडिया फ़ॉर ए फ़िलोसोफ़िकल हिस्ट्री ऑफ़ मैनकाइंड' है. हर्डर की गणना 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जर्मनी में हुए 'स्त्रुम उंड द्रंग' साहित्यिक आन्दोलन के प्रमुख स्तंभों में की जाती है. हर्डर ने अपने समय के आलोचक-भविष्यवक्ता के रूप में आने वाली पीढ़ियों के बौद्धिक विकास को चित्रित किया. हर्डर ने प्रत्येक राष्ट्रीय संस्कृति को - अपने अन्तर्निहित लक्षण 'राष्ट्रीय चरित्र' के साथ एक जैविक इकाई माना जिसकी कि अभिव्यक्ति भाषा, साहित्य, कला और नैतिक-संहिता में होती है.हर्डर ने इतिहास और प्रकृति में समन्वय स्थापित किया है. मानव-इतिहास और प्रकृति, दोनों में वैभिन्य होते हुए भी हर्डर इन दोनों की प्रक्रिया में एक प्रवाह देखता है.हर्डर का यह मानना है कि सभी जातियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं और सभी जातीय-व्यक्तित्व अपनी-अपनी विशिष्ट जीवन-प्रक्रिया में उम्र के विभिन्न पड़ावों (बचपन, जवानी, बुढ़ापा) से गुज़रते हुए अंततः मृत्यु को प्राप्त होते हैं. जीवन-प्रक्रिया के इन सभी पड़ावों में एकता का सूत्र बना रहता है. हर्डर को जर्मन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का जनक माना जाता हैहर्डर एक प्रतिष्ठित . व-आलोचक तथा इतिहास-साहित्य ,प्राणिविज्ञान शास्त्री ,दार्शनिक ,ब्रह्मज्ञानीिषयक सिद्धांत का प्रतिपादक था . उसके विचारों ने अपने समय के बुद्धिजीवियों के चिंतन पर तथा अपने बाद की पीढ़ियों के चिंतकों के विचारों पर गहरी .छाप छोडी है

9.7 पारिभाषिक शब्दावली

आन्दोलन 'स्त्रुम उंड द्रंग'– 18 वीं शताब्दी में जर्मनी में विकसित इस साहित्यिक आन्दोलन में अंतरानुभूति तथा भावनाओं को ज्ञानोदय के बुद्धिवाद की तुलना में वरीयता दी गयी थी.

ज्ञानोदय काल – अंग्रेज़ी में इससे 'एन्लाइटेन्मेंट एरा' कहते हैं. इस काल में हर बात को बुद्धि तथा विवेक की कसौटी पर परखे जाने पर बल दिया जाता था.

सोशल कॉन्ट्रैक्ट – सामाजिक प्रसंविदा

व्यक्तिवाद से लेकर समष्टिवाद तक – एक अकेले व्यक्ति के हित अथवा उस अकेले के दृष्टिकोण से मानव-समूह के हित तथा मानव-समूह के दृष्टिकोण तक

दुरूह – कठिन

आदिम जीवन – आदि मानव की जीवन शैली

हीरो वर्शिप – नायक की स्तुति अथवा भक्ति

वोक्सतुम – राष्ट्रीयता

ओरिजिन ऑफ़ स्पेसीज़ – जीव-जाति का उद्भव

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए

1. जीन जेकुअस रूसो को रूमानीवाद का मसीहा क्यों कहा जाता है?
2. सर वाल्टर स्कॉट के रूमानी उपन्यासों की संक्षेप में विशेषताएँ बताइए.
3. 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रूमानीवाद के अवसान के कारणों पर प्रकाश डालिए.

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 9.4.1
2. देखिए 9.4.3
3. देखिए 9.5.6

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

बर्लिन इसाइआ – 'दि रूट्स ऑफ़ रोमांटिसिज्म', लन्दन, 1999
रोज़ेन चार्ल्स – 'दि रोमांटिक जेनरेशन', कैंब्रिज, 1995
'बेसिक पोलिटिकल राइटिंग्स' (रूसो), अंग्रेजी अनुवाद – डोनाल्ड ए. क्रेस, इंडियानापोलिस, 1987
'दि कंफ़ेशंस' (रूसो) अंग्रेजी अनुवाद – स्कॉलर, एंजेला, ऑक्सफ़ोर्ड, 2000
'एमिली, और ऑन एजुकेशन' (रूसो) अंग्रेजी अनुवाद – ब्लूम, एलेन, शिकागो, 1986
'दि सोशल कॉन्ट्रैक्ट' (रूसो) अंग्रेजी अनुवाद – मॉरिस क्रेस्टन', लन्दन, 2007
बर्नार्ड एफ़. एम. (संपादक) – 'जे. जी. हर्डर ऑन सोशल एंड पोलिटिकल कल्चर', कैंब्रिज, 2010
बर्नार्ड एफ़. एम. (संपादक) – 'हर्डर्स' सोशल एंड पोलिटिकल थॉट फ्रॉम एनलाइटेनमेंट टू नेशनलिज्म', ऑक्सफ़ोर्ड, 1967
क्रिस्टोफ़र, जॉन मरे (संपादक) – 'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ दि रोमांटिक एरा, 1760-1850' रौटलेज, 2013
फ़ोरेस्टर, एम. एन. (संपादक) – 'हर्डर: फ़िलोसोफ़िकल राइटिंग्स', कैंब्रिज, 2002

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

हर्डर के इतिहास-दर्शन पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए.

9.10 उपयोगी ग्रन्थ

बर्लिन इसाइआ – 'दि रूट्स ऑफ़ रोमांटिसिज्म', लन्दन, 1999
रोज़ेन चार्ल्स – 'दि रोमांटिक जेनरेशन', कैंब्रिज, 1995
'बेसिक पोलिटिकल राइटिंग्स' (रूसो), अंग्रेजी अनुवाद – डोनाल्ड ए. क्रेस, इंडियानापोलिस, 1987
'दि कंफ़ेशंस' (रूसो) अंग्रेजी अनुवाद – स्कॉलर, एंजेला, ऑक्सफ़ोर्ड, 2000
'एमिली, और ऑन एजुकेशन' (रूसो) अंग्रेजी अनुवाद – ब्लूम, एलेन, शिकागो, 1986
'दि सोशल कॉन्ट्रैक्ट' (रूसो) अंग्रेजी अनुवाद – मॉरिस क्रेस्टन', लन्दन, 2007
बर्नार्ड एफ़. एम. (संपादक) – 'जे. जी. हर्डर ऑन सोशल एंड पोलिटिकल कल्चर', कैंब्रिज, 2010
बर्नार्ड एफ़. एम. (संपादक) – 'हर्डर्स' सोशल एंड पोलिटिकल थॉट फ्रॉम एनलाइटेनमेंट टू नेशनलिज्म', ऑक्सफ़ोर्ड, 1967
क्रिस्टोफ़र, जॉन मरे (संपादक) – 'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ दि रोमांटिक एरा, 1760-1850' रौटलेज, 2013
फ़ोरेस्टर, एम. एन. (संपादक) – 'हर्डर: फ़िलोसोफ़िकल राइटिंग्स', कैंब्रिज, 2002

इकाई दस : इतिहास एवं अन्य सम्बद्ध विषय

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 इतिहास का पुरातत्व से संबंध

10.3 इतिहास एवं साहित्य का संबंध

10.4 इतिहास व भूगोल

10.5 इतिहास का अर्थशास्त्र से संबंध

10.6 इतिहास का दर्शनशास्त्र से संबंध

10.7 इतिहास का समाजशास्त्र से संबंध

10.8 इतिहास व राजनीति का संबंध

10.9 इतिहास व मनोविज्ञान

10.10 इतिहास एवं प्राकृतिक विज्ञान का संबंध

10.11 इतिहास व भाषा विज्ञान का संबंध

10.12 इतिहास व व्यवहारिक विज्ञान में संबंध

10.13 इतिहास व नीतिशास्त्र में संबंध

10.14 इतिहास तथा संस्कृति में संबंध

10.15 इतिहास तथा मानवशास्त्र में संबंध

10.16 इतिहास व सांख्यिकी में संबंध

10.17 इतिहास व कम्प्यूटर

10.18 सारांश

10.19 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.20 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

विभिन्न इतिहासकारों नें इतिहास को सभी विषय का आश्रय स्थल माना है अतः इतिहास का अन्य विषयों से संबंध प्रासंगिक है। प्रो. ब्यूरी के अनुसार, ''इतिहास राजनीति, धर्म, कला, शासन, विधि, परम्पराओं का अध्ययन है जिसमें व्यक्ति और समाज की बौद्धिक, मौलिक व भावनात्मक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अतः इसका संबंध अन्य विषयों से होना स्वाभाविक है। जॉनसन के शब्दों में – इतिहास अन्य सामाजिक विज्ञान की पृष्ठभूमि है अर्थात् समाज का तानाबाना इसी के साथ बुना जाता है। जिलर ने इतिहास को केन्द्रीय विज्ञान माना है। अतः कोशिका में जो स्थान केन्द्रक का है वही स्थान समाज में इतिहास का है। ट्रेवेलियन ने इतिहास को सभी विषय का निवास स्थान माना है। दूसरे शब्दों में कहें तो वह स्थान जहाँ सभी रहते हों। प्रो0 ई0 एच0 कार ने भी लिखा है, ''अपनी तर्क शक्ति के द्वारा अपने परिवेश को जानने और उसके अनुरूप कार्य करने का लम्बा संघर्ष इतिहास है। परन्तु आधुनिक समय में कई ऐतिहासिक परिवर्तन प्रस्तुत किए हैं, अब मानव परिवेश को समझने और उसके अनुरूप कार्य करने का प्रयास ही नहीं अपितु मानवीय तर्क और इतिहास को नई दिशा भी प्रदान कर रहा है। आधुनिक युग सर्वाधिक ऐतिहासिकवादी है और मानव अभूतपूर्व चैतन्य है इसलिए इतिहास भी, चेतन है।''

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- इतिहास के पुरातत्व के साथ संबंध के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इतिहास के साहित्य के साथ संबंध के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इतिहास के भूगोल के साथ संबंध के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इतिहास के अर्थशास्त्र के साथ संबंध के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इतिहास के दर्शनशास्त्र के साथ संबंध के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इतिहास के राजनीतिशास्त्र के साथ संबंध के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इतिहास के मनोविज्ञान के साथ संबंध के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इतिहास के समाजशास्त्र के साथ संबंध के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

10.2 इतिहास का पुरातत्व से संबंध

तिथि निर्धारण व इतिहास में एकरूपता बनाने की दृष्टि से अभिलेख अत्यंत आवश्यक हैं। प्राचीनकाल में निर्मित स्मारक या भवन तत्कालीन इतिहास की जानकारी के प्रमुख स्त्रोत हैं। कमिघंम ने उल्लेख किया है कि पुरातत्व का तात्पर्य मात्र भग्नावशेष से नहीं वरन इतिहास के अन्य पहलुओं से भी संबंध होता है। यही कारण है कि पुरातात्विक सामग्री के अभाव में वश्तुपरक इतिहास लेखन संभव नहीं है। भारत में पुरातात्वि विभाग की स्थापना का श्रेय पाश्चात्य विद्वान लॉर्ड कनिंघम को है जिसने न केवल ब्रिटिश सरकार का ध्यान भारत में पुरात्तव की ओर आकर्षित किया अपितु उसके महत्त्व पर भी अपने लेखों के द्वारा बल दिया और प्राचीन स्थलों के सर्वेक्षण के द्वारा इतिहास के पुरातत्व के मध्य घनिष्ठता को भी उजागार किया, जिसके कारण कनिंघम को 'भारतीय पुरातत्व के पिता' के नाम से जाना जाता है। कनिंघम ने भारतीय पुरातत्व के संदर्भ में यह भी उल्लेख किया है। इतिहास को जानने के तीन प्रकार के स्त्रोत उल्लेखनीय है पुरातात्विक/साहित्यिक/व विदेशी यात्री वृत्तांत। यहॉ पर पुरातात्विक स्त्रोत को भी तीन प्रकार से विभाजित किया गया–

1 अभिलेख

11.0 स्मारक

12.0 मुद्राएँ।

ततपश्चात अभिलेख के भी विभाजन किये गये – 1 देशी अभिलेख, उदाहरण– अशोक के अभिलेख 2 विदेशी अभिलेख, उदाहरण – बोगजकाई से प्राप्त अभिलेख। स्मारकों को भी दो भागो में विभाजित किया गया – 1 देशी स्मारक, उदाहरण– हड़प्पा, मोहनजोदड़ो। 2 विदेशी स्मारक, उदाहरण– कंबोडिया स्थित अंकोरवाट का मंदिर। इतिहास के उपरोक्त स्त्रोत के आधार पर निम्नलिखितजानकारी प्राप्त होती है– 1कालक्रम जो कि पुरातात्विक स्त्रोत के आधार पर मिलता है 2 उपरोक्त काल की सांस्कृतिक धरोहर की झलक भी पुरातात्विक स्त्रोत से ही प्राप्त होती है। 3 उस वंशावली का सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिदृश्य भी पुरातत्व के आधार पर ही जाना जाता है।

अतः यह स्पष्ट होता है कि इतिहास का घनिष्ठ संबंध पुरातत्व से है क्योंकि पुरातत्व स्त्रोत ही इतिहास को प्रमाण के साथ प्रस्तुत करते है जो इतिहास की महती आवश्यकता है।

वस्तुतः ये दोनों एक दूसरे के पूरक है। वास्तव में पुरातात्विक जानकारी की ने इतिहास को ठोस आधार प्रदान किया। जिस पर तत्कालीन इतिहासकारों ने अपने ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की है। सच तो यह है कि पुरातात्विक सामग्री के अभाव में वस्तु परक इतिहास लेखन कदाचित संभव नहीं है।

10.3 इतिहास एवं साहित्य का संबंध

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। जानॅसन के द्वारा कहा गया है कि ''इतिहास का आरम्भ साहित्य के एक अंग के रूप में हुआ था।'' साहित्यिक ग्रंथ अपने काल की घटनाओं को निरूपित करते है तथा इतिहास के मुल स्त्रोत के रूप में साहित्य का ही प्रयोग किया जाता है, साहित्य के प्रस्तुतीकरण से इतिहास भी सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनैतिक उपलब्धियों का लेखा जोखा प्रसारित करता है। साहित्य व इतिहास एक दूसरे के अभिन्न अंग है। आर्विक के अनुसार, ''इतिहासकार किसी युग विशेष के काल्पनिक साहित्य की उपेक्षा नहीं कर सकता और न ही उस पर पूर्ण विश्वास कर सकता है।'' अपितु अपने स्त्रोत के आधार पर स्पष्ट करता है। यह स्पष्ट है कि साहित्य वह धुरी है जिस पर इतिहास की अवधारणाएँ चलचित्र की तरह मस्तिष्क में विचरण करती हैं।

फिरदोसी के अनुसार, ''जिस वश्तु का इतिहास विवरण देता है कविता उसी का चित्रण करती है। साहित्य ग्रंथ भी इतिहास की भांति अपने युग की घटनाओं के सत्यापन के प्रमाणिक स्त्रोत हैं। हेरोडोट्स, लिवि, टेसियस, फ्रायड एवं मैकाले के द्वारा लिखित ऐतिहासिक कृतियां भी साहित्य की दृष्टि से अत्यंत लोकप्रिय व रोचक रही हैं। डेविड ह्यूम की भी मान्यता है कि, ''इतिहास उपन्यास से अधिक रोचक है।'' एक इतिहासकार और साहित्यकार दोनों ही अपने–अपने युग का प्रतिनिधित्व करते हैं। राउन ने भी लिखा है कि, ''समस्त वैज्ञानिक विधियों कि सफलता के पश्चात् भी इतिहास सदैव साहित्य की शाखा रहेगा। कारलाइल के अनुसार, ''पुस्तकों में भूतकाल की आत्मा निवास करती है।'' आज भी इतिहास लेखन हेतु कई साहित्य ग्रन्थ मूल स्त्रोत के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। क्रोचे ने लिखा है कि, '' इतिहासकार को अतीतकालीन तथ्यों का कलात्मक एवं साहित्यिक प्रस्तुतीकरण चाहिए। अतः स्पष्ट है कि दोनों का परस्पर घनिष्ठ संबंध है।''

10.4 इतिहास व भूगोल

किसी ने कहा कि भूगोल वह रंगमंच है जिस पर इतिहास का मंचन किया जाता।भूगोल की जानकारी यदि नही है तो इतिहास की शाखाओं का अध्ययन भी संभव नहीं है। प्राकृतिक भूगोल के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं जो विश्वसनीय व अपरिवर्तनीय है। जलवायु, आर्द्रता एवं मौसम सभी निर्धारित कारक है तथा व्यक्ति के

जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव जलवायु का पड़ता है तथा जलवायु के अनुसार वहाँ की ऐतिहासिक परिस्थितियाँ निर्मित होती हैं। उदाहरण–छत्रपति शिवाजी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण गुरिल्ला युद्ध में निहित थे। सिंधु व गंगा नदी की भूमिका इतिहास मे किस स्थान पर है इस तथ्य को कोई और प्रमाण की आवश्यकता नही है– बी. शेख अली ने उल्लेख किया है कि भारत के उत्तर व पूर्व में आक्रमण के विरूद्ध क्रमशः हिमालय व आसाम के जंगलो ने रूकावट की अकथनीय भूमिका का निर्वहन किया है। भूगोल व इतिहास का सांगोपाग अध्ययन अनिवार्य है। भौगोलिक आधार के अभाव में इतिहास स्वयं को हवा में चलता हुआ अनुभव करता है। विश्वसनीय स्त्रोत के अभाव में इतिहास को जानने का प्रमुख आधार भी भूगोल ही है। भौगोलिक वातावरण पर ध्यान देने एवं विश्लेषण करने पर इतिहास का निर्धारण किया जा सकता है। प्रसिद्ध इतिहासकार एच0सी0 दर्वे की भी मान्यता है कि, ''इतिहास एक केंद्रीय सामाजिक विज्ञान है जिस पर अन्य सामाजिक विज्ञान आधारित हैं। ये उसी प्रकार सामाजिक विज्ञानों का आधार है जिस प्रकार गणित अंक विज्ञान का। पृथ्वी को केवल गतिविधियों का स्थल मानकर उसकी अवहेलना नहीं की जानी चाहिए। वास्तव में पृथ्वी कई प्रकार से मानव के खान–पान एवं जलवायु को प्रभावित करती है।'' कूटनीति एवं सैनिक इतिहास की पूर्ण एवं उचित जानकारी भी भूगोल के ज्ञान के बिना संभव नहीं है। घरेलु इतिहास का अध्ययन भी भूगोल के बिना नहीं किया जा सकता। जे0 आर0 ग्रीन ने प्रकृति के महत्व को अंकित करते हुये लिखा है, '' समस्त स्त्रोतों से अधिक विश्वसनीयपूर्ण ये दस्तावेज होते हैं। इसीलिए विद्वानों एवं इतिहासकारों ने उसके महत्त्व को स्वीकार किया है और उसे इतिहास का अभिन्न अंग माना है। भूगोल के महत्त्व पर बल देते हुए प्रमुख विद्वान लेखक मॉन्टेस्क्यू एवं बकल हंटिंगटन ने भी लिखा है कि'' देश की सभ्यता पर जलवायु का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अरस्तु एवं मॉन्टेस्क्यू ने भी यह स्वीकार किया है कि ''व्यक्ति पर जलवायु का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यह मानव व्यवहार को भी प्रभावित करती है और राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करती है।''

संक्षेप में हम कह सकते है कि यदि हमें किसी विशेष देश अथवा क्षेत्र के इतिहास को भली प्रकार अध्ययन करना चाहते हैं तो वहाँ के भूगोल का भी ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। इतिहास की समस्त प्रकाशित पुस्तकों में हम प्रारंभ में उस देश के भूगोल से संबंधित पाठ को पाते हैं जो भूगोल के अध्ययन एवं ज्ञान के महत्त्व का स्पष्ट प्रमाण देता है तथा उस विशेष देश के इतिहास पर भूगोल के प्रभाव को दर्शाता है जिसका वर्णन उस पुस्तक में उपलब्ध है।

भारत के नवीन मार्ग की खोज भी विश्व इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इंग्लैण्ड के औद्योगीकरण व शहरीकरण के इतिहास को भूगोल की सहायता से ही जाना जा सकता है, हिटलर की पराजय के करणों में एक कारण अत्यधिक ठंड रही है जो भौगोलिक कारण है। कोलम्बस व वास्कोडिगामा की भारत व अमेरिका की खोज भी एक ऐसा भौगोलिक कारण है जिस पर श्रेष्ठ इतिहास की इमारत तैयार की गई है। नगरों, ग्रामों, सड़कों व खेतों के नीचे प्राप्त साक्ष्यों में भी पूर्ववर्ती काल की तस्वीर मिलती है, भूगोल व इतिहास का संबंध पुराना व व्यापक रूप से स्वीकृत है।

10.5 इतिहास का अर्थशास्त्र से संबंध

मनुष्य की प्रगति का मानदण्ड उसकी अर्थव्यवस्था ही है क्योंकि आर्थिक इतिहास हमारे समक्ष अर्थ का तार्किक विश्लेषण करता है जिसके आधार पर उस काल की नीतियॉ, कर व्यवस्था, व्यापार वाणिज्य को हम भली–भाँति समझ सकते हैं। अर्थ के अभाव में समाज में किसी भी प्रकार की गतिविधि का संचालन असंभव है अतः इतिहासकार आर्थिक आकड़ों को एकत्रित कर उनका विश्लेषण करके अपने इतिहास के प्रमाणों को और अधिक पुख्ता करता है आर्थिक दशा का अध्ययन संबंधित इतिहास का नवीन रूप प्रस्तुत करता है जो हमें आर्थिक समस्याओं से समाधान की ओर ले जाते हैं तथा इसके आधार पर इतिहास स्वयं को एक

मजबूत डोर से बाँध लेता हैं। इतिहासकार अपने युग के आर्थिक ज्ञान की पूर्ण जानकारी रखता है जिससे वह समाज की आर्थिक दशा का सही वर्णन कर सके। वी0 शेख अली ने भी इस संदर्भ में लिखा है, ''डार्विन ने अस्तित्व के संघर्ष के संबंध में संकेत किया था और मार्क्स ने आर्थिक इतिहास पर प्रकाश डाला। विशेष रूप से 1919 ई0 की रूसी क्रांति के समय से आर्थिक इतिहास ने अत्यधिक महत्त्व ग्रहण करते हुये मानव के जीवन से संबंधित अन्य पहलूओं को प्रकाशमय कर दिया है।'' सामान्यतः इतिहासकार को गणित का ठोस ज्ञान नहीं होता है इसलिए अर्थशास्त्र का समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए पर्याप्त समय तक उसका अध्ययन करना पड़ता है जिसके कारण उसके पास इतिहास के अध्ययन के लिए अत्यंत कम समय ही रह जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र संबंधित तथ्यों व प्रमाणों के आधार पर उसके इतिहास लेखन की प्रमाणिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है क्योंकि सिक्के एवं मुद्राएँ आर्थिक इतिहास का वह सशक्त पक्ष स्पष्ट करते हैं जिसके आधार पर आर्थिक व ऐतिहासिक मूल्यांकन सहज हो जाता है। वर्तमान में इतिहास का अपने शोध ग्रन्थों व पुस्तकों द्वारा आर्थिक इतिहास के सभी पक्षों का अध्ययन समाज तक पहुँचा रहे हैं। डब्ल्यू0 एच0 कॉर्ट नें कहा कि आर्थिक इतिहास, इतिहास का वह अंग है जिसकी समझदारी के लिए अर्थशास्त्र का ज्ञान जरूरी है। आज आर्थिक इतिहासकार स्वयं से यह प्रश्न करते हैं कि वह इतिहास के प्रति समर्पित हैं या अर्थशास्त्र के प्रति। इस प्रयास को बढ़ाने के लिए क्योंकि आर्थिक इतिहास, इतिहास का अंग है। इतिहासकार वह होता है जो एक पहलू की गहराई से अध्ययन करना चाहता है और उस गहराई के लिए आर्थिक उपकरणों का उपयोग करता है। उसके नतीजे स्पष्ट व सुगम होने चाहिए ताकि काल विशेष को मानवी अनुभवों की पूर्णता में रुचि रखने वाला इतिहासकार उनका उपयोग कर सके।

10.6 इतिहास का दर्शनशास्त्र से संबंध

इतिहास–दर्शन घटनाओं में एक घटना मात्र को देखता है जबकि दर्शन इतिहास के प्रामाण्य अर्थ और वास्तविकता को निश्चित करने का दावा करता है। इतिहास के प्रामाण्य का प्रश्न नहीं उठता। उसके लिए महत्वपूर्ण प्रश्न सामर्थ्य है। जो सफल होता है उसी का इतिहास होता है। इतिहास में ईसा मसीह का महत्व ईसाई धर्म की विजय से है। मार्क्स का महत्व लेनिन और स्टालिन के कारण है। अन्यथा ईसा के नाम का पता नहीं होता और मार्क्स का पता केवल सामाजिक विज्ञान तक ही सीमित रहता। परिणामस्वरूप इतिहास–दर्शन का अभिप्राय अतीतकालिक घटना में निहित मानसिक प्रक्रिया अथवा विचार को वर्तमान और भविष्य में प्रतिरोपित करना मात्र होता है।

दार्शनिक चिंतन की अपनी परम्पराएँ है तथा दार्शनिक के द्वार है तथा अपनी विचारधारा से वे इतिहास कों प्रभावित करते है। कीथ का तात्पर्य है कि दार्षनिक के प्राक्कथन लक्षण एक निष्चित परिस्थिति के अधीन है दर्षन की पृष्ठभूमि मस्तिष्क के विचारों में चिन्तन का क्रम आरोपित करती है। कोई भी इतिहासकार हो वो किसी दार्षनिक विचारधारा से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा रहता है तथा उसके इतिहास लेखन से हम उसकी दार्षनिक मनोभूमि को समझ सकते है। अतः सन्देह नही कि दोनो विषयों मे परस्पर निकटता है। प्रसिद्ध विद्वान क्रोचे का मत है, '' दार्शनिक के प्राक्कथन, लक्षण अथवा संस्थान आविर्भाव एक निश्चित परिस्थितियों के अधीन है।'' प्रारंभिक इतिहास के लेखकों ने अपने पूर्वजों के नाम एवं कार्यों को महत्त्व व स्थायित्व प्रदान करने की दृष्टि से अपने संस्मरणों के आधार पर इतिहास लिखा था। उन्होंने अतीत में घटित होने वाली प्रत्येक घटना को वर्णित किया परन्तु आधुनिक समय में विद्वानों ने मानव के क्रिया–कलापों के साथ–साथ उसके परिवेश को जानकार मानव मस्तिष्क की विचार धारा को भली प्रकार जानने के जो प्रयास किए, उसके आधार पर इतिहास धीरे–धीरे दर्शन का स्वरूप ग्रहण करता जा रहा है। आज के युग में कई विद्वान लेखकों ने अपने अपने ढंग से इतिहास के साथ उसके दर्शन का उल्लेख अपने ग्रंथों में किया है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास और दर्शन में परस्पर निकट संबंध है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है जिसका वर्णन इतिहासकार और दार्शनिक दोनों ही सामाजिक मूल्यों व सम–सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप करते है। अतः इसमें संदेह नहीं है कि दोनों विषयों में परस्पर समीपता है और उसे किसी प्रकार नकारा नही जा सकता। जहाँ तक भारतीयों की तथा कथित अ–ऐतिहासिकता के स्त्रोत को उनके दार्शनिक सिद्धान्तों में देखने का प्रश्न है, यह ध्यातव्य है कि भारतीय विचार में वर्तमान जीवन को कभी भी सर्वथा नगण्य नहीं माना गया है। ''इह चैव वेदिथ'' – सत्य को यहीं जानना है और इसी जीवन में ही धर्म का आचरण करना है, सदैव से ही हिन्दू धर्म की यह निष्ठा रही है। कर्म और मायावाद के सिद्धान्तों को निष्क्रियता एवं निरपेक्षता का स्त्रोत मानना उन सिद्धान्तों के अज्ञान का परिचायक है। कर्म के सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या यथास्थान आगे की जाएगी। यहाँ केवल यह जान लेना पर्याप्त है कि कर्मवाद, नियतिवाद से भिन्न है तथा क्रिया – स्वातन्त्रय की अपेक्षा रखता है। मायावाद के प्रसिद्ध प्रतिपादक शंकराचार्य भी उन कार्यों से विमुख नहीं हुए जिनका निर्वाह वे अपना उत्तरदायित्व समझते थे। सारे भारत का भ्रमण करके अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन और प्रचार करने वाला दार्शनिक क्या संसार के मिथ्यात्व को इन विद्वानों के अनुसार समझता था ? संसार के मिथ्यात्व के प्रतिपादन का स्तर दूसरा है, इसमें दृश्यमान विश्व की सामान्यतया मान्य यथार्थता और तद्नुसार उत्तरदायित्व – निर्वाह का तिरस्कार नहीं निहित है। जगत् के मिथ्यात्व का अर्थ केवल इतना है कि यह परम् सत्य नहीं है। परम् सत्य केवल ब्रह्मन् है और जगत् उसका विवर्त है, जगत की सत्यता तद्प्रसूत सत्यता है तथा इसकी मिथ्या सत्ता केवल किसी अन्य सत्ता पर आश्रित होने के कारण है।

10.7 इतिहास का समाजशास्त्र से संबंध

सामाजिक इतिहास मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन है टायनबी ने लिखा है कि समाज वह कण है जिसके आधार पर इतिहास लिखा जाता है समाज वह कण है जिसके आधार पर इतिहास लिखा जाता है समाज की विभिन्न संस्थाओं व कार्यप्रणाली का अध्ययन इतिहास को समृद्ध बनाता है इतिहास व समाज दोनो एक दूसरे के पूरक है इतिहासकार की बोधगम्य दृष्टि व वर्णन की दक्षता भौतिकरूप में समाजषास्त्र के प्रारंभिक सिद्धांतो के कारण और महत्वपूर्ण हो जाता है सामाजिक प्रकिया इतिहास को एक नया दृष्टिकोण प्रदान करती है वर्तमान मे इतिहास लेखन के क्रम में सामाजिक इतिहास की भूमिका स्वतः सिद्ध हो रही है। इतिहासकार अपने युग की आवश्यकता और सामाजिक मूल्यों के अनुसार इतिहास का लेखन करते है। समय जो व्यतीत हो चुका है उसका चित्रण इतिहास में किया जाता है। काम्टे के अनुसार, ''इतिहास सामाजिक भौतिक शास्त्र है इसके अन्तर्गत मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन होता है।''

रेनियर के अनुसार,''सामाजिक इतिहास आर्थिक इतिहास की पृष्ठभूमि और राजनीतिक इतिहास भी कसौटी है।''

ट्रेवेलियन के अनुसार, ''सामाजिक इतिहास के अभाव में आर्थिक इतिहास मरुस्थल और राजनैतिक इतिहास पंगु हो जाता है।''

इ. एच. कार, ''समाजशास्त्र को यदि इतिहास के सामान्य अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बनना है तब उसे निश्चय स्वयं को अद्वितीय व सामान्य संबंध के मध्य रहना चाहिए। मानक, मीरा, चैतन्य, रामानन्द, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती इत्यादि का संबंध समाज व इतिहास दोनों से है।''

सामाजिक इतिहास के अंतर्गत हम मनुष्य एवं समाज की विभिन्न संस्थाओं एवं समस्याओं का अध्ययन करते हैं जो मानव जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलू है। सामाजिक, व्यावाहारिक पद्धति का वर्णन करने के लिए समाजशास्त्र को इतिहास की आवश्यकता है ताकि समाज की वास्तविक स्थिति को लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सके। वर्तमान शताब्दी के प्रसिद्ध समाजशास्त्री क्रेन वेबर (1864–1920 ई0) ने ऐतिहासिक अध्ययन पर अत्यधिक बल दिया है। एच0 ई0 बर्न में भी लिखा है, '' यह स्वीकार करते हुऐ कि चूकि इसने

सामूहिक जीवन में कारणों व परिणामों का उल्लेख किया है, ये एक मूलभूत सामाजिक विज्ञान है और एक मात्र विषय है जो सामाजिक प्रक्रिया का सामान्य दृष्टिकोण व कारकों को प्रस्तुत करने की आशा करता है। चूकि इतिहास को ही तुच्छ भाग नही जिसके द्वारा वह समूह की आर्थिक, राजनैतिक, सैनिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक दशाओं एवं परिस्थितियों के वर्णन के लिए प्रतिबद्ध है। बी0 शेख अली का भी मत इस संदर्भ में उल्लिखित कर सकते है, उन्होंने ने लिखा है, ''संक्षेप में समाजशास्त्र समाज के अध्ययन में इतिहास की अत्यधिक सहायता कर रहा है जो केवल सामाजिक अध्ययन तक सीमित नही है अपितु निरंतर परिवर्तन एवं विकास को भी प्रस्तुत करता है। सामाजिक प्रक्रिया एवं सामाजिक कारक इतिहास को नवीन दृष्टिकोण देकर वंशानुगत इतिहास से अलग हमारे दृष्टिकोण को विस्तृत कर रहें है। आजकल हमारे भारतवर्ष में भी इतिहासकार सामाजिक इतिहास लेखन की ओर अपना ध्यान केंद्रित कर रहें जो पहले भी पश्चिम के देशों में प्रसिद्धि व महत्त्व प्राप्त कर चुका है। समाज व व्यक्ति अविभाज्य है, जन के शब्दों में कोई भी व्यक्ति अपने आपमे अलग–अलग द्वीप जैसा नहीं होता, हर व्यक्ति महाद्वीप का अंश पूर्ण एक अंग होता है। जैसे ही हम जन्म लेते हैं संसार हमारे प्रभाव डालती है और हमें एकल से सामाजिक एकल में परिवर्तित कर देता है। इन दोनों का अस्तित्व परस्पराधित होता है। व्यक्ति के रूप में कार्य करते हुए सामाजिक शक्तियाँ मनुष्य को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते रहते हैं और सामाजिक स्तर पर घटित कोई भी ऐतिहासिक घटना या कार्य व्यक्ति के अभाव में सम्पन्न नहीं हो सकते। इतिहास व्यक्ति व समाज की सैद्धान्तिकता के धागों को इस प्रकार बुनता है कि ये दोनों ऐतिहासिक मानव का सृजन करते हैं जिसके क्रियाकलाप का ज्ञान इतिहास को अध्ययन विधा के रूप में प्रतिस्थापित करते हैं।

10.8 इतिहास व राजनीति का संबंध

इतिहास व राजनीति एक सिक्के के दो पहलू हैं। इतिहासकार अपने लेखन में राजनीतिक तथ्यों का समावेश करता है तथा उसके प्रस्तुतीकरण से राजनीति व इतिहास दोनों शोध की नई संभावनाओं को जन्म देते हैं। प्रोफेसर एक्टन का कथन है कि, ''राजनीति विज्ञान है जो इतिहास की धारा से इस प्रकार जुड़ा है जैसे कि स्वर्ग के कण नदी की रेत से जुड़े हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो राजनीति वह पक्ष है जिसकी विभिन्न धाराएँ जैसे– राजा, प्रजा, कर, जनता, संविधान, न्याय इत्यादि का अध्ययन इतिहास की मुख्य धारा के साथ मिलकर किया जाता है राजनीति शास्त्र व इतिहास के मध्य परस्पर संबंध ही है कि इतिहास लेखन में राजनीति तथ्यों को भली–भाँति प्रस्तुत किया जाता है। राजनीति विज्ञान के बिना इतिहास जड़विहीन है, इतिहास राजनीति से अलग हो जाए तो साहित्य मात्र रह जाता है यदि राजनीति इतिहास से अपना संपर्क समाप्त कर दे तो वह बर्बर बन जाती है। मानव जीवन राजतंत्र से, एक तंत्र से, प्रजातंत्र से अथवा तानाशाही द्वारा शासित रहा है, इतिहास ज्ञान ही राजनीति को इस योग्य बना देता है कि वह राजनीति को समझ सके अपनी भूमिका का एक प्रकार से निर्वहन कर सके, राजनीति विज्ञान के इतिहास का मार्गदर्शन होता है। बी0 शेख अली की मान्यता है कि इतिहास के विस्तृत विषय होने के कारण उसके राजनीतिक, संवैधानिक, कूटनीतिक, सैनिक, आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक आदि अनेक पहलू हैं। इतिहास केवल इन क्षेत्रों से ही संबंधित नहीं है अपितु ये उसके प्रमुख अंग है। इतिहास एवं राजनीतिक विज्ञान की इस घनिष्ठता को प्रदर्शित करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार ने लिखा है, ''इतिहास का राजनीतिक विज्ञान के बिना कोई अस्तित्व नहीं है और राजनीतिक विज्ञान बिना इतिहास जड़ विहीन है।'' प्रो0 एक्टन ने भी इस संदर्भ में लिखा है, ''राजनीतिक विज्ञान वह विज्ञान है जो इतिहास की धारा से इस प्रकार जुड़ा है जैसे की स्वर्ण के कण नदी की रेत से जुड़े होते है।'' पोलिबस ने उचित ही लिखा है कि, इतिहास का उपयोग, राजनीति की कला की अध्ययन में निहित है। सर जॉन सीले ने भी संदर्भ में संकेत करते हुये लिखा है कि, '' राजनीति कठोर है जबकि उसे इतिहास के द्वारा विनम्र नहीं बनाया जाता है और इतिहास केवल साहित्य मात्र है,

यदि वह प्रयोगात्मक राजनीति से संबंध भंग कर लेती है।'' एक प्रसिद्ध इतिहासकार ने भी इस संदर्भ में यह उल्लेख किया है, ''इतिहास राजनीति में पुनः अत्यधिक सहायक होता है क्योंकि राजनीतिक पहलू ही वह भाग है जिसका उल्लेख इतिहास लेखन के अंतर्गत कियाा जाता है और इतिहास ज्ञान ही राजनीतिज्ञ को इस योग्य बना देता है कि वे राजनीति को भली प्रकार समझ सकें और अपनी भूमिका का ठीक प्रकार एवं प्रसन्नता से निवार्ह कर सके।

10.9 इतिहास व मनोविज्ञान

मनोविज्ञान मन के अंदर प्रविष्ट कर मनोभूमि व मनोभावों का चिंतन करता है। प्रत्येक इतिहास में चरित्र के उदाहरण मिलते है तथा चारित्रिक व्यवहार विष्वाष व प्रेरणा के संबंध मे बेहतर उदाहरण के इतिहास के चरित्र को जीवंत बनाते है। प्रोफेसर मार्विन ने लिखा है कि सामाजिक मनोविज्ञान ऐतिहासिक समस्याओं के विष्लेषण में लाभदायक उपकरण सिद्ध होता है। व्यक्ति वातावरण से प्रभावित होता है तथा इतिहासकार के लेखन में उसके जीवन/परिवेष व मनोभावो का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है इतिहासकार हर व्यक्ति की मनोदशा के पक्ष अपनी लेखनी में करता है इतना ही नही वह सकारात्मक व नकारात्मक दृष्टिकोण पर भी अपने तर्को से सही मार्गदर्शन कर एक श्रेष्ठ मनोविज्ञान बनता है। इतिहासकार ही वह चाबी है जो मन के आंतरिक भावो के तालों को ऐतिहासिक चाभी से खोल सकते है। इतिहासकार के निर्णय सदैव महत्वपूर्ण सिद्ध होगे यदि वह मनोविज्ञान की सभी दशाओं से परिचित होगा। जैन व बौद्ध संत भक्ति व सूफी आन्दोलन तथा 1857 की क्रांति में जनता की भागीदारी यह सिद्ध करती है कि इन क्रांतियों ने समाज के हर वर्ग की मनोभूमि को झकझोर दिया तथा परिणाम हमारे सामने है।

प्रो. के वार्ने के अनुसार, ''इतिहास अतीत के संबंध में मनोवैज्ञानिक की आदिकाल से आज तक की ठोस जानकारी देता है, इतिहास भी मनोविज्ञान से मानव गतिविधियों, विश्वासों व प्रेरणा प्रवृत्ति के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर उसके क्रियाकलापों व विश्वास पर नियंत्रण स्थापित करता है।

प्रो. के. नारविक ने लिखा है कि सामाजिक मनोविज्ञान 26 मामलों में ऐतिहासिक समस्याओं का विश्लेषण करने में लाभदायक सिद्ध होता है। समूह मनोविज्ञान की जानकारी व ज्ञान के कारण इतिहासकार विभिन्न शांतियां व युद्ध में जन साधारण के मनोभावों से अवगत होने लगे हैं। इतिहास एवं मनोविज्ञान इस आशय से भी एक–दूसरे से जुड़े हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने वातावरण से प्रभावित होता है। वास्तव में इतिहासकार के व्यक्तित्व जीवन और वातावरण का उसके लेखन व निर्णयों पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। इसके अभाव में उसके निर्णय पूर्वाग्रहों से परिपूर्ण होंगे तथा उसके लिए यह संभव नहीं होगा कि वह वांछनीय वस्तुनिष्ठता को प्रस्तुत कर सके। सर्वेक्षण के द्वारा लोगों के मानसिक पक्षों जैसे – भावनाओं, मत, मनोवृत्तियाँ, मूल्य व दृष्टिकोणों का अध्ययन किया जाता है। इतिहासकार के लिए समूह मनोविज्ञान की अपेक्षा व्यक्तिगत मनोविज्ञान की कम प्रासंगिकता है। विशिष्ट व असाधारण रुचि रखने के कारण इतिहास राजनीति व आर्थिक परिस्थितियों पर जोर देता है परन्तु फिर भी जैसे– प्रथम विश्व युद्ध की पूर्व संध्या पर दिखाई देने वाली युद्ध की इच्छा का अध्ययन मनोविज्ञान की प्रवृत्ति में हो रहे मनुष्य की आक्रामक प्रवृत्ति को अध्ययन की रोशनी में होना चाहिए।

10.10 इतिहास एवं प्राकृतिक विज्ञान का संबंध

प्रकृति अर्थात हमारे इर्दगिर्द जो कुछ भी प्रदत्त है उसे कहते है प्रकृति भी समस्त धटनाए किसी भी इतिहास मे महत्वपुर्ण भुमिका अदा करती है। प्रकृति के सहचर बनकर ही इतिहास की लेखनी चलती है। प्रकृति के पर्वत/जंगल/नदिया/पहाड़ /भूमि/मैदान इतिहास के एक घटक के रूप में उपलब्ध रहते है तथा इनकी उपस्थिति ही इतिहास के परिदृष्य को बदलती रहती है। प्रो. वातष के अनुसार –मानव के कार्यो व उपलब्धियों पर सर्वाधिक प्रभाव प्राकृतिक घटनाओं का पड़ता है षान्ति इतिहास का आधारभुत ज्ञान है

क्योकि प्राकृतिक घटनाए मनुष्य के जीवन को यषोमय बनाती है बषर्ते उसने उनके साथ तारतम्य स्थापित कर लिया हो। स्पेंगलर और टॉयनवी जैसे विद्वानों ने प्राकृतिक विज्ञान और इतिहास के मध्य परस्पर घनिष्ठ संबंध होने का समर्थन कियाा है। कलिंगवुड ने भी इस संदर्भ में लिखा है, '' प्राकृतिक विज्ञान सम्पूर्ण रूप से ज्ञान नही है। अपनी सत्ता के लिए इसे दूसरे ज्ञान पर निर्भर रहना पड़ता है, जो एक प्रकार का ऐतिहासिक ज्ञान कहा जाता है।

मानव इतिहास के निर्माण उसके भाग्य निर्धारण में प्रकृति का विशेष योगदान होता है और व्यक्ति की गतिविधियाँ प्राकृतिक ऋतुओं से प्रभावित होती है। हमारे देश में हिमालय ने भी स्पष्ट लिखा है कि मानव के कार्यो और उपलब्धियों पर सबसे अधिक प्रभाव प्राकृतिक घटनाओं का ही पड़ता है। मराठों को लड़ाकू और मंगोलों को लूटेरा बनाने की वहाँ की जलवायु का सर्वाधिक प्रभाव भी सर्वसिद्ध है। विभिन्न युद्धों के निर्णय में भी प्राकृतिक घटनाओं ने भी महत्त्वपूर्ण अदा की है। प्रसिद्ध विद्वान हर्डर का भी मत है कि, प्राकृतिक विज्ञान और इतिहास में अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। उसके अनुसार, ''मानव के विकास में प्राकृतिक परिस्थितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि सारा ब्रह्माण्ड एक सावभवी शक्ति शरीर है।'' वस्तुतः इतिहास प्रकृति से अधिक आधारभूत है क्योंकि प्रकृति का ज्ञान भी इतिहास की ही उपज है। मानव का चाँद पर उतरना भी ऐतिहासिक तथ्य है। अतः दोनों के मध्य घनिष्ठ संबंध पूर्णतया स्पष्ट है।

10.11 इतिहास व भाषा विज्ञान का संबंध

भाषाओं का अपना समृद्ध इतिहास है। प्रत्येक भाषा के आधार पर इतिहास निर्मित होता है। संस्कृत/पाली /प्राकृत/अरबी/फारसी/ उर्दू व हिन्दी भाषाओं के मूल ग्रंथ इतिहास का सजीव वर्णन करते है। जिसको आधार मानकर इतिहास को पूर्ण किया जाता है। फिर भी काल के साहित्य में भाषा केंद्र में होती है। उन्ही भाषाओं का ज्ञान होना किसी भी इतिहासकार के लिये अनिवार्य है। इतिहासलेखन के लिये भाषा लेखक का षस्त्र है क्योंकि भाषा के द्वारा रचित साहित्य में उस भाषा का विकास व विस्तार व राजवंषो की उसकी महत्ता/स्थान व स्थिति का निर्धारण होता है। वो इतिहास को अनेक महत्वपूर्ण स्तंभो की जानकारी देता है। भाषा विज्ञान की जानकारी के अभाव में लेखन कार्य कदाचित् संभव नहीं है। निःसन्देह इतिहास लेखन का प्रमुख आधार परिस्थिति और देश है और इसी आधार पर भिन्न–भिन्न भाषाओं में इतिहास लिखा गया है। अतः विभिन्न भाषाओं का ज्ञान इतिहास लेखन के लिए अनिवार्य है। पाश्चात्य देशों के विद्वानों नें प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया क्योंकि प्राचीन भारतीय इतिहास के अनेक मूल स्त्रोत इसी भाषा में उपलब्ध थे। बौद्धकालीन साहित्य भी संस्कृत व पाली भाषा की जानकारी के अभाव में प्रभावशाली ढंग से लिखना संभव नहीं है। मध्यकालीन इतिहास लेखकों के लिए उर्दू, अरबी व फारसी भाषा का ज्ञान नितान्त आवश्यक है ताकि वे मूलग्रन्थों को पढ़कर वस्तुस्थिति का सजीव चित्र प्रस्तुत कर सकें। आधुनिक इतिहास लेखन हेतु अंग्रेजी का ज्ञान भी उसी प्रकार आवश्यक है जैसा कि जैन ग्रन्थों के अध्ययन में प्राकृत भाषा का। इतिहास लेखन व चिन्तन की विभिन्न धारणाएं चूंकि अलग–अलग भाषाओं में लिखी गई है इसलिए एक इतिहासकार से यह आशा की जाती है कि उसे भाषा विज्ञान में पारंगत होना चाहिए ताकि वह विभिन्न भाषा में लिखे गए ग्रन्थों का अध्ययन करके उन अवधारणाओं को भली प्रकार समझ सके जिन्हें विद्वानों द्वारा अपनी–अपनी भाषाओं में विश्व को उपलब्ध कराया है। भाषा पारस्परिक संवाद का एक मात्र आधार है तथा उसी भाषा को स्तंभ मानकर इतिहासकार उस काल का संबृद्ध व समग्र इतिहास रचता है, भाषा की अपनी परिधि होती है जिसके अन्दर भाषा, साहित्य व व्याकरण का संबल प्राप्त करती है। इन दोनों के सहयोग से भाषा किसी भी काल की परम्पराओं, घटनाओं की अभिव्यक्ति को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करती है। जो भाषा व्यक्ति बोलता है वह उसकी व्यक्तिगत विरासत नहीं वरन् जिस

समुदाय में पला–बढ़ा हो उसकी सामाजिक देन है। भाषा व परिवेश दोनों ही उसके विचारों के चरित्र का निर्माण करने में सहायक होते हैं।

10.12 इतिहास व व्यवहारिक विज्ञान में संबंध

इतिहास को विज्ञान व कला दोनो ही कहा गया है परंतु इतिहास के महत्व में व्यवहारिक विज्ञान भी समाहित है। इस तथ्स से इंकार नही किया जा सकता प्रयोग के आधार पर क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान कहा गया परंतु इतिहास सक्रियता का वर्णन करता है तथा इतिहासकार विचारो ग्रंथो व संस्थाओं का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करता है। प्रो. वातष के अनुसार इतिहासकार वैज्ञानिक विष्लेषण द्वारा ऐतिहासिक घटनाओ को बोधगम्य बनाती है अतः दोनो के संबंध को सहर्ष स्वीकार करा पाता है। वर्तमान समय में इतिहास का स्वरूप उत्तरोत्तर वैज्ञानिक होता जा रहा है जिसके कारण इतिहास के महत्व में भी वृद्धि हुई है। डिल्थे का कथन है कि इतिहास केवल विज्ञान ही नहीं अपितु उससे बढ़कर है। रेनियर के अनुसार भी इतिहास विज्ञान की श्रेणी में रखा जा सकता है। कॉलिंगवुड के अनुसार, ''विषय को क्रमबद्ध ज्ञान प्रदान करने के कारण इतिहास एक विशेष प्रकार का विज्ञान है।'' फिर भी एक इतिहासकार को हम वैज्ञानिक नहीं कह सकते हैं क्योंकि उसके पास वैज्ञानिक के समान (प्रयोगशाला) नहीं होती। वह सत्य वर्णन के लिए पुस्तकालय पर निर्भर रहता है।

इतिहास और विज्ञान दोनों में विकासवादी सिद्धांत को मान्यता प्राप्त है। जिस प्रकार एक इतिहासकार सभ्यताओं के विकास का वर्णन करता है उसी तरह से डार्विन ने इस विकास के सिद्धांत को अपनी पुस्तक 'ओरिजिन ऑफ स्पेसीज' में दर्शाया है। फिर भी दोनों में एक विशिष्ट प्रकार का अन्तर यह है कि इतिहास में हम सक्रिय मस्तिष्क का अध्ययन करते हैं जबकि विज्ञान में निर्जीव वस्तुओं का अध्ययन किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि इतिहास क्रियाशील मस्तिष्क का वैज्ञानिक अध्ययन है। इतिहासकारों ने अपने अन्य विचारों एवं संस्थाओं से इतिहास में भी विकासवादी सिद्धान्त को मान्यता दी है। जीव विज्ञान हमें यह बताता है कि प्रकृति में शक्तिमान का ही अस्तित्व रहता है। परन्तु विल ड्वेन्ट ने व्यक्ति के संदर्भ में भी इसे सच मानते हुए लिखा है, ''जानवर

10.13 इतिहास व नीतिशास्त्र में संबंध

नीति अर्थात नियम व कायदे जो जीवन को कसकर बाधकर रखते है तथा इनका पालन करने से जीवन श्रेष्ठ व आदर्ष बनता है। दूसरे षब्दों में कहे तो सदाचार का पालन करना व जीवन में नैतिक जिम्मेदारी का निर्वहन करना। हीगल के इतिहास व राजनीति के नियमों को नैतिक विज्ञान के आधार पर समझा जा सकता है।

ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या नीतिपूर्वक करके इतिहास के पुर्वाग्रह से बचा जा सकता नीतिषास्त्र मे मानव को नैतिक कार्यो का अध्ययन के इतिहास की विषयवस्तु है। राजनीति में सदाचार के नियमों का अध्ययन किया जाता है और नीतिशास्त्र में भी नीतिसंगत पहलुओं का अध्ययन करते हैं। चूंकि अतीत की राजनीति ही इतिहास है अतः जिस इतिहास का हम अध्ययन करते हैं वह नैतिकता से पूर्ण होना चाहिए। नीतिशास्त्र के अभाव में हमें इतिहास के सभी अच्छे व बुरे पहलुओं को एक दृष्टि से देखना पड़ता है। काई भी इतिहासकार नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों की उपेक्षा करके सही इतिहास प्रस्तुत नहीं कर सकता। व्हीगल के इतिहास व राजनीति के नियमों को नैतिक विज्ञान के आधार पर ही समझा जाता है और इन नियमों को स्थायी व अपरिवर्तनशील स्वीकार किया जाता था परन्तु कालान्तर में इन्हें अनिश्चित मान लिया गया। नैतिक नियम मूल रूप में नीतिशास्त्र का विषय होते हैं परन्तु सभी युगों में उनका प्रभाव एक प्रकार का नहीं होता है। इतिहासकार टॉयनवी नें भी उल्लेख किया है कि, ''नैतिकता और यथार्थता के परिपेक्ष्य में तथ्यों का अन्वेषण किया जाना चाहिए। इतिहास शब्द की व्याख्या से भी स्पष्ट है कि वह जो वास्तव में घटित

हुआ है परन्तु इन ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या नीतिपूर्ण ढंग से करके हम उसे पूर्वाग्रहों से बचा सकते हैं।'' अतः स्पष्ट है कि इतिहास और नीतिशास्त्र में परस्पर घनिष्ठ संबंध है। एक के अभाव में दूसरे का महत्व स्वयं ही कम हो जाता है।

10.14 इतिहास तथा संस्कृति में संबंध

इतिहास को बिना संस्कृति व संस्कृति के बिना इतिहास का ज्ञान अधूरा है। संस्कृति की सुगंध से इतिहास की धरोहर सुविकसित होती रहती है। इतिहास से संस्कृति के विभिन्न आयाम परिभाषित होते हैं। इतिहास की सांस्कृतिक धरोहर उन तथ्यों को प्रस्तुत करती है जो संस्कृति की जड़ है। इतिहास की धरोहर पर संस्कृति अपने हस्ताक्षर करती है और वही उस इतिहास की विरसितवण पाते है।

10.15 इतिहास तथा मानवशास्त्र में संबंध

सामाजिक विषयों के वर्गीकरण के अंतर्गत मानवशास्त्र भी एक शाखा है जिसका इतिहास से घनिष्ठ संबंध है। गोविन्द चन्द्र पाण्डे के अनुसार, ''मानव का अध्ययन समाजशास्त्र एवं इतिहास दोनों में किया जाता है।'' प्रारम्भ में दोनों का अध्ययन एक साथ किया जाता था परन्तु डिलथे ने दोनों को स्वतंत्र विषय के रूप में अलग–अलग कर दिया। प्रथम में मानव का अध्ययन व दूसरे में उसके क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य को ऐतिहासिक प्राणी कहने का तात्पर्य यह है कि उसमें मानव समाहित है। मानव विज्ञानियों का मानना है कि आदिमानव से सभ्य व सुसंस्कृत मानव की अपेक्षा व्यक्तिपरखता कम थी। मानव प्रकृति नामक निरंतर परिवर्तनशील अवधारणा इतनी वैविध्यपूर्ण रही है कि इसे एक ऐतिहासिक तथ्य न मानना कठिन है और इसका आधार सदैव तत्कालीन सामाजिक परिवेश व परंपराएँ रही हैं।

10.16 इतिहास व सांख्यिकी में संबंध

सांख्यिकी गणना का विज्ञान है। इसमें तुरंत अंक का निर्धारण कर दिया जाता है। प्रो. लारेंस स्टोन के अनुसार, ''सांख्यिकी माप से अनिश्चितता दूर हो जाती है तथा निश्चितता एवं तथ्य रह जाते हैं, इसके अभाव में सामाजिक तथ्यों का सामान्यीकरण गलत हो सकता है। इसका प्रयोग आर्थिक इतिहास लेखन में किया जाता है।'' समाज में होने वाले व्यापार, व्यवसाय, आयात–निर्यात का लेखा–जोखा सांख्यिकी के द्वारा हो सकती है। सांख्यिकी का अर्थ समकों या आंकड़ों से होता है। जैसे– राष्ट्रीय आय एवं उत्पादन, जनसंख्या इत्यादि।

डॉ. बाउले के अनुसार, ''सांख्यिकी अनुसंधान के किसी विभाग से संबंधित तथ्यों का ऐसा संख्यात्मक विवरण है जिन्हें एक दूसरे के संबंध से रखा जा सके।'' सोलिगमैन के अनुसार, ''सांख्यिकी वह विज्ञान है जो अनुसंधान के किसी क्षेत्र पर प्रकाश डालने वाले आँकड़ों के संकलन, प्रस्तुतीकरण, तुलना व विवेचना की रीतियों से संबंधित होता है।

10.17 इतिहास व कम्प्यूटर

कम्प्यूटर का उपयोग इतिहास के क्षेत्र में तेजी से प्रवेश कर रहा है। ऐतिहासिक जनसंख्या शास्त्र प्रासंगिक दस्तावेज, जटिल आँकड़ों को कम्प्यूटर के बिना संभव नहीं है। विभिन्न सर्वे, प्रश्नावली के परिणाम कम्प्यूटर से ही संभव है। कम्प्यूटर ने इतिहास के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के कार्यों को सरलता से स्पष्ट कर दिया है।

10.18 सारांश

इतिहास ज्ञानार्जन करने का वह उपक्रम है जो अतीत के सत्य का उद्घाटन तो करता है साथ ही वर्तमान के लिये प्रासंगिक तथा भविष्य के लिये मार्गदर्शक भी है, मानव की सहज जिज्ञासा से ही उत्पन्न हुए प्रश्न तथा अपने प्रश्नों की समझ को उसने परीक्षण व तर्कों के आधार पर निष्कर्ष के रूप के रूप में प्रतिष्ठित किया जिसे इतिहास कहा गया। मनुष्य चेतनशील है, तथा अपनी चैतन्यता को परिणित करने के लिए जिन

प्रश्नों का, जिन साधनों का प्रयोग करता है वे उसके मन में उठने वाले असंख्य प्रश्न होते हैं। इन्ही प्रश्नों व उत्तर के सागर में वह डूब कर उन रहस्यों तक पहुँचता है जहाँ अभी तक सबकुछ अज्ञान के तिमिर में छिपा था। मानव स्वभाव की इसी भिन्नता के कारण एक की सहायता से दूसरे का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तथा समाज के अन्य क्षेत्रों का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं उन सभी का ऐतिहासिक अस्तित्व से कितना मेल खाता है। इतिहास व्यक्ति की क्रिया, भावना, भौगोलिकता की भावना को स्पष्ट करता है तथा इसके लिए अन्य विषयों से भी संबंध होना स्वभाविक प्रक्रिया है, इतिहास का ज्ञान एक अकादमी मात्र नहीं वरन् वह पूरी मानवता की संपत्ति है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न–

लघु उत्तरीय प्रश्न्

इतिहास विषय की वर्तमान प्रासंगिकता को स्पष्ट करिये।

इतिहास का सांख्यिकी से क्या संबंध है ? इस पर प्रकाश डालिए।

10.19 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. इतिहास लेखन धारणाएँ तथा पद्धतियाँ– Dr. K.L. Khurana Dr. R.K. Bansal,लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा (2013–14)
2. इतिहास क्या है – ई. एच. कार,MUCMILLAN PUBLICATIONIndia Limited 2012
3. शोध पद्धतियां – बी. एल. फाड़िया,साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा 2015
4. इतिहास मूल्य और अर्थ – अतुल कुमार सिन्हा,अनामिका पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 2010
5. इतिहास दर्शन – झारखण्डे चौबे,विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी 2011
6. इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त–डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय,राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2007
7. इतिहास का स्वरूप – आर्थर मारविक ग्रन्थ शिल्पी प्रा.लि. दिल्ली 2009

10.20 निबंधात्मक प्रश्न

इतिहास की कोई तीन विषय के साथ सहभागिता को प्रमाणित कीजिए।

इतिहास के स्त्रोत के रूप में पुरातत्व की भूमिका का वर्णन कीजिए।

इकाई ग्यारह : इतिहास के स्रोत

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 ऐतिहासिक स्रोतों के प्रकार

- **11.3.1 ऐतिहासिक स्रोतों की परिभाषा**
- **11.3.2 प्रागैतिहासिक काल के स्रोत**
- **11.3.3 प्रागैतिहासिक गुफ़ा-चित्र**
- **11.3.4 मृदभांड**
- **11.3.5 मूर्तियाँ**
- **11.3.6 प्रागैतिहासिक कब्रें**
- **11.3.7 समुद्र की सतह पर प्राप्त नगर**
- **11.3.8 उपकरण**

11.4 प्राचीन भारत के ऐतिहासिक स्रोत

- **11.4.1 पुरातात्विक भग्नावशेष**
- **11.4.2 ऐतिहासिक गुफ़ा-चित्र**
- **11.4.3 सरकारी दस्तावेज़**
- 11.**4.4 अभिलेख**
- **11.4.5 सार्वभौमिक इतिहास**
- **11.4.5 भौगोलिक खोजों का इतिहास**
- **11.4.6 मुद्रा शास्त्र**
- **11.4.7 पुरा-लिपि शास्त्र**

11.5 इतिहास के लिखित स्रोत

- **11.5.1 साहित्यिक स्रोत**
  - **11.5.1.1 धार्मिक साहित्य**
  - **11.5.1.2 धर्म-निरपेक्ष साहित्य**
  - **11.5.1.3 यात्रा वृतांत**

11.6 इतिहास विषयक ग्रन्थ

11.7 संग्रहालय, अभिलेखागार तथा पुस्तकालय

11.8 महल, किले और स्मारक

11.9 यूरोपीय पुनर्जागरणकालीन कला

11;10 मौखिक इतिहास

11.11 ऐतिहासिक स्रोत

11.11.1 प्राथमिक स्रोत अथवा मौलिक स्रोत

11.11.2 अनुषंगी स्रोत अथवा सहायक स्रोत

11.12 महान सभ्यताएं

11.12.1 मिस्र की सभ्यता

11.12.2 हड़प्पाकालीन सभ्यता

11.12.3 ओल्मेक सभ्यता

11.12.4 ईरान की सभ्यता

11.13 इतिहासेतर विषयों के ग्रंथों का ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में उपयोग

11.14 सारांश

11.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.**16 संदर्भ ग्रंथ सूची**

11.17 निबंधात्मक प्रश्न

11 .1 प्रस्तावना

वो सभी तथ्य जो कि किसी विशिष्ट काल, किसी विशिष्ट क्षेत्र अथवा किसी विशिष्ट ऐतिहासिक व्यक्तित्व के विषय में प्राथमिक अथवा अनुषंगी जानकारी उपलब्ध कराते हैं, उन्हें ऐतिहासिक स्रोत कहा जाता है.प्रागैतिहासिक गुफ़ा-चित्र, उत्खनन से प्राप्त नगर, भवन, मृदभांड, मूर्तियाँ, मुद्राएँ आदि प्राथमिक ऐतिहासिक स्रोत कहे जा सकते हैं. अभिलेख, सिक्के, उपकरण, अस्त्र-शस्त्र, वैज्ञानिक आविष्कार विश्व-विख्यात हैं. इन चित्रों के माध्यम से हम तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का अनुमान लगा सकते हैं. भारत में भीमबैठका (मध्यप्रदेश) को गुफ़ा-चित्रों को यूनेस्को ने 'वर्ड हेरिटेज साइट' घोषित किया है.

मृदभांडों के माध्यम से इतिहास, विशेषकर प्रागतिहासिक काल एवं प्राचीन काल की अनेक अनबूझी पहेलियों को सुलझाया जा सकता है. मिस्र की सभ्यता की अनेक मूर्तियाँ तत्कालीन धार्मिक आस्था तथा कलात्मक विकास की कहानी कहती हैं. हड़प्पा की सभ्यता से प्राप्त नृत्यांगना की मूर्ति तत्कालीन सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास का प्रमाण है. उपकरण, मानव-जाति के विकास की कहानी बताते हैं. अस्त्र-शस्त्र की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत के रूप में गणना की जाती है. किसी भी काल की कब्रों को उस काल के लिए महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत माना जाता है. इन कब्रों से हमको तत्कालीन धर्म, संस्कृति, आचार-विचार के विषय में उपयोगी जानकारी मिलती है.
आधुनिक इतिहासकारों द्वारा समुद्र-विज्ञान का उपयोग समुद्र के भीतर लुप्त सभ्यताओं तथा नगरों की खोज में किया जा रहा है. समुद्र की तलहटी में प्राप्त ऐतिहासिक भग्नावशेष भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत हो सकते हैं अजंता की गुफ़ाओं के चित्रों का हम तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए उपयोग कर सकते हैं. शिलाओं-दान ,धार्मिक ,पत्रों एवं मुद्राओं पर उत्कीर्णित प्रशासनिक-ताम्र ,स्तूपों ,स्तंभों ,दीवालों , .विषयक आदि अभिलेखों की ऐतिहासिक स्रोतों में गणना की जाती है-सम्बन्धी अनुदान

सरकारी दस्तावेजों के माध्यम से हम इतिहास की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं. सार्वभौमिक इतिहास विषयक ग्रंथों का अध्ययन कर हम वैश्विक इतिहास के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं. भौगोलिक खोजों, औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना तथा वाणिज्यिक क्रान्ति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है. भौगोलिक खोजों के इतिहास को हम ऐतिहासिक स्रोत मान सकते हैं. मुद्राओं तथा सिक्कों के माध्यम से हम तत्कालीन व्यापार, अर्थ-व्यवस्था, सामाजिक संगठन, धार्मिक आस्था, धामिक दृष्टिकोण, सैनिक उपलब्धि, सांस्कृतिक गतिविधि, तकनीकी प्रगति आदि के विषय में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं.

प्राचीन लिपियों को पढ़ पाने से हमको इतिहास के रहस्यों को उद्घाटित करने में बहुत सफलता मिली है. धार्मिक साहित्य अपने समय के धार्मिक विश्वास, सामाजिक-व्यवस्था, मानव-आचरण, रीति-रिवाज, आचार-विचार, जनीतिक संस्थाओं, सांस्कृतिक स्थिति का प्रामाणिक चित्रण करते हैं. धर्म-निरपेक्ष साहित्य तत्कालीन सामाजिक व आर्थिक दशा का चित्रण करता है.

विदेशी यात्रियों के यात्रा-वृतांतों को हम महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत मान सकते हैं. इन वृतांतों से से हमको इतिहास के अनेक अनछुए पहलुओं की जानकारी मिलती है. 'रामायण', 'महाभारत', 'दि इलियाड', 'दि ओडसी' हेरोडोटस कृत 'दि हिस्ट्रीज़', प्लेटो कृत 'दि रिपब्लिक', कौटिल्य कृत 'अर्थशास्त्र', इब्न खलदून कृत 'मुक़द्दमा' निकोलो मेकियावेली कृत 'दि प्रिंस', थॉमस मोरे कृत 'उटोपिया', एडवर्ड गिबन कृत 'दि डिक्लाइन एंड फ़ाल ऑफ़ दि रोमन एम्पायर', ओसवाल्ड अर्नाल्ड स्पेंगलर कृत 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट', अर्नाल्ड जोज़फ़ टॉयनबी कृत 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' लुई फ़र्नान्डेज़ कृत 'डिस्कवरीज़ एंड इन्वेंशंस', जोसेफ़ जेकोब्स कृत 'दि स्टोरी ऑफ़ ज्योग्राफिकल डिस्कवरी' आदि ग्रंथों को हम ऐतिहासिक स्रोत मान सकते हैं.

विश्व के विभिन्न छोटे-बड़े संग्रहालयों में इतिहास के प्राथमिक स्रोतों एवं अनुषंगी स्रोतों का अपार भंडार है. इसी प्रकार विश्व के शीर्षस्थ अभिलेखागारों तथा पुस्तकालयों में प्राचीनतम पांडुलिपियों से लेकर आधुनिकतम ऐतिहासिक ग्रंथों का ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में उपयोग किया जा सकता है. महल, किले और स्मारक भी इतिहास के स्रोत होते हैं. मिस्र के पिरामिड, चीन की दीवाल आदि के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं. उत्तरी-यूरोप में विकसित पुनर्जागरणकालीन कला उस काल में हुई दर्शन, साहित्य, संगीत और विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति का प्रतिबिम्बन है. भारत में ज्ञान के क्षेत्र में श्रुत परंपरा का अत्यंत आदरपूर्ण स्थान है. यूनानी इतिहासकारों- हेरोडोटस तथा थ्यूसीडाइड्स ने, अपने इतिहास लेखन में मौखिक

इतिहास का अत्यधिक आश्रय लिया है. आधुनिक काल में मौखिक इतिहास की महत्ता बढ़ गयी है. लोक-गाथा, लोक-गीत, आल्हा, जनश्रुति आदि मौखिक इतिहास के अंतर्गत आते हैं.

प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत समकालीन साक्ष्य आते हैं. अनुषंगी स्रोत अथवा सहायक स्रोत वो साक्ष्य होते हैं जिनको दर्ज करने वाला उस घटना के समय वहां विद्यमान नहीं होता है. मिस्र के पिरामिडों का अध्ययन कर तत्कालीन सामाजिकवर्ष 3500 से 5000 उत्खनन से प्राप्त लगभग .राजनीतिक स्थिति का अध्ययन कर सकते हैं ,धार्मिक , सभ्यता तथा इसी प्रकार ओल्मेक .प्राचीन हड़प्पा की सभ्यता के अवशेषों को हम ऐतिहासिक स्रोत मान सकते हैं प्राचीन ईरानी सभ्यता के अवशेषों को हम ऐतिहासिक स्रोत मानकर महत्वपूर्ण जानकार प्राप्त कर सकते हैं .विश्व के विभिन्न छोटे-बड़े संग्रहालयों में इतिहास के प्राथमिक स्रोतों एवं अनुषंगी स्रोतों का अपार भंडार है. विश्व के शीर्षस्थ अभिलेखागारों तथा पुस्तकालयों में प्राचीनतम पांडुलिपियों से लेकर आधुनिकतम ऐतिहासिक ग्रंथों का ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में उपयोग किया जा सकता है. हमको किसी भी ऐतिहासिक निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले उस विषय पर उपलब्ध सभी ऐतिहासिक स्रोतों का अध्ययन करना चाहिए.

11 .2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य – आपको ऐतिहासिक स्रोतों के विषय में विषद जानकारी उपलब्ध कराना है. इतिहास के प्राथमिक एवं अनुषंगी स्रोतों के विभिन्न प्रकारों से आपको परिचित कराना भी इस इकाई का उद्देश्य है. इस इकाई का अध्ययन कर आप –

1. ऐतिहासिक स्रोतों के प्राथमिक एवं अनुषंगी स्रोतों से परिचित हो सकेंगे.
2. गुफ़ा-चित्र, मृदभांड, कब्रों आदि प्रागैतिहासिक प्राथमिक स्रोतों ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे.
3. ऐतिहासिक स्रोत के रूप में अभिलेख, मुद्राओं, सिक्कों, मूर्तियों, चित्रों, स्मारकों, महलों, किलों, नगरों, सरकारी दस्तावेज़ों, संग्रहालयों, अभिलेखागार आदि की महत्ता के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
4. ऐतिहासिक स्रोत के रूप में विभिन्न कालों के उपकरणों की महत्ता से परिचित हो सकेंगे.
5. समुद्र के भीतर प्राप्त अवशेषों के माध्यम से लुप्त हो चुकी सभ्यताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
6. महान सभ्यताओं के अवशेषों को ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में प्रयुक्त कर उन सभ्यताओं की विशिष्टताओं को जान सकेंगे.
7. धार्मिक साहित्य, धर्म-निरपेक्ष साहित्य तथा यात्रा-वृतांतों को ऐतिहासिक स्रोत के रूप में प्रयुक्त कर ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.
8. ऐतिहासिक स्रोत के रूप में मौखिक इतिहास के महत्व के विषय में जान सकेंगे.

11 .3 ऐतिहासिक स्रोतों के प्रकार

11 .3.1 ऐतिहासिक स्रोतों की परिभाषा

वो सभी तथ्य जो कि किसी विशिष्ट काल, किसी विशिष्ट क्षेत्र अथवा किसी विशिष्ट ऐतिहासिक व्यक्तित्व के विषय में प्राथमिक अथवा अनुषंगी जानकारी उपलब्ध कराते हैं, उन्हें ऐतिहासिक स्रोत कहा जाता है. ये ऐतिहासिक स्रोत एक लिखित दस्तावेज़ की शक्ल में हो सकते हैं, उत्खनन से प्राप्त किसी भवन अथवा मूर्ति के रूप में भी हो सकते हैं, किसी मुद्रा या किसी सिक्के के रूप में हो सकते हैं, किसी कलाकृति के रूप में हो सकते हैं, किसी अस्त्र के रूप में हो सकते हैं, किसी उपकरण के रूप में हो सकते हैं, किसी ताम्रपत्र अथवा किसी प्रस्तर अभिलेख के रूप में हो सकते

हैं. किन्तु इनकी ऐतिहासिक महता, इतिहासकार द्वारा इनको ऐतिहासिक साक्ष्य मानकर, इनकी व्याख्या पर निर्भर करती है.

पहला अंकित इतिहास हमको गुफ़ा-मानव के चित्रों में मिलता है. इस से पहले तो हमको जो भी जानकारी मिलती है वह जीवावशेषों के अध्ययन से मिलती है. मिटटी से बर्तन, खिलौने आदि बनाने की तकनीक, धातु के उपकरण बनाने की विधि, कागज़ बनाने की विधि आदि ने इतिहास के इतिहास के स्वरुप को बिलकुल बदल दिया. इतिहास के इतिहास में भाषा तथा लिपि के विकास का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है. इसीलिए लिखित वृतांतों से पहले की सूचनाओं पर आधारित ज्ञान को हम इतिहास के अंतर्गत नहीं रखते और उसे प्रागैतिहासिक काल की श्रेणी में रखते हैं.

11 .3.2 प्रागैतिहासिक काल के स्रोत

प्रागैतिहासिक स्रोत वो आधारभूत तथ्य अथवा साक्ष्य होते हैं जिनके आधार पर किसी सिद्धांत अथवा मान्यता की पुष्टि की जाती है. पुरातात्विक साक्ष्य केवल प्राचीन पात्रों तथा प्राचीन भवनों तक सीमित नहीं हैं. किसी भी वस्तु को ठीक कहाँ से प्राप्त किया गया है यह जानना भी बहुत ज़रूरी होता है क्योंकि उसी स्थान से जो अन्य वस्तुएं प्राप्त हुई होंगी उनसे उस प्राप्य वस्तु का मिलान करके ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है. इसके लिए कार्बन डेटिंग का सहारा भी लिया जाता है और यदि उस प्राप्य वस्तु में कोई लिपि भी अंकित हो तो उसकी व्याख्या के लिए लिपि-विशेषज्ञ की सेवाएँ भी ली जाती हैं.

11 .3.3 प्रागैतिहासिक गुफ़ा-चित्र

माल्त्रावीसो (स्पेन) की गुफ़ाओं में 64000 वर्ष पुराने चित्र मिले हैं. दक्षिण-पश्चिम फ्रांस में पाषाणकालीन लेस्कौक्स गुफ़ा-चित्र विश्व-विख्यात हैं. यूरेशिया में अनेक स्थानों पर पूर्व-पाषाणकालीन (40000 वर्ष पूर्व) गुफ़ा-चित्र मिलते हैं. इन चित्रों के माध्यम से हम तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का अनुमान लगा सकते हैं. इंडोनेशिया के मारोस जिले में प्राप्त गुफ़ा-चित्र 35000 वर्ष बताए गए हैं. भारत में भीमबैठका (मध्यप्रदेश) को गुफ़ा-चित्रों को यूनेस्को ने 'वर्ड हेरिटेज साइट' घोषित किया है. अल्मोड़ा में लखुउड्यार, कुपगल्लू (तेलंगाना), पिकलीहाल तथा टेक्कलकोट्टा (कर्नाटक) और अमरनाथ में जोगीमारा (मध्यप्रदेश) गुफ़ाएँ भी प्रागैतिहासिक गुफ़ा-चित्रों के लिए प्रसिद्द हैं.

11 .3.4 मृदभांड

मृदभांड, मानव-निर्मित प्रथम संश्लेषित पदार्थ हैं. इन के माध्यम से इतिहास, विशेषकर प्रागतिहासिक काल एवं प्राचीन काल की अनेक अनबूझी पहेलियों को सुलझाया जा सकता है. मध्य यूरोप में तथा पश्चिमी यूरोप में पुरा-पाषाणयुगीन कलात्मक मृदभांड प्राप्त हुए हैं. आधुनिक चेक रिपब्लिक के डोली वेस्तोनिस में 30000 साल पुराने मिट्टी और हड्डी के चूरे को मिलाकर बनाए गए पात्र मिले हैं. इन पात्रों का कृषि-विकास से सीधा सम्बन्ध है क्योंकि इन पात्रों की मुख्यतः आवश्यकता तभी पड़ी जब अनाज का भण्डारण करना आवश्यक हो गया. इस प्रकार जहाँ-जहाँ मृदभांड मिलते हैं वहां आम तौर पर कृषि का विकास भी मान लिया जाता है.

जापान में लगभग 13000 वर्ष पूर्व जोमोन मृदभांड तथा 10000 वर्ष पूर्व के मध्य-नील के (मिस्र) मृदभांड, खुली भट्टी में पकाए जाते थे जब कि नव-पाषाण युग में, पूर्वी देशों में लगभग 8000 ईसा पूर्व तथा दक्षिण अमेरिका में, भट्टियों में नियंत्रित तापमान पर मृदभांड पकाने की तकनीक का विकास हुआ.

भारतीय उप-महाद्वीप में, मेहरगढ़ में हड़प्पाकालीन सभ्यता के मृदभांड मिले हैं. भारतीय उप-महाद्वीप के उत्तरी तथा मध्य भाग में काली मिट्टी तथा लाल मिट्टी के वैदिक कालीन पात्र मिलते हैं और उत्तर-वैदिककालीन सिलेटी चित्रित पात्र मध्य-भारत तथा उत्तरी भारत में मिलते हैं.

11 .3.5 मूर्तियाँ

मिस्र की सभ्यता की अनेक मूर्तियाँ तत्कालीन धार्मिक आस्था तथा कलात्मक विकास की कहानी कहती हैं. हड़प्पा की सभ्यता से प्राप्त नृत्यांगना की मूर्ति तत्कालीन सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास का प्रमाण है.फ्लोरेंस के संग्रहालय में रोमन मूर्ति-कला की सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ उपलब्ध हैं. इन मूर्तियों के माध्यम से हम तत्कालीन कला के विकास की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं.

11 .3.6 प्रागैतिहासिक कब्रें

किसी भी काल की कब्रों को उस काल के लिए महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत माना जाता है. इन कब्रों से हमको तत्कालीन धर्म, संस्कृति, आचार-विचार के विषय में उपयोगी जानकारी मिलती है. कब्रों से हमको पता चलता है कि प्रागैतिहासिक मानव, भालू की पूजा करता था तथा धार्मिक अनुष्ठान के लिए उसकी बलि भी देता था. मध्य यूरोप की नव-पाषाण युगीन कब्रों के अध्ययन से हमको ज्ञात होता है कि उस समय नर-बलि की प्रथा प्रचलित थी.

11 .3.7 समुद्र की सतह पर प्राप्त नगर

आधुनिक इतिहासकारों द्वारा समुद्र-विज्ञान का उपयोग समुद्र के भीतर लुप्त सभ्यताओं तथा नगरों की खोज में किया जा रहा है. प्राचीन मिस्र का योनिस हेरा क्लियों नगर तथा एलेक्ज़ेन्द्रिया में क्लियोपेट्रा का महल समुद्र की तलहटी में प्राप्त हुए हैं. वर्तमान रूस में प्राचीन यूनानी नगर फ़ेनागोरिया, चीन में शिचेंग नगर और जापान में योनागुनी-जीमा के प्राचीन पिरामिड भी समुद्र की सतह पर खोजे गए हैं. 1983-90 के मध्य प्रोफ़ेसर एस. आर. राव के निर्देशन में समुद्र की तलहटी में द्वारिका का नगर खोजा गया. यह नगर लगभग 3500 वर्ष प्राचीन है . इस नगर के मिलने से महाभारत काल की ऐतिहासिकता प्रमाणित होती है. समुद्र के नीचे प्राप्त इस नगर का अध्ययन करने से हमको नई जानकारी प्राप्त होती है. इस प्रकार समुद्र की तलहटी में प्राप्त ऐतिहासिक भग्नावशेष भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत हो सकते हैं.

11 .3.8 उपकरण

प्राणि-विज्ञान शास्त्री यह मानते हैं कि उपकरण, मानव-जाति के विकास की कहानी बताते हैं. पाषाण-उपकरणों का इतिहास तो लगभग 25 लाख वर्ष पुराना है. इथोपिया में प्राप्त पत्थर की कुल्हाड़ी, 26 लाख साल पुरानी है. इन उपकरणों के माध्यम से आदि-मानव वो काम कर सकता था जो कि वह अपने हाथ-पैर से नहीं कर सकता था. शिकार करने के लिए भाला और तीर का प्रयोग किया जाना मानव-विकास के इतिहास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है. प्राचीन यूनान तथा प्राचीन रोम में यांत्रिक उपकरणों के निर्माण का युग प्रारंभ हुआ. रहट और पवन चक्की इसके उदाहरण हैं.

अस्त्र-शस्त्र की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत के रूप में गणना की जाती है. जिस समय पाषाण-निर्मित अस्त्रों का स्थान धातु-निर्मित अस्त्रों ने ले लिया उसे हम मानव-इतिहास के एक नए युग के रूप में देखते हैं. अपने समय की सबसे विकसित सभ्यताओं में गिनी जाने वाली हड़प्पाकालीन सभ्यता में लोहे के बने हथियार नहीं मिलते हैं. हमारे सामने यह स्थिति स्पष्ट हो जाती है कि इतनी विकसित सभ्यता लोहे के हथियारों का प्रयोग करने वाली जाति के हाथों कैसे पराजित हो गयी.

बारूद के आविष्कार का लाभ जिन जातियों ने युद्ध में उठाया, उन्हें सफलता मिली. जिनके पास आत्म-रक्षा के समुचित प्रबंध थे (कवच, शिरस्त्राण आदि) उन्हें हराना कठिन था. राजपूतों पर तुर्कों की विजय का यह एक महत्वपूर्ण कारण था. इतिहास के स्रोत के रूप में तोपों और बंदूकों की भी महत्ता है. तोपों और बंदूकों के आविष्कार ने रणनीति में आमूल परिवर्तन कर दिया. तोपखाने और घुड़सवार सेना के संयुक्त आक्रमण के बलबूते बाबर की छोटी सेना ने इब्राहीम लोदी की और राणा सांगा की बड़ी-बड़ी सेनाओं को पराजित कर दिया. इसी प्रकार अधिक मारक शक्ति की, हल्की और बार-बार दागी जा सकने वाली बंदूकों के बल पर यूरोपीयों की छोटी-छोटी टुकड़ियों ने भारतीय शासकों की बड़ी-बड़ी फ़ौज को हरा दिया.

अंग्रेज़ों की दृष्टि में आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से सज्जित यूरोपीय सेनाओं से भारतीय शासकों की सेनाएं, मध्यकालीन अस्त्र-शस्त्र का उपयोग करने के कारण हारीं. इस दावे पर तब प्रश्न-चिह्न लग जाता है जब टीपू सुल्तान के हथियारों में हम प्रक्षेपणास्त्र (मिसाइल) भी पाते हैं. आधुनिक युग में डायनामाइट के आविष्कार से और फिर वायुयान तथा एटम बम के आविष्कार से युद्ध की विनाशलीला और भी भयानक हो गयी. हम जानते हैं कि कुतुबनुमा, दूरबीन, प्रिंटिंग प्रेस, स्पिनिंग व्हील, स्टीम इंजन आदि ने विश्व को मध्य-युग से आधुनिक युग में प्रविष्ट कराने में निर्णायक भूमिका निभाई है. इस प्रकार अस्त्र-शस्त्र, उपकरण, वैज्ञानिक आविष्कार आदि को ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में प्रयुक्त कर हम इतिहास-विषयक उपयोगी एवं प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं.

11.4. प्राचीन भारत के ऐतिहासिक स्रोत

11.4.1 पुरातात्विक भग्नावशेष

पुरातात्विक भग्नावशेष - इसमें उत्खनन द्वारा प्राप्त पुरातात्विक सामग्री का रेडियो-कार्बन प्रणाली से, तिथि-निर्धारण किया जाता है.हड़प्पा कालीन मुद्रा में अंकित लिपि को अभी भी ठीक तरह से पढ़ा नहीं जा सका है किन्तु उस से उस काल की धार्मिक मान्यताओं के विषय जानकारी तो मिलती ही है. बहरैन और मेसोपोटामिया में हड़प्पाकालीन सभ्यता की मुद्राएँ मिलने से यह प्रमाणित होता है कि उस सभ्यता में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उन्नत दशा में था.

11 .4.2 ऐतिहासिक गुफ़ा-चित्र

अजंता की गुफ़ाएं ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी के बीच में बनाई गई हैं. अजंता की मुख्य ख्याति उसके भित्ति चित्रों के कारण है. अजंता के भित्ति चित्रों में विषयों की इतनी अधिक विविधता है कि लगता है चित्रकारों की दृष्टि से जीवन का कोई भी पहलू छूटा ही नहीं है. अजंता में भगवान बुद्ध के जीवन चरित्र और उनके पूर्व जन्मों से सम्बद्ध घटनाओं को तो चित्रित किया ही गया है साथ ही साथ इनमें शासक वर्ग और जन सामान्य के जीवन से जुड़ी हुई घटनाओं का चित्रण भी किया गया है. किसानों, तपस्वियों, भिक्षुकों, पशु-पक्षियों का चित्रण अजंता की कला को धर्म निर्पेक्ष स्वरूप प्रदान करता है. अजंता की गुफ़ाएं भारतीय कला के चरमोत्कर्ष को प्रदर्शित करती हैं. पाश्चात्य देशों के निवासी भारत को असभ्य और बर्बर कहते थे पर अजंता की कला ने उनकी आँखें खोल दीं.

अजंता, एलोरा, बाघ, सित्तानावासल और लेपाक्षी के चित्र न केवल कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटि के हैं, अपितु इनका ऐतिहासिक स्रोत के रूप में प्रयोग कर हम इनके माध्यम से हम तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का अध्ययन भी कर सकते हैं.

11.4.3 सरकारी दस्तावेज़

सरकारी दस्तावेजों के माध्यम से हम इतिहास की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं. जॉन शोर तथा चार्ल्स ग्रांट ने भूमि के स्थायी बंदोबस्त के लिए टोडरमल के दहसाला बंदोबस्त के दस्तावेज़ों का और मुर्शिद कुली खां के भू-राजस्व सम्बन्धी दस्तावेज़ों का गहन अध्ययन किया था. इसी प्रकार कुमाऊँ के आर्थिक इतिहास का अध्ययन करने के लिए कुमाऊँ के शासकों के काल की बहियों का अध्ययन आवश्यक है.

11 .4.4 अभिलेख

पुरालेख-ताम्र ,स्तूपों ,स्तंभों ,दीवालों ,शिलाओं .अभिलेखों का अध्ययन किया जाता है ,शास्त्र के अंतर्गत-पत्रों एवं मुद्राओं पर उत्कीर्णित प्रशासनिकविषयक आदि अभिलेखों की -सम्बन्धी अनुदान-दान ,धार्मिक , .ऐतिहासिक स्रोतों में गणना की जाती है

ईरान के शासक डेरियस के प्रशासकीय अभिलेख प्रसिद्द हैं. सम्राट अशोक ने डेरियस के अभिलेखों से प्रेरणा लेकर अनेक प्रशासकीय तथा धार्मिक अभिलेख बनवाए थे. भारतीय अभिलेखों में अशोक के अभिलेख ही सबसे प्रसिद्द हैं. हाथीगुम्फा का खारवेल का अभिलेख, शक क्षत्रप रुद्रदमन का गिरनार अभिलेख, सातवाहन नरेश पुलुवामी का नासिक अभिलेख, समुद्रगुप्त का हरिसेन कृत 'प्रयाग प्रशस्ति' प्रस्तर अभिलेख, मालवराज यशोधर्मन का मंदसौर अभिलेख, चालुक्य पुल्केसिन द्वितीय का ऐहोल अभिलेख, भोज प्रतिहार का ग्वालियर अभिलेख, यवन राजदूत हेलियाडोरस का विदिशा से प्राप्त गृध स्तम्भ अभिलेख आदि भारत के तत्कालीन धार्मिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक इतिहास को चित्रित करते हैं. फ्रांस के शासक हेनरी चतुर्थ का 1598 का नान्तेस अभिलेख, तत्कालीन रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट समुदायों के मध्य वैमनस्य को दूर करने का एक सार्थक प्रयास माना जाता है.

11 .4.5 सार्वभौमिक इतिहास

चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के एफ़ोरस और तदन्तर डलोडोरस के लेखन में हमको सार्वभौमिक इतिहास की पहली झलक मिलती है. तीसरी तथा दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के रोम के इतिहासकार पोलीबियस ने पहली बार सार्वभौमिक इतिहास लिखे जाने की आवश्यकता का अनुभव किया था. सेंट अगस्ताइन की रचना - 'सिटी ऑफ़ गॉड' सार्वभौमिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण प्रतिनिधि रचना है. अरबी दार्शनिक इब्न खल्दून की 'मुक़द्दमा' को भी हम वैश्विक इतिहास कह सकते हैं. मध्यकालीन इसाई इतिहासकार बेसुएट ने भी इस दिशा में सार्थक प्रयास किए थे. आधुनिक दार्शनिक-इतिहासकारों तथा चिंतकों में हर्डर, शिलर, हेगेल, कार्ल मार्क्स तथा हर्बर्ट स्पेंसर के लेखन में भी सार्वभौमिक इतिहास की झलक मिलती है. जर्मन इतिहासकार रैंके, इतिहास लेखन में व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ता है. वह विभिन्न देशों के इतिहास की विशिष्टताओं को सार्वभौमिक इतिहास की आवश्यक कड़ियां मानकर सार्वभौमिक इतिहास की ओर बढ़ता है. स्पेंगलर तथा टॉयनबी की रचनाएं प्राथमिक स्रोतों पर आधारित इतिहास तथा सार्वभौमिक इतिहास के समाकलन के दो उदाहरण हैं. आज जब हम ग्लोबल विलेज की परिकल्पना को साकार होते हुए देख रहे हैं, तब वैश्विक इतिहास-लेखन की महत्ता और भी अधिक बढ़ गयी है. आज इतिहास, जाति, धर्म, राष्ट्र और महाद्वीप की सीमाओं को लांघकर वैश्विक तथा सार्वभौमिक हो चुका है.

11 .4.5 भौगोलिक खोजों का इतिहास

इतिहास को गति, दिशा एवं अर्थ प्रदान करने में भौगोलिक उपकरणों तथा भौगोलिक खोजों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है. नवीन भौगोलिक खोजें आने वाले परिवर्तनों का वाहक बनीं. बार्तालोम्यू डियाज, कोलम्बस, वास्कोडिगामा, वोराज़ानो, जे. कार्तियर, जॉन स्मिथ आदि ने अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका में अज्ञात क्षेत्रों की खोज की. वास्तव में भौगोलिक खोजों, औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना तथा वाणिज्यिक क्रान्ति का

परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है. इन सबने मिलकर मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में तथा विश्व इतिहास को मध्य युग से आगे बढ़ाकर आधुनिक युग में प्रविष्ट कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी.

11 .4.6 मुद्रा शास्त्र

मुद्राशास्त्र, में धातु तथा कागज़ की मुद्राओं तथा रुपयों के क्रमिक विकास का अध्ययन किया जाता है. यह आर्थिक इतिहास का एक अभिन्न अंग है और इसके माध्यम से हम मानव-सभ्यता के विकास का अध्ययन भी करते हैं. मुद्राएँ तथा सिक्के पुरातत्ववेत्ताओं तथा इतिहासकारों के लिए ज्ञान का खज़ाना होते हैं. सिक्कों के माध्यम से हम तत्कालीन व्यापर, अर्थ-व्यवस्था, सामाजिक संगठन, धार्मिक आस्था, धामिक दृष्टिकोण, सैनिक उपलब्धि, सांस्कृतिक गतिविधि, तकनीकी प्रगति आदि के विषय में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं. सिक्के अपने समय की धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा व्यापारिक स्थिति पर भी प्रकाश डालते हैं.

11 .4.7 पुरा-लिपि शास्त्र

पुरा-लिपि शास्त्र प्राचीन लिपियों को पढ़ पाने का विज्ञान है. प्राचीन लिपियों को पढ़ पाने से हमको इतिहास के रहस्यों को उद्घाटित करने में बहुत सफलता मिली है. आज भी हड़प्पाकालीन सभ्यता की लिपि को सही-सही पढ़ा नहीं जा सका है जिसके कारण इस महान सभ्यता के विषय में हमारा ज्ञान आज भी अधूरा है.

11 .5 इतिहास के लिखित स्रोत

11.5.1 साहित्यिक स्रोत

प्राचीन लिखित स्रोतों (जैसे कि वेद, 'रामायण' 'महाभारत' आदि) में घटनाओं के वास्तविक वृतांत से अधिक महत्व उच्च आदर्शों एवं विचारों को दिया जाता था. प्राचीन साहित्यिक स्रोतों को भी हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं –

1. धार्मिक साहित्य, 2. धर्म-निरपेक्ष साहित्य, 3. विदेशी यात्रियों के वृतांत

11 .5.1.1 धार्मिक साहित्य

वेद, उपनिषद, रामायण. महाभारत, पुराण, जातक कथाएँ आदि अपने समय के धार्मिक विश्वास, सामाजिक-व्यवस्था, मानव-आचरण, रीति-रिवाज, आचार-विचार, राजनीतिक संस्थाओं, सांस्कृतिक स्थिति का प्रमाणिक चित्रण करते हैं.

11 .5.1.2 धर्म-निरपेक्ष साहित्य

धर्मसूत्र, स्मृति आदि शासकों, प्रशासकों, तथा नागरिकों के अधिकारों तथा कर्तव्यों, न्याय-व्यवस्था, दंड-व्यवस्था आदि के विषय में प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध कराते हैं. कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' न केवल राजतंत्र-विषयक ग्रन्थ है, अपितु यह तत्कालीन सामाजिक व आर्थिक दशा का भी चित्रण करता है. बाणभट्ट द्वारा रचित 'हर्ष-चरित्र', कश्मीर के इतिहास के लिए कल्हण की 'राजतरंगिणी' और 12 वीं शताब्दी में उत्तर-भारत के इतिहास के लिए चंद बरदाई की 'पृथ्वीराज रासो' का अध्ययन अत्यंत उपयोगी है.

इतिहास केवल शासकों के जीवन और उनकी नीतियों से सम्बद्ध नहीं होता है, यह आम आदमी के जीवन से भी जुड़ा होता है. सभी जानते हैं कि साहित्य अपने समय के समाज का दर्पण होता है. समाज में रहने वाले व्यक्तियों की मानसिक एवं सामाजिक स्थिति का समकालीन साहित्य में सजीव चित्रण मिलता है. रामायण, महाभारत, इलियड, ओडिसी आदि महाकाव्यों का अध्ययन कर हम तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक

जीवन की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं. विशाखदत्त के नाटक 'मुद्रा राक्षस' का अध्ययन कर हम मौर्यकालीन गुप्तचर व्यवस्था तथा कूटनीतिक षड्यंत्रों को समझ सकते हैं. अमीर ख़ुसरो के साहित्यिक ग्रंथों का अध्ययन किए बिना हम हिंदुस्तान की गंगा-जमुनी तहज़ीब की तह तक पहुँच ही नहीं सकते.

रूसी साहित्यकार दोस्तोवस्की के उपन्यास निरंकुश ज़ारशाही की अमानुष नीतियों का सबसे प्रामाणिक चित्रण करते हैं. फ्रांसीसी साहित्यकार एमिली ज़ोला का उपन्यास 'नाना' पढ़कर हम 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में फ्रांस की सर्वतोमुखी अवनति को भलीभांति समझ सकते हैं. अर्नेस्ट हेमिंग्वे के उपन्यासों – 'फ़ेयरवेल टू आर्म्स (प्रथम विश्व-युद्ध की पृष्ठभूमि) ' तथा 'फ़ॉर व्हूम दि बेल टोल्स' (स्पेनिश गृह-युद्ध की पृष्ठभूमि) में युद्ध की विभीषिका का चित्रण और युद्ध की स्थिति में आम आदमी के उन्माद का चित्रण, ऐतिहासिक ग्रंथों से भी अधिक जीवंत और प्रामाणिक लगता है.

प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' को पढ़कर हम भूमि के स्थायी बंदोबस्त में किसानों के ज़मींदारों, महाजनों और सरकारी अम्लों द्वारा शोषण की ठोस जानकारी प्राप्त कर सकते हैं.नाज़ी कन्सट्रेशन कैंप में लिखी गयी एक किशोरी, एनी फ्रैंक की दैनन्दिनी – 'दि डायरी ऑफ़ ए यंग गर्ल' को नाज़ी अत्याचार और अमानुषिकता का एक प्रामाणिक ऐतिहासिक दस्तावेज़ माना जाता है.

11.5.1.3 यात्रा वृतांत

चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में भारत में यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ की पुस्तक, 'इंडिका' मौर्यकालीन भारत के विषय में व्यापक जानकारी उपलब्ध कराती है. दूसरी शताब्दी में पौसनिया की 'डिस्क्रिप्शन ऑफ़ ग्रीस', वेल्स निवासी गेराल्ड की 'डिस्क्रिप्शन ऑफ़ वेल्स' (1191), 11 वीं शताब्दी में अल-बिरूनी ('किताब-उल-हिन्द') 13 वीं शताब्दी में इब्न जुबेर के तथा 14 वीं शताब्दी में इब्न बतूता ('रहला') के संस्मरणों से हमको इतिहास के अनेक अनछुए पहलुओं की जानकारी मिलती है. चीनी यात्रियों - फाह्यान तथा ह्वेन सांग ने क्रमशः गुप्त काल तथा हर्षवर्धन के समय का अत्यंत जीवंत चित्रण किया है. मार्को पोलो के यात्रा वृतांत से हमको भारत और चीन सहित अन्य देशों के विषय में रोचक जानकारी प्राप्त होती है.

15 वीं शताब्दी में ईरान में तिमूर राजवंश के राजदूत के रूप में अब्दुर्रज़्ज़ाक कालीकट आया था. कालीकट और विजयनगर साम्राज्य की पुरानी राजधानी हम्पी की समृद्धि के विषय में तथा हिन्द महासागर में व्यापार-वाणिज्य के विषय में वह अपने ग्रन्थ – 'मतला-उस-सदेन वा मजमा-उल-बहरैन' में अत्यंत उपयोगी सामग्री उपलब्ध कराता है. जहाँगीर के दरबार में आए ब्रिटिश राजदूत सर थॉमस रो की पुस्तक – 'एम्बेसी' से, तथा परवर्ती यूरोपियन यात्रियों – ट्रेवर्नियर, बर्नियर और मनूची के संस्मरणों से भी हमको बहुत उपयोगी जानकारी मिलती है. वीं शताब्दी में बिशप 19 वृतांत के माध्यम से यह दर्शाया था कि अवध के नवाबों के शासन में उन-हेबर ने अपने यात्राकी प्रजा खुशहाल थी . .इस से अंग्रेज़ों द्वारा कुशासन के बहाने अवध के राज्य का हस्तगत किया जाना पूर्णतया अनुचित सिद्ध होता है

कैप्टेन कुक की डायरी (1784) तथा रोबर्ट लुई स्टीवेंसन की 'एन आइलैंड वोयज' (1878) की गणना प्रसिद्द यात्रा-वृतांतों में की जाती है. उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नैन सिंह रावत ने तिब्बत की यात्रा कर अपनी डायरी में तिब्बत की भौगोलिक स्थिति, सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन, आर्थिक गतिविधियों आदि पर बहुत उपयोगी जानकारी दी थी. राहुल सांकृत्यायन के तिब्बत-यात्रा वृतांत से हमको तिब्बत के विषय में बहुत सी जानकारी प्राप्त होती है.

11 .6 इतिहास विषयक ग्रन्थ

महत्वपूर्ण इतिहास विषयक ग्रंथों की संख्या तो लाखों में है किन्तु यदि हम उनमें से कुछ प्रतिनिधि ग्रंथों का चयन करें तो उनमें विश्व की प्राचीन सभ्यताओं के विषय में जानकारी उपलब्ध कराने वाली पुस्तकों को सम्मिलित करना आवश्यक होगा. इस सूची में –

वाल्मीक – 'रामायण'
वेदव्यास – 'महाभारत'
होमर - 'दि इलियाड'
होमर – 'दि ओडसी'
हेरोडोटस –'दि हिस्ट्रीज़'
थ्यूसीडाइड्स – 'दि हिस्ट्री ऑफ़ दि पेलोपनीसियन वॉर'
प्लेटो –'दि रिपब्लिक'
कौटिल्य – 'अर्थशास्त्र'
इब्न खलदून – 'मुक़द्दमा'
निकोलो मेकियावेली – 'दि प्रिंस'
थॉमस मोरे – 'उटोपिया'
एडवर्ड गिबन – 'दि डिक्लाइन एंड फ़ाल ऑफ़ दि रोमन एम्पायर'
बर्क, एडमंड – 'रिफ्लेक्शंस ऑन दि रिवोल्यूशन इन फ्रांस'
बोलिन बर्नार्ड – 'दि आइडियोलोजिकल ओरिजिंस ऑफ़ दि अमेरिकन रिवोल्यूशन'
रीड क्रिस्टोफ़र – 'फ्रॉम ज़ार टू सोविएट्स'
दादाभाई नौरोजी – 'पावर्टी एंड दि अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया'
ओसवाल्ड अर्नाल्ड स्पेंगलर – 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट'
अर्नाल्ड जोज़फ़ टॉयनबी – 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री'
कॉलिंगवुड आर. जी. – 'दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री'
हिर्शेफ़ील्ड जेर्हार्ड (संपादक) – 'ब्रिल्स एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ दि फर्स्ट वर्ल्ड वॉर'
एक्सीलार्ट – 'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ वर्ल्ड वॉर सेकंड'
टोबी विलकिंसन कृत – 'दि राइज एंड फ़ाल ऑफ़ एनशियेंट इजिप्ट : दि हिस्ट्री ऑफ़ सिविलाइज़ेशन फ्रॉम 3000 बी. सी. टू क्लियोपेट्रा'
रिचर्ड, ई. डब्लू. एडम्स – 'दि ओरिजिन ऑफ़ माया सिविलाइज़ेशन'
एंड्रयू रोबिन्सन – 'दि इंडस: लॉस्ट सिविलिजेशंस'
जेर्नेट जेकस 'ए हिस्ट्री ऑफ़ चायनीज़ सिविलाइज़ेशन'
इम्बेर कॉलिन – 'दि ऑटोमन एम्पायर'
स्टर्न्स, पीटर एन. (संपादक) – 'दि इंडस्ट्रियल रेवोल्यूशन इन वर्ड हिस्ट्री'
जैकब बर्कहार्ड – 'दि सिविलाइज़ेशन ऑफ़ दि रेनेसांस इन इटली'
लुई फ़र्नान्डेज़ – 'डिस्कवरीज़ एंड इन्वेंशंस'
जोसेफ़ जेकोब्स – 'दि स्टोरी ऑफ़ ज्योग्राफिकल डिस्कवरी'
एनी फ्रैंक – 'दि डायरी ऑफ़ ए यंग गर्ल'

जवाहर लाल नेहरु – 'डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया'

टैलबोट इआन, सिंह गुरुहरपाल – 'दि पार्टीशन ऑफ़ इंडिया'

यह युग माइक्रोस्कोपिक स्पेशलाइज़ेशन का है. प्रत्येक युग, प्रत्येक सभ्यता, प्रत्येक देश, प्रत्येक धर्म, प्रत्येक समाज, प्रत्येक शासक, प्रत्येक साम्राज्य, प्रत्येक महत्वपूर्ण संधि, प्रत्येक निर्णायक युद्ध, प्रत्येक महत्वपूर्ण तकनीकी तथा वैज्ञानिक प्रगति, वाणिज्यिक क्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति, उद्योग, व्यापार, स्थापत्य, चित्रकला, प्रत्येक भाषा के साहित्य, अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, कूटनीतिक सम्बन्ध आदि पर विषद सामग्री उपलब्ध है. इन में से सभी को विशिष्ट विषयों के लिए अनुषंगी ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है.

11 .7 संग्रहालय, अभिलेखागार तथा पुस्तकालय

विश्व के विभिन्न छोटे-बड़े संग्रहालयों में इतिहास के प्राथमिक स्रोतों एवं अनुषंगी स्रोतों का अपार भंडार है. पेरिस में स्थित लूव्र म्यूजियम, पीटर्सबर्ग में स्थित हेर्मिताज़ म्यूजियम, लन्दन में स्थित विक्टोरिया, अल्बर्ट म्यूजियम, नई दिल्ली में स्थित नेशनल म्यूजियम , हैदराबाद में स्थित सालारजंग म्यूजियम, कैरो में स्थित इजिप्शियन म्यूजियम, न्यूयॉर्क में स्थित मेट्रोपोलिटन म्यूजियम ऑफ़ आर्ट आदि में इतिहास के प्राथमिक स्रोतों एवं अनुषंगी स्रोतों का अपार भंडार है. इसी प्रकार विश्व के शीर्षस्थ अभिलेखागारों तथा पुस्तकालयों में प्राचीनतम पांडुलिपियों से लेकर आधुनिकतम ऐतिहासिक ग्रंथों का ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में उपयोग किया जा सकता है.

11.8 महल, किले और स्मारक

महल, किले और स्मारक भी इतिहास के स्रोत होते हैं. मिस्र के पिरामिड जहाँ एक ओर तत्कालीन समाज में मृत्यु के बाद जीवन में विश्वास का प्रमाण हैं वहां उसी में शासक के शव के साथ ज़िन्दा ही दफनाई गयी उसकी बेगमों और दासियों के शव इस तथ्य को दर्शाते हैं कि उस काल में स्त्री को पुरुष की संपत्ति ही समझा जाता था. चीन की दीवाल वाह्य-आक्रमणों के प्रति वहां के शासकों के भय को तो दर्शाती ही है, साथ में उसमें गाड़े गए हजारों श्रमिकों के शव इस तथ्य का प्रमाण हैं कि एक आम आदमी की अहमियत केवल उस समय तक थी जब तक कि वो काम कर सकता था.

दिल्ली में गियासुद्दीन तुगलक़ का मक़बरा तुगलक़ काल में वाह्य-आक्रमणों की कहानी कहता है और तत्कालीन आर्थिक अवनति की भी. एक मक़बरे को किले की शक्ल में बनवाना और उसमें ढलवा, मोटी दीवारों का नितांत अलंकरणहीन होना इसका प्रमाण है. फ़तेहपुर सीकरी के भवनों पर अकबर के व्यक्तित्व और उसकी नीतियों की स्पष्ट छाप दिखाई देती है. जो सुदृढ़ता, जो भव्यता, जो मौलिकता और जो समन्वयात्मक प्रवृत्ति अकबर के व्यक्तित्व में थी, वही उसके द्वारा बनवाए गए भवनों में मिलती है. बुलंद दरवाज़ा और दीवान-ए-ख़ास जैसे भवन, अकबर के अतिरिक्त कोई और बादशाह बनवा ही नहीं सकता था.

देश-व्यापी अकाल के समय बना हुआ भव्य विक्टोरिया मेमोरियल भारत में ब्रिटिश शासकों की भारतीय प्रजा के शोषण की जीवंत कहानी है. एक ओर जहाँ इंडिया गेट प्रथम विश्व-युद्ध में मित्र-राष्ट्रों को विजय दिलाने में भारतीय सैनिकों के योगदान की कथा बताता है तो दूसरी ओर जलियाँवाला बाग़ का शहीद स्मारक ब्रिटिश शासन की कृतघ्नता और नृशंसता का जीता-जागता प्रमाण है.

11 .9 यूरोपीय पुनर्जागरणकालीन कला

डोनातेलो की काष्ठ, कांस्य तथा संगमरमर की मूर्तियों में, लेओनार्दो दा विंची के चित्रों – 'मोनालिसा' तथा 'दि लास्ट सपर' में, माइकल एंजेलो के चित्रों और उसकी मूर्तियों में, राफ़ेल के चित्रों आदि में पुनर्जागरण की इन सभी

विशिष्टताओं को देखा जा सकता है. यह कहा जा सकता है कि पुनर्जागरणकालीन कला ने यूरोप को मध्ययुगीन परम्परावाद से मुक्त करा कर बुद्धि-प्रधान एवं विवेक-प्रधान आधुनिक युग में प्रविष्ट कराने में महत्वपूर्ण योगदान दिया. 14 वीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर 17 वीं शताब्दी प्रारंभ तक यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में प्राचीन ग्रीक तथा रोमन स्थापत्यकला का पुनरुत्थान हुआ. इसमें पहले गोथिक शैली और फिर बैरोक़ शैली को अपनाया गया. फ्लोरेंस में फ़िलिप्पो ब्रूनेलेशी ने पुनर्जागरणकालीन स्थापत्यकला शुभारम्भ किया था. इस काल के भवनों की भव्यता और इनके दोषमुक्त सौन्दर्य-संयोजन को देखकर हम उस काल में हुए वैचारिक विकास का भी सहज रूप से अनुमान लगा सकते हैं.

उत्तरी-यूरोप में विकसित पुनर्जागरणकालीन कला (स्थापत्य कला, चित्र-कला, मूर्ति-कला), उस काल में हुई दर्शन, साहित्य, संगीत और विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति का प्रतिबिम्बन है. इस काल में महान यूनानी तथा रोमन कला-परंपरा को पुनर्जीवित किया गया किन्तु उसमें समकालीन वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान को तथा पुनर्जागरणकालीन मानवतावादी दर्शन को भी समाहित किया गया.

11 .10 मौखिक इतिहास

मौखिक इतिहास - किसी विशिष्ट व्यक्ति, परिवार, महत्वपूर्ण घटनाओं अथवा दैनिक जीवन की आम घटनों के विषय में ऑडियो-टेप, वीडियो-टेप अथवा साक्षात्कार के आधार पर प्राप्त सूचनाओं का संकलन होता है. प्राचीन काल से मौखिक इतिहास की परंपरा चली आ रही है. हमारे भारत में ज्ञान के क्षेत्र में श्रुत परंपरा का अत्यंत आदरपूर्ण स्थान है. यूनानी इतिहासकारों- हेरोडोटस तथा थ्यूसीडाइड्स ने, अपने इतिहास लेखन में मौखिक इतिहास का अत्यधिक आश्रय लिया है. आधुनिक काल में मौखिक इतिहास की महत्ता बढ़ गयी है. लोक-गाथा, लोक-गीत, आल्हा आदि मौखिक इतिहास के अंतर्गत आते हैं.

जन-श्रुतियों का ऐतिहासक स्रोत के रूप में अत्यधिक महत्त्व है. राजा विक्रमादित्य का निष्पक्ष न्याय जन-श्रुतियों में आज भी जीवित है. खलीफ़ा हारून-अल-रशीद का भेष बदलकर प्रजा के सुख-दुःख का पता करना और फिर समस्यायों का समाधान करना भी जन-श्रुतियों में सुरक्षित है. इन जन-श्रुतियों के माध्यम से हम ऐसी बहुत सी बातें जान सकते हैं जो कि लिखित इतिहास में उपलब्ध नहीं हैं. घाघ और भड्डरी की कृषि सम्बन्धी कहावतों से आज भी कृषक-समाज मार्ग-दर्शन प्राप्त करता है. द्वितीय विश्व-युद्ध में कन्सट्रेशन कैम्प्स की यातनाओं के बाद जीवित बचे हुए यहूदियों के साक्षात्कारों की सहायता से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अनेक जर्मन अपराधियों को दण्डित किया गया है.

11.10 ऐतिहासिक स्रोत

11.10.1 प्राथमिक स्रोत अथवा मौलिक स्रोत

प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत समकालीन साक्ष्य आते हैं. ये किसी घटना से सम्बंधित समकालीन लिखित वृतांत, किसी प्रत्यक्षदर्शी के अनुभव अथवा समकालीन उपकरण या समकालीन अवशेष के रूप में हो सकते हैं. प्राथमिक स्रोतों में समकालीन प्रशासकीय, आदेश, फ़रमान, अभिलेख, पत्र आदि सम्मिलित होते हैं किन्तु इनकी प्रामाणिकता की जांच होना आवश्यक है. जयपुर में मुग़ल काल के अखबारातों का समृद्ध संग्रह है जो कि तत्कालीन राजनीतिक एवं प्रशासनिक इतिहास के अध्ययन के लिए अत्यंत मूल्यवान है. ब्रिटिश शासन में गोपनीय सूचनाओं को बहुत महत्त्व दिया जाता था. इन सूचनाओं का अध्ययन कर हम ब्रिटिश शासन के सच्चे स्वरुप और उसके वास्तविक मंतव्य को भलीभांति समझ सकते हैं.

बाबर की आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' और जहाँगीर की आत्मकथा 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' की गणना अपने-अपने समय के प्राथमिक स्रोतों में की जाती है. इसी प्रकार महात्मा गाँधी की पुस्तक 'सत्य के मेरे प्रयोग' उनके बचपन से लेकर दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रही के रूप में विकसित होने तक की प्रामाणिक कथा कहती है. हिटलर की आत्मकथा 'मीन काम्फ़' उसके वैचारिक विकास का अध्ययन करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है.

11 .11.2 अनुषंगी स्रोत अथवा सहायक स्रोत

अनुषंगी स्रोत अथवा सहायक स्रोत वो साक्ष्य होते हैं जिनको दर्ज करने वाला उस घटना के समय वहां विद्यमान नहीं होता है. अनुषंगी स्रोतों को अपनी प्रामाणिकता के लिए प्राथमिक स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है किन्तु इनका भी बहुत महत्व होता है क्योंकि इनमें उस घटना से सम्बंधित तथ्यों की विस्तार से चर्चा हो सकती है और उनका समुचित विश्लेषण भी हो सकता है.

11.12 महान सभ्यताएं

11 .12.1 मिस्र की सभ्यता

ज्ञात सभ्यताओं में मिस्र की सभ्यता प्राचीनतम मानी जाती है. इस सभ्यता में निर्मित पिरामिड आज भी स्थापत्य की दृष्टि से अनुपम माने जाते हैं. स्थापत्य, धर्म, सिंचाई, लिपि के विकास, पेपिरस के आविष्कार, नौका-निर्माण, चिकित्सा और गणित के क्षेत्र में इस सभ्यता की उपलब्धियां आश्चर्यजनक हैं. पिरामिडों का अध्ययन कर हमको यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन मिस्र की सभ्यता में सौर-मंडल विषयक ज्ञान कितना उन्नत था. पृथ्वी से सूर्य की दूरी का ठीक-ठीक आकलन करना भी इस सभ्यता के गणितज्ञों को आता था.

11.12.2 हड़प्पाकालीन सभ्यता

लगभग 5000 से 3500 वर्ष प्राचीन यह सभ्यता - शांतिपूर्ण जीवन शैली, सुव्यवस्थित, स्वच्छ एवं आमोदप्रिय नागरिक-जीवन, उन्नत व्यापार एवं वाणिज्य तथा कलात्मक विकास के लिए विख्यात है. मोहनजोदारो का विशाल स्नान-गृह और वैज्ञानिक जल-निकास व्यवस्था, पक्की ईंटों के हवादार, योजनाबद्ध मकान इस सभ्यता की उन्नति को दर्शाते हैं.

11 .12.3 ओल्मेक सभ्यता

मेक्सिको की लगभग 3500 से 2500 वर्ष प्राचीन सभ्यता स्थापत्यकला, कृषि, लेखन-विधि तथा पंचांग-निर्माण की दृष्टि से अपनी समकालीन सभ्यताओं की तुलना में बहुत उन्नत थी.

11 .12.4 ईरान की सभ्यता

पश्चिम एशिया में ईरान के महान शासक साइरस द्वारा छठी शताब्दी ईसा पूर्व स्थापित इकामेनिद साम्राज्य अपने समय का सबसे विशाल साम्राज्य था. उत्खनन से हमको ज्ञात होता है कि अपने समय के सबसे प्रगतिशील इस साम्राज्य में सड़कों का जाल बिछा हुआ था और जल-निकास तथा मल-निकास की समुचित व्यवस्था थी. इस साम्राज्य के विद्वानों को अंक-प्रणाली, अंकगणित, रसायन शास्त्र, तथा वर्णमाला का समुचित ज्ञान था.

2 .13 इतिहासेतर विषयों के ग्रंथों का ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में उपयोग

आज दर्शन, साहित्य, कला, भूगोल, समाजशास्त्र, प्राणिशास्त्र-विज्ञान, कूटनीतिक सम्बन्ध, अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, युद्ध, संधियां, प्रवसन, प्राकृतिक विपदाएँ, तकनीकी तथा वैज्ञानिक विकास, जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण, सैनिक-विज्ञान, समुद्र-विज्ञान आदि की सहायता से हम इतिहास विषयक नई-नई जानकारी प्राप्त कर रहे हैं, अतः इनसे प्राप्त उपयोगी सामग्री को भी हम ऐतिहासिक स्रोत मान सकते हैं. ऐतिहासिक स्रोतों की गणना करना असंभव है क्योंकि

नए-नए ऐतिहासिक शोध आए दिन इनकी संख्या में वृद्धि करते रहते हैं. हमको किसी भी ऐतिहासिक निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले उस विषय पर उपलब्ध सभी ऐतिहासिक स्रोतों का अध्ययन करना चाहिए. किसी विषय के ऐतिहासिक स्रोतों का समग्र अध्ययन किए बिना हम जिन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं उनके गलत होने की सम्भावना बनी रहती है.

11 .14 सारांश

वो सभी तथ्य जो कि किसी विशिष्ट काल, किसी विशिष्ट क्षेत्र अथवा किसी विशिष्ट ऐतिहासिक व्यक्तित्व के विषय में प्राथमिक अथवा अनुषंगी जानकारी उपलब्ध कराते हैं, उन्हें ऐतिहासिक स्रोत कहा जाता है. माल्त्रावीसो (स्पेन) की गुफ़ाओं में 64000 वर्ष पुराने चित्र मिले हैं. दक्षिण-पश्चिम फ्रांस में पाषाणकालीन लेस्कौक्स गुफ़ा-चित्र विश्व-विख्यात हैं. इन चित्रों के माध्यम से हम तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का अनुमान लगा सकते हैं. भारत में भीम बैठका (मध्यप्रदेश) के गुफ़ा-चित्रों को यूनेस्को ने 'वर्ड हेरिटेज साइट' घोषित किया है .किसी भी काल की कब्रों को उस काल के लिए महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत माना जाता है. इन कब्रों से हमको तत्कालीन धर्म, संस्कृति, आचार-विचार के विषय में उपयोगी जानकारी मिलती है. आधुनिक इतिहासकारों द्वारा समुद्र-विज्ञान का उपयोग समुद्र के भीतर लुप्त सभ्यताओं तथा नगरों की खोज में किया जा रहा है. समुद्र की तलहटी में प्राप्त ऐतिहासिक भग्नावशेष भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत हो सकते हैं. अजंता की गुफ़ाओं के चित्रों का हम तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए उपयोग कर सकते हैं.

शिलाओं, दीवालों, स्तंभों, स्तूपों, ताम्र-पत्रों एवं मुद्राओं पर उत्कीर्णित प्रशासनिक, धार्मिक, दान-सम्बन्धी अनुदान-विषयक आदि अभिलेखों की ऐतिहासिक स्रोतों में गणना की जाती है. सरकारी दस्तावेजों के माध्यम से हम इतिहास की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं. सार्वभौमिक इतिहास विषयक ग्रंथों का अध्ययन कर हम वैश्विक इतिहास के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं. सेंट अगस्ताइन, इब्न खल्दून, स्पेंगलर तथा टॉयनबी के लेखन में हमको सार्वभौमिक इतिहास की झलक मिलती है. भौगोलिक खोजों, औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना तथा वाणिज्यिक क्रान्ति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है. भौगोलिक खोजों के इतिहास को हम ऐतिहासिक स्रोत मान सकते हैं. मुद्राओं तथा सिक्कों के माध्यम से हम तत्कालीन व्यापार, अर्थ-व्यवस्था, सामाजिक संगठन, धार्मिक आस्था, धामिक दृष्टिकोण, सैनिक उपलब्धि, सांस्कृतिक गतिविधि, तकनीकी प्रगति आदि के विषय में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं. प्राचीन लिपियों को पढ़ पाने से हमको इतिहास के रहस्यों को उद्घाटित करने में बहुत सफलता मिली है. धार्मिक साहित्य अपने समय के धार्मिक विश्वास, सामाजिक-व्यवस्था, मानव-आचरण, रीति-रिवाज, आचार-विचार, राजनीतिक संस्थाओं, सांस्कृतिक स्थिति का प्रामाणिक चित्रण करते हैं.धर्म-निरपेक्ष साहित्य तत्कालीन सामाजिक व आर्थिक दशा का चित्रण करता है.

विदेशी यात्रियों के यात्रा-वृतांतों को हम महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत मान सकते हैं. इन वृतांतों से से हमको इतिहास के अनेक अनछुए पहलुओं की जानकारी मिलती है. 'रामायण', 'महाभारत', 'दि इलियाड', 'दि ओडसी' हेरोडोटस कृत 'दि हिस्ट्रीज़',प्लेटो कृत 'दि रिपब्लिक', कौटिल्य कृत 'अर्थशास्त्र', इब्न खलदून कृत 'मुक़द्दमा' निकोलो मेकियावेली कृत 'दि प्रिंस', थॉमस मोरे कृत 'उटोपिया', एडवर्ड गिबन कृत 'दि डिक्लाइन एंड फ़ाल ऑफ़ दि रोमन एम्पायर', ओसवाल्ड अर्नाल्ड स्पेंगलर कृत 'दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट', अर्नाल्ड जोज़फ़ टॉयनबी कृत 'ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री' लुई फ़र्नान्डेज़ कृत 'डिस्कवरीज़ एंड इन्वेंशंस', जोसेफ़ जेकोब्स कृत 'दि स्टोरी ऑफ़ ज्योग्राफिकल डिस्कवरी' आदि ग्रंथों को हम ऐतिहासिक स्रोत मान सकते हैं. इतिहास से सम्बद्ध अन्य विषयों के ग्रंथों

को भी ऐतिहासिक स्रोत के रूप में प्रयुक्त किया जाता है. विश्व के विभिन्न छोटे-बड़े संग्रहालयों में इतिहास के प्राथमिक स्रोतों एवं अनुषंगी स्रोतों का अपार भंडार है. इसी प्रकार विश्व के शीर्षस्थ अभिलेखागारों तथा पुस्तकालयों में प्राचीनतम पांडुलिपियों से लेकर आधुनिकतम ऐतिहासिक ग्रंथों का ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में उपयोग किया जा सकता है.

महल, किले और स्मारक भी इतिहास के स्रोत होते हैं. मिस्र के पिरामिड, चीन की दीवाल आदि के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं.

उत्तरी-यूरोप में विकसित पुनर्जागरणकालीन कला उस काल में हुई दर्शन, साहित्य, संगीत और विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति का प्रतिबिम्बन है.

भारत में ज्ञान के क्षेत्र में श्रुत परंपरा का अत्यंत आदरपूर्ण स्थान है. यूनानी इतिहासकारों- हेरोडोटस तथा थ्यूसीडाइड्स ने, अपने इतिहास लेखन में मौखिक इतिहास का अत्यधिक आश्रय लिया है. आधुनिक काल में मौखिक इतिहास की महत्ता बढ़ गयी है. लोक-गाथा, लोक-गीत, आल्हा, जनश्रुति आदि मौखिक इतिहास के अंतर्गत आते हैं. प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत समकालीन साक्ष्य आते हैं. अनुषंगी स्रोत अथवा सहायक स्रोत वो साक्ष्य होते हैं जिनको दर्ज करने वाला उस घटना के समय वहां विद्यमान नहीं होता है.

ज्ञात सभ्यताओं में मिस्र की सभ्यता प्राचीनतम मानी जाती है. पिरामिडों का अध्ययन कर तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थिति का अध्ययन कर सकते हैं. उत्खनन से प्राप्त लगभग 5000 से 3500 वर्ष प्राचीन हड़प्पा की सभ्यता के अवशेषों को हम ऐतिहासिक स्रोत मान सकते हैं. इसी प्रकार ओल्मेक सभ्यता तथा प्राचीन ईरानी सभ्यता के अवशेषों को हम ऐतिहासिक स्रोत मानकर महत्वपूर्ण जानकार प्राप्त कर सकते हैं. विश्व के विभिन्न छोटे-बड़े संग्रहालयों में इतिहास के प्राथमिक स्रोतों एवं अनुषंगी स्रोतों का अपार भंडार है. विश्व के शीर्षस्थ अभिलेखागारों तथा पुस्तकालयों में प्राचीनतम पांडुलिपियों से लेकर आधुनिकतम ऐतिहासिक ग्रंथों का ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में उपयोग किया जा सकता है. हमको किसी भी ऐतिहासिक निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले उस विषय पर उपलब्ध सभी ऐतिहासिक स्रोतों का अध्ययन करना चाहिए.

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए

1. प्रागैतिहासिक गुफ़ा-चित्र
2. ऐतिहासिक स्रोत के रूप में विदेशी यात्रियों के वृतांतों की महत्ता
3. ऐतिहासिक स्रोतों के भंडार के रूप में संग्रहालयों तथा अभिलेखागारों की महत्ता

11 .15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 11.3.3 प्रागैतिहासिक गुफ़ा-चित्र

2. देखिए 11.1.3. यात्रा वृतांत

3. देखिए 11.7 संग्रहालय, अभिलेखागार तथा पुस्तकालय

11 .16 संदर्भ ग्रंथ सूची

कालिंगवुड, आर0 जी0 - दि आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री, लन्दन, 1978

स्टडी ऑफ़ मॉडर्न हिस्ट्री' हार्लो, 1999

कॉलिंगवुड आर. जी. – 'दि मैप ऑफ़ नॉलिज', ऑक्सफ़ोर्ड, 1924
रैंके, लियोपोल्ड वान, 'यूनिवर्सल हिस्ट्री: दि ओलडेस्ट ग्रुप ऑफ़ नेशंस एंड दि ग्रीक्स', स्क्रिबनेर, 1884
वेल्स, एच. जी. – 'दि आउटलाइन ऑफ़ हिस्ट्री: बीइंग ए प्लेन हिस्ट्री ऑफ़ लाइफ एंड मैनकाइंड' न्यूयॉर्क, 1921
नौफ़, एल्फ्रेड ए. – 'ओसवाल्ड स्पेंगलर, दि डिक्लाइन ऑफ़ दि वैस्ट', न्यूयॉर्क, 1962
हटिंगटन, सैमुअल पी. – 'क्लैश ऑफ़ सिविलाइज़ेशंस एंड रिमेकिंग ऑफ़ वर्ड ऑर्डर', न्यूयॉर्क, 2003
टॉयनबी, अर्नाल्ड, जे. –' ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री, 12 खण्ड, लन्दन, 1946

11 .17 निबंधात्मक प्रश्न

1. ऐतिहासिक स्रोत के रूप में धार्मिक साहित्य तथा धर्म-निरपेक्ष साहित्य का आकलन कीजिए.

इकाई बारहः मौखिक इतिहास

12.1 प्रस्तावना

12.1.1 पुरातात्विक स्रोत

12.1.2 लिखित स्रोत

12.1.3 मौखिक स्रोत

12.2 उद्देश्य

12.3 मौखिक इतिहास

12.3.1 परंपरा से प्राप्त मौखिक इतिहास

12.3.2 व्यक्तिगत साक्षात्कार से मौखिक इतिहास

12.4 साक्षात्कार पद्धति से मौखिक इतिहास का अध्ययन

12.4.1 साक्षात्कार के पूर्व

12.4.2 साक्षात्कार

12.4.3 साक्षात्कार के पश्चात

12.4.4 मौखिक स्रोतों की विश्वसनीयता एवं वैधता

12.5 मौखिक स्रोत

12.5.1 परंपरागत मौखिक स्रोत

12.5.2 गैर परंपरागत मौखिक स्रोत–

12.6 मौखिक स्रोत के क्षेत्र

12.6.1 निचले तबके का इतिहास

12.6.2 महिलाओं का इतिहास

12.6.3 रंगभेद एवं अल्पसंख्यकों का इतिहास

12.7 सारांश

12.8 तकनीकी शब्दावली–

12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.10 प्रश्नावली

12.1 प्रस्तावना

अतीत में घटी घटनाओं का क्रमबद्ध अध्ययन ही इतिहास है। इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति इति–ह–आस से हुआ है, जिसका अर्थ होता है इस प्रकार हुआ था। अगर इसे हम दूसरे शब्दों में कहें तो यह निश्चित रूप से इस प्रकार हुआ था वह जो कहा जाता है, वह इतिहास है। हेरोडोटस ने इतिहास के लिए पहली बार हिस्ट्री शब्द का प्रयोग किया है। ग्रीक भाषा का हिस्टोरी शब्द इतिहासकार के लिए प्रयुक्त हुआ है जो वाद विवाद का निर्णय करने में समर्थ होता था अर्थात वह विषय का अच्छा ज्ञाता होता था। उनके अनुसार इतिहास गवेषणा एवं अनुसंधान था।।

इतिहास की व्याख्या इतिहासकारों ने अपने अपने तरीके से किया है। रेनियर ने हिस्ट्री को एक कहानी के रूप में परिभाषित किया है। हेनरी पेरी ने इतिहास को समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों की उपलब्धियों की कहानी बताई है। इसी प्रकार से गार्डनर लिखते हैं कि इतिहासकार अतीत के तथ्यों पर उस काल की घटनाओं का एक परी कल्पनात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। स्पष्ट है कि इतिहास का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है।।

वस्तुतः इतिहास मानव समाज के कार्य एवं उपलब्धियों का क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक लेखा–जोखा है। किंतु अतीत के इस जीवंत विवरण में सिर्फ उच्च कुलीन या व्यक्ति विशेष तक सीमित होने के कारण प्राय क्षेत्र विशेष के इतिहास में पूर्णता नहीं दिखाई देती है। इस कारण बस सबाल्टर्न सोच के जनवादी इतिहासकार अब उन लोगों को भी इतिहास के पन्नों पर ला रहे हैं जिन्हें अभी तक इतिहास से परे रखा गया था। उनके अनुसार किसी भी देश का इतिहास तब पूरा माना जाएगा जब वहां के सारे वर्गों को इतिहास में स्थान दिया जाएगा कहां जा सकता है की इतिहास मूलता काल अंतराल में उपस्थित साधनों से परिवर्तित होने वाले मानव समाज आर्थिक तंत्र और सामाजिक दशा दिशा का अध्ययन एवं अनुसंधान है।

इतिहास अन्य विषयों की तरह ही अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है जिसका उद्देश्य हमें भूत काल की घटनाओं का बोध कराना होता है क्रोचे के अनुसार अतीत की जानकारी देने के कारण वर्तमान काल की पथ प्रदर्शक होने से यह विषय महत्वपूर्ण होने के साथ ही मानव जीवन में उपयोगी है अर्थात इतिहास अतीत के कौतूहल ओ अथवा स्वार्थों का नहीं अपितु वर्तमान कालीन जीवन के कौतूहल अथवा स्वार्थों का समाधान प्रस्तुत करता हैं।

इतिहास के अध्ययन से मानव समाज उन दोषियों को दोहराने से बच सकते हैं, जिससे पहले कभी हानि उठानी पड़ी थी। प्राचीन सभ्यता के उत्थान पतन की कहानियां लोगों के रहन–सहन, पहनावा ,खानपान, आर्थिक उपार्जन आदि सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक राजनीतिक तत्वों का अध्ययन कर भविष्य को अच्छा बनाने के लिए निर्णय लेने में सहायता लिया जा सकता है। इतिहास का व्यवसायिक उपयोग भी कम नहीं है। एक पत्रकार एवं योजना कारों के लिए इतिहास की जानकारी बहुत आवश्यक है। इतिहास की व्यवसायिक महत्ता एवं उपादेयता को देखते हुए पुस्तकालय, अभिलेखागार आदि ऐतिहासिक स्थलों के संवर्धन एवं संधारण पर विशेष ध्यान दिए गए हैं। अतः यह विषय मनुष्य को बुद्धिमान बनाता है एवं योजना बनाने में सहायता प्रदान करता है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि इतिहास अध्ययन समाज के प्रगति से संबंधित अतीत का अध्ययन है। अतीत के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धति का अनुप्रयोग एवं विश्लेषण के कारण यह सामाजिक विज्ञान की एक शाखा के रूप में स्वीकार की गई है। भूतकाल की घटनाओं का क्रमबद्ध

अध्ययन प्रमाणिक तथ्यों के आधार पर इस विषय के अंतर्गत किया जाता है कॉलिंगवुड के अनुसार अतीत को वर्तमान की दृष्टि से ही देखा जा सकता है इसलिए इतिहासकार प्रामाणिक तथ्यों का संकलन कर समसामयिक परिवेश का परिकल्पना आत्मक पुनर्निर्माण करता है। यह प्रवृत्ति इतिहास लेखन कहलाती है

इतिहास लेखन में प्रामाणिक तत्वों के साथ–साथ काल निर्णय का बोध एवं उनका उचित अनुप्रयोग अत्यंत आवश्यक है। इतिहास मात्र तथ्यों का संकलन नहीं है अपितु यह अतीत का व्याख्यात्मक पुनर्निर्माण होता है जिसे प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर गड़ा जाता है कार लेकर के अनुसार ऐतिहासिक तथ्यों का इतिहासकार के लिए तब तक कोई अस्तित्व नहीं रहता जब तक कि वह उनकी पुनर्रचना ना करें।

इतिहासकार के लिए वर्तमान परिदृश्य में अतीत की व्याख्या करना किसी चुनौती से कम नहीं होती है समुचित तथ्यों के संकलन, अध्ययन , विश्लेषण तथा तथ्यों के प्रति परीक्षण के आधार पर उन्हीं तथ्यों के प्रयोग से वह अतीत की व्याख्या करता है। इतिहास लेखन के लिए विश्वसनीय स्रोतों का महत्वपूर्ण स्थान होता है, विश्वसनीय स्रोतों की अनुपस्थिति में लिखी गई सामग्री कपोल कल्पित होकर केवल मनोरंजन का साधन बन सकती है। आधारहीन स्रोतों के बगैर लिखा गया इतिहास का ऐतिहासिक घटनाओं की सही जानकारी नहीं दे सकता है।

इतिहास के स्रोत व विशेष सामग्री है जिसके आधार पर इतिहासकार अतीत की कल्पना कर इतिहास लिखता है। प्राचीन मानव द्वारा उपयोग की जाने वाली वस्तुएं व उनके अवशेष वर्तमान में भी पाई जाती है। इन अवशेषों में गुफाएं, स्तूप , मंदिर , गढ़ , शिलालेख शिलालेख, मुद्राएं, सिक्के तथा प्राचीन मानव द्वारा उपयोग किए जाने वाले औजार बर्तन आदि शामिल है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक दस्तावेज, रीति–रिवाज, लोक परंपराएं , लोक कला , लोक साहित्य के आधार पर भी हमें मानव सभ्यता संस्कृति की जानकारी होती है। यह सभी सामग्रियां इतिहास के स्रोत कहलाते हैं। इतिहास जानने के लिए इन सभी स्रोतों को अध्ययन की सुविधा के लिए तीन भागों यथा पुरातात्विक स्रोत , लिखित शोध एवं मौखिक सूरत में बांटा जा सकता है।

12.1.1 पुरातात्विक स्रोत

प्रागैतिहासिक मानव पत्थर के बने हजारों एवं शस्त्रों का उपयोग करता था। तत्पश्चात वह प्रकृति में उपलब्ध धातुओं जैसे तांबा लोहा आदि धातुओं के औजार और शस्त्र बनाने लगा। प्राकृतिक आपदा समय के साथ आए बदलाव तथा अन्य कारणों से यह अवशेष भूमि के नीचे दब गए। इन अवशेषों को वैज्ञानिक पद्धति द्वारा उत्खनन कर बाहर निकाला जाता है जिसे पुरातात्विक उत्खनन कहते हैं उत्खनन में पाए गए प्राचीन काल के अवशेषों जैसे मंदिर गढ़ किला आजाद मृदभांड आदि वस्तुओं का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया जाता है जिसके आधार पर उस कालखंड की जानकारी प्राप्त होती है उत्खनन से प्राप्त मृदभांड के आकार रंग नक्काशी बर्तन की मोटाई आभूषण के आधार पर तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था मानव समाज के पारस्परिक संबंधों की जानकारी प्राप्त होती है ऐसे सभी वस्तुओं को हम पुरातात्विक स्रोत करते हैं ।

12.1.2 लिखित स्रोत

कागज कलम के आविष्कार से पहले भी प्राचीन मानव कच्ची ईंटों पैरों की छालों तार पत्रों भोजपत्र पर लिखा करता था। देव किरारी में एक कास्ट स्थान पाया गया है जिसमें लगभग 2000 वर्ष पूर्व का लेख अंकित है। अतीत में मानव ने मंदिर गुफाओं की दीवारों सिलाओ में अपने उत्थान पतन की कहानी को ताम्रपत्र बर्तनों तथा कच्ची ईंटों पर भी उकेरा है। जैसे–जैसे मनुष्य का

अनुभव और ज्ञान बढ़ता गया उसने लेखन की विभिन्न पद्धतियां विकसित की वैसे आदेश दान पत्र को शिलालेख तथा तांब्रम पत्र पर लिपिबद्ध किया। हालांकि या लिखित होते हुए भी पुरातात्विक सामग्री मानी जाती है उस समय के बाद साहित्य अनेक क्षेत्र बन गए जैसे काव्य कथा नाटक यात्रा वृतांत के साथ ही वैज्ञानिक विषयों पर भी लेखन किया गया उन विराम इस प्रकार के लिपिबद्ध सौदों को लिखित स्रोत कहते हैं।।

12.1.3 मौखिक स्रोत

अतीत संबंधी कुछ पठित अथवा कंठस्थ जानकारी मौखिक रूप से समाज में परंपरागत विद्यमान है यह सूचनाएं लिखित रूप में नहीं होती तथा पीढ़ी दर पीढ़ी परंपराओं के कारण स्वता संरक्षित होती रहती है इन सामग्रियों को मौखिक सोत कहते हैं मौखिक साधनों में लोकगीत कोमा लोक कथाएं, दोहे, गाथा गीत लोकोक्तियां आदि का समावेश होता है। इसके साथ ही व्यक्ति या समूह द्वारा अनुभव किए गए यथार्थ से संबंधित विवरण, प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा किसी घटना का विशेष का वर्णन, अनुश्रुति, साक्षात्कार, भाषण वह वक्त भी भी मौखिक शोध के अंतर्गत लिए जा सकते हैं।

12.2 उद्देश्य

मौखिक इतिहास लेखन के उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं।

अभी तक इतिहास में हम लोगों के पास वैसे ही जानकारी प्राप्त हुई है जिसका कोई प्रमाण या किसी प्रकार का स्रोत विद्यमान रहा हो अतः मौखिक इतिहास लेखन का एक प्रमुख उद्देश्य यह है कि इतिहास में जिन विषयों को अभी तक प्रमाण ना मिलने के कारण या प्रमाण न होने के कारण उसे इतिहास में कोई जगह नहीं दी गई उसे इतिहास के पन्नों पर लाना है। इतना ही नहीं राष्ट्र के प्रति प्रेम भावना जगाने तथा अत्याचारी ताकतों के प्रति घृणा एवं विरोध की भावना पैदा करने के लिए हमारे बहुत सारे वीर सपूत देश के खातिर शहीद हो गए परंतु उनका कोई इतिहास हमारे सामने नहीं है लेकिन मौखिक सौदों में आज भी जिंदा है हिंदुस्तान की आजादी के लिए वीरों की शहादत के किस्से क्रांतिकारी घटनाओं वह देश की आजादी की लड़ाई की कहानी मौखिक रूप से समाज में आज भी प्रवाहित हो रही है। इसी प्रकार से क्रांतिकारी आंदोलन में स्वर्गीय बद्री नारायण सिंह एवं मां तारा देवी का लोक कथाओं के रूप में हमारे बीच जीवित है परंतु इतिहास के पन्नों पर इन्हें जगह नहीं दी गई। इसी प्रकार से उपेक्षित व सर्वहारा वर्ग को मौखिक इतिहास के द्वारा ही पहचान दिलाना तथा इतिहास के पन्नों पर लाना मुख्य उद्देश्य इतना ही नहीं मजदूरों का इतिहास महिलाओं का इतिहास अल्पसंख्यकों का इतिहास इस मौखिक इतिहास में धारा इतिहास लेखन का एक प्रमुख बिंदु के रूप में उभरना इसका मुख्य उद्देश्य है।

12.3 मौखिक इतिहास

मौखिक इतिहास इतिहासकारों या शोधार्थियों द्वारा संग्रहित सूचनाओं का वह इतिहास है जो किसी व्यक्ति के स्वयं के अनुभव व असमिति पर आधारित होती है। जिसमें वह अतीत में घटी घटना या सुनी घटना को स्मृति के आधार पर कहता या सुनता है। परिवार में यह सूचनाएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होती रहती है। अतीत के आंखों देखी साक्ष्य के अलावा लोकगीत वीर गीत यह वीर गाथाएं तथा हुआ कहानियां जो पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती आई है को भी मौखिक इतिहास के स्रोत के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। मौखिक इतिहास बड़े बुजुर्गों के अनुभव या किसी विशेष वर्ग के प्रतिनिधि के साक्षात्कार तक सीमित नहीं है अपितु यह

समाज के हर वर्ग तथा सभी आयु के व्यक्तियों से संबंधित है जो साक्षात्कार के समय आवश्यक जानकारी उपलब्ध करा सकें।।

मौखिक इतिहास को अनेक विद्वानों ने अलग–अलग तरीकों से परिभाषित किया है। इतिहासकार फिल्म बॉर्डर के अनुसार मौखिक इतिहास अतीत की घटनाओं से संबंधित वह यादें हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी स्थानांतरित होती है। प्रसिद्ध इतिहासकार सुधीर कुमार सिंह के अनुसार मौखिक इतिहास व्यक्ति, परिवार , महत्वपूर्ण घटनाओं, जीवन चर्या के संबंध में ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित सूचनाओं का वीडियो टेप या ऑडियो टेप के माध्यम से संकलन व अध्ययन करता है। इसी प्रकार से प्रसिद्ध इतिहासकार दामोदर सिंह ने मौखिक इतिहास को परिभाषित करते हुए कहा है कि मौखिक इतिहास वह प्रक्रिया है जिससे अतीत में घटी घटना के संबंध में सूचनाएं अनुभव किए व्यक्तियों की समिति को जांच कर ली जा सके। मौखिक इतिहास के क्षेत्र में कार्य कर चुके सुप्रसिद्ध विद्वान ऑल थॉमसन के अनुसार अतीत की घटना को प्रत्यक्षदर्शी के साक्षात्कार के माध्यम से जानकर इतिहास के पुनर्निर्माण को मौखिक इतिहास के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। इसी प्रकार मरजोरी हंट के अनुसार मौखिक इतिहास के आधुनिक शैली में योजनाबद्ध साक्षात्कार के माध्यम से व्यक्तियों की स्मृति को करवाने एवं इसे ऑडियो या वीडियो टेप के माध्यम से रिकॉर्ड कर ऐतिहासिक सूचनाओं को एकत्र किया जाता है। जिसका उद्देश्य किसी स्थान , घटना को व्यक्ति यह सांस्कृतिक समूह को उभारने के लिए दस्तावेज को तैयार करना है। प्रायरू मौखिक इतिहास से संबंधित सूचना लिपिबद्ध नहीं होती है परंतु परंपराओं के माध्यम से स्थानांतरित होती रहती है। आधुनिक जीवन शैली में इन सूचनाओं के विलोपन के दृष्टि से इनके संकलन के प्रयास वर्तमान में किए जा रहे हैं।।

स्पष्ट है स्वयं के संबंध में, परिवार के संबंध में , या किसी घटना के संबंध में आंखों देखी बातें, व्यक्तिगत अनुभव या दृष्टिकोण से संबंधित जानकारियों को साक्षात्कार द्वारा एकत्र करना , उनका परीक्षण करना तथा विश्लेषण के पश्चात इतिहास के रूप में अनुप्रयोग करने की प्रवृत्ति को मौखिक इतिहास कहते हैं। ब्रिटिश एवं मौखिक इतिहास का पाल थॉमसन ने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहां है कि मौखिक इतिहास व्यक्ति के चारों ओर बनने वाला इतिहास है। यह जिंदगी को इतिहास बनाता है और स्वयं के द्वारा उसकी गुंजाइश को बढ़ाता है। मौखिक इतिहास के नायक प्रसिद्ध व्यक्ति या नेताओं के बाद आए संपूर्ण लोक होता है। मौखिक सूत्रों से मौखिक इतिहास निम्न दो तरीकों से प्राप्त किए जा सकते हैं–

12.3.1 परंपरा से प्राप्त मौखिक इतिहास

यह वे स्रोत है जो मानव ने चेतन या प्रत्यक्ष प्रयास द्वारा भावी संतति के लिए छोरे हैं। इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–1– मौखिक परंपरा 2– लिखित या मुद्रित परंपरा 3– चित्रित परंपरा।

बस्तुतः जीवन में घटने वाली घटनाओं में से कुछ विशेष घटनाएं किसी न किसी प्रकार से व्यक्ति विशेष या समाज को प्रभावित करती है और यह समाज में चर्चा का विषय बनती है। ऐसी विशेष घटनाएं कालांतर में कथा या कहानियों या गीतों के माध्यम से लोक जीवन में उपस्थित रहती है तथा मौखिक बातचीत परंपराओं के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती रहती है। इन्हीं लोकगीतों , गाथाओं ,कहानी, मिथक, लोकोक्तियों, चित्रों को आदि का अध्ययन कर इनसे ऐतिहासिक सूचनाओं की खोजवा संकलन कर इनका उचित विश्लेषण कर ऐतिहासिक जानकारियों को प्रकाशित करना शोधार्थी का उद्देश्य होता है।

12.3.2 व्यक्तिगत साक्षात्कार से मौखिक इतिहास

व्यक्तिगत साक्षात्कार के अध्ययन से मौखिक इतिहास की प्राप्ति मुख्यतः दो बिंदुओं व्यक्ति विशेष के स्मृति एवं साक्षात्कार के दौरान समिति के सहारे दी गई सूचना पर आधारित होती है। इस प्रकार साक्षात्कार उपयोगी ऐतिहासिक जानकारी भी प्रदान कर सकता है इन सूचनाओं की खोज एवं इनका संरक्षण इतिहासकार के लिए किसी चुनौती से कम नहीं होती है। इस पद्धति का उपयोग करते हुए इतिहासकारों की जिम्मेदारी होती है कि वह इन सूचनाओं की प्राप्ति के लिए कृ तसंकल्प हो।

अतीत में घटने वाली घटनाएं व्यक्ति विशेष के मानस पटल में चेतन अवचेतन अवस्था में अंकित होती रहती है और प्रायः यह समय अंतराल में धुंधली होती जाती है। साक्षात्कार के माध्यम से इन घटनाओं के संबंध में सूचनाओं को एकत्रित कर घटनाओं का ऐतिहासिक चित्रण किया जा सकता है।।

ज्ञात हो कि मौखिक इतिहास तथा साक्षात्कार पर्यायवाची नहीं है। साक्षात्कार किसी व्यक्ति के शब्दों या उत्तरों का रिकॉर्ड होता है जो इतिहासकार या प्रश्न करता द्वारा पूछे गए प्रश्नों के जवाब होते हैं। कोई भी साक्षात्कार किसी भी रूप में रिकॉर्ड किया गया हो सिर्फ एक सामान्य दस्तावेज या रिकॉर्ड होता है। इसी प्रकार मौखिक इतिहास वस्तुतः साक्षात्कार कर्ता तथा साक्षात्कार दाता के संयुक्त प्रयास से प्राप्त हुए सूचनाएं होती है जिसे इतिहासकार द्वारा अध्ययन , विश्लेषण ,संपादन,परीक्षण के पश्चात लिपिबद्ध किया जाता है।।

12.4साक्षात्कार पद्धति से मौखिक इतिहास का अध्ययन

मौखिक स्रोतों से मौखिक इतिहास प्राप्ति के लिए कार्य प्रणाली विकसित करने हेतु अनेक इतिहासकारों ने व्यापक अनुसंधान किया है। साक्षात्कार को लेकर प्राप्त मौखिक सूचनाओं का प्रयोग इतिहास लेखन में किया जा सकता है। साक्षात्कार पद्धति से मौखिक इतिहास अध्ययन के निम्नलिखित प्रमुख तीन चरण यथा साक्षात्कार के पूर्व , साक्षात्कार एवं साक्षात्कार के पश्चात प्राप्त मौखिक शोध से इतिहास लेखन हो सकते हैं।

12.4.1 साक्षात्कार के पूर्व

सर्वप्रथम इतिहासकार के लिए यह जानना आवश्यक होता है कि वह किस क्षेत्र में कार्य करना चाहते हैं तथा उनका उद्देश्य क्या है। उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें किन सूचनाओं की आवश्यकता है। यह विचार कर ही लक्ष्य का निर्धारण आवश्यक होता है कि क्या मौखिक इतिहास पद्धति से उद्देश्य की पूर्ति होगी। रूचि के अनुसार विषय चयन करना इस दिशा में एक सकारात्मक पहल हो सकती है। कार्य प्रारंभ करने से पूर्व परियोजना का सारांश लिखकर एवं लक्ष्य को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना सफल साक्षात्कार के लिए आवश्यक है।

उद्देश्य के निर्धारण के पश्चात योजना बनाना आवश्यक है कि उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किन–किन संसाधनों की आवश्यकता है। उद्देश्य की प्राप्ति में आने वाली संभावित रुकावटें तथा उन्हें दूर करने के लिए भी योजना बनाना आवश्यक है। योजना बनाते समय वित्तीय व अन्य संसाधन मैं लगने वाला समय का आकलन करना भी आवश्यक होता है। यह अनुमान लगाना आवश्यक है कि परियोजना पूर्ण करने में कितना समय लग सकता है। अन्य संसाधनों के तहत सूचना प्राप्त करने एवं उनके परीक्षण के संसाधन , नक्शा, शब्दकोश, अतिरिक्त स्टाफ, फोटोग्राफर, वीडियोग्राफर, साक्षात्कार को रिकॉर्ड करने के लिए टेप रिकॉर्डर या वीडियोग्राफी, औजार एवं

सामान्य संचार के लिए दूरभाष या मोबाइल कोमा आवागमन के लिए वाहन संबंधी योजना बनाना आवश्यक है।

12.4.2 साक्षात्कार

मौखिक स्रोतों से इतिहास अध्ययन की दिशा में साक्षात्कार के माध्यम से सूचनाएं प्राप्त होती है। उद्देश्य की प्राप्ति के लिए योजनाबद्ध साक्षात्कार आवश्यक है। स्थान विशेष पर निवास करने वाले व्यक्ति चाहे वह वहां के मूल निवासी हो या ना हो उनसे उस क्षेत्र के संबंध में जानकारी मिलती है किंतु परंपराओं के संबंध में सूचना प्राप्ति के लिए उस व्यक्ति का क्षेत्र व परंपराओं से संबद्धता आवश्यक है। किसी विशेष घटना का घटना अस्थल के समीप का क्षेत्र ज्यादा अच्छा रहता है।

मौखिक स्रोतों के अध्ययन हेतु प्रत्यक्ष व्यक्तियों का विशेष महत्व है। सफल साक्षात्कार के लिए व्यक्तियों के चयन के समय घटना से उनका सम्बंध,व्यक्ति का उम्र,काम करने की क्षमता ,चरित्र के पहचान की छमता, प्रश्नों के प्रति संवेदनशीलता एवं गंभीरता , अच्छी यादाश्त व वर्णन करने की क्षमता वाले व्यक्ति से सूचनाएं मिल सकती है। साक्षात्कार के समय व्यक्ति का सकारात्मक रवैया भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। साक्षात्कार को सुनियोजित ढंग से करने के लिए उचित उपकरणों का होना भी आवश्यक है। इन औजारों के उपयोग हेतु चेक लिस्ट बना लेना चाहिए। साक्षात्कार की आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक के विकास के साथ ऑडियोग्राफी एवं वीडियोग्राफी भी की जा सकती है। अचानक पहुंचकर साक्षात्कार लेने का प्रयास महत्वपूर्ण व्यक्तियों के नाराजगी व असहयोग का कारण बन सकती है। इसलिए साक्षात्कार दाता से पूर्व में अपना परिचय देकर वह उद्देश बताकर अनुमति ले लेनी चाहिए। साक्षात्कार हेतु प्रश्नों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। पूर्व में किए गए शोध कार्य साक्षात्कार के लिए प्रश्न तैयार करने में सहायक होते हैं। प्रश्नों के चयन में विषय से संबंधित प्रश्नों के पूर्व साक्षात्कार के लिए उपस्थित व्यक्ति का परिचय एवं विषय या घटना से उनकी संबद्धता से संबंधित प्रश्न पूछे जाने से विषय प्रवेश में सहायता होगी। विषय संबंधी प्रश्नों के चयन में व्यक्ति की उम्र रुचि अनुभव वह सामाजिक स्थिति का ध्यान रखने से अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

व्यक्तिगत प्रश्नों से संबंधित उत्तरों के लिए अन्य लोगों की उपस्थिति काया रुकावटें लाती है। अतः अन्य व्यक्तियों की वहां पर उपस्थिति से पड़ने वाले प्रभाव को देखते हुए अस्थल का चयन करना उचित रहता है। साक्षात्कार के दौरान उपस्थित व्यक्ति की रुचि व शारीरिक अवस्था को ध्यान में रखकर साक्षात्कार करना आवश्यक है।प्रायः साक्षात्कार के लिए 2 घंटे से अधिक का समय होने पर साक्षात्कार दाता थकावट का अनुभव कर सकता है तथा इससे साक्षात्कार की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। सहज वातावरण अच्छे साक्षात्कार के लिए अत्यंत आवश्यक है।

12.4.3 साक्षात्कार के पश्चात

प्राप्त मौखिक रूप से इतिहास लेखन– साक्षात्कार से प्राप्त रिकॉर्डिंग का उचित रखरखाव आवश्यक है जिससे सूचनाओं को लंबे समय पश्चात में ही भविष्य में उसके अन्य अनुप्रयोग किए जा सके। अध्ययन की सुविधा के लिए अनु रक्षित सूचनाओं को विषय अनुसार या क्रमवार या तिथि वार सूचीबद्ध किया जा सकता है। सूचीबद्ध ता एवं विषय वार रखने से सामग्रियां बिना अधिक खोज ढूंढ के सरलता से प्राप्त होगी। सूचनाओं को विषय वार एवं सूचीबद्ध रखने से प्राप्त सूचनाओं में कमी को सरलता से जाना जा सकता है। इतना ही नहीं साक्षात्कार के दौरान प्राप्त सूचनाएं रिकॉर्डेड होने के कारण ध्वनि के रूप में सुनी जा सकती है। लिपिबद्धता वह क्रिया है जिसके द्वारा

रिकॉर्ड की गई साक्षात्कार को विश्वसनीय लिखित सामग्री में बदला जा सकता है। इस दौरान यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बोले हुए शब्द के भावो वाह सूचनाओं में परिवर्तन ना हो। साक्षात्कार दाता की सहमति भी लिपिबद्ध दस्तावेज ई करण के पश्चात उन्हें दिखा कर ली जा सकती है साथ ही साथ साक्षात्कार से प्राप्त सूचनाओं के विश्लेषण तथा परीक्षण या प्रति परीक्षण के पश्चात ही मौखिक इतिहास लेखन का कार्य संभव हो सकेगा। परीक्षण के प्रथम चरण में साक्षात्कार दाता से संबंधित जाट व विश्वसनीयता भी आवश्यक है मौखिक इतिहास स्मृति पर आधारित होती है जो मुख्यतः अतीत को बयान करने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है ।

किसी घटना के संबंध में स्मृति को पूरा का पूरा वापस बुलाए जाने में कठिनाई स्वाभाविक होती है। क्योंकि समय के साथ स्मृति का तरह बनते जाता है। जो बाद के अनुभव तथा घटने वाली घटना के स्थानीय परिवेश तथा स्वयं के मानव मस्तिष्क पर पड़ने वाले कारकों पर निर्भर करती है। प्राय साक्षात्कार से प्राप्त घटनाओं का वर्णन लगभग एक जैसे प्रतीत होते हैं किंतु व्यक्ति दर व्यक्ति एवं समय अंतराल के साथ उसी घटना के वर्णन में स्वाभाविक बदलाव होता है। किसी भी संभावित त्रुटि को दूर करने हेतु आवश्यकता अनुसार अन्य लोगों से साक्षात्कार लेकर तथ्यों की विवेचना की जा सकती है क्योंकि मौखिक इतिहास लेखन के लिए हर स्तर पर सतर्कता आवश्यक है।

साक्षात्कार से प्राप्त सूचनाओं की केबल लिपि वैधता ही मौखिक इतिहास नहीं होता है। अपितु इसका उद्देश्य तथ्यों को इकट्ठा कर प्राथमिक दस्तावेज तैयार करना एवं अतीत का परी कल्पनात्मक पुनर्निर्माण करना है। एकत्रित सूचनाओं को बारीकी से अध्ययन कर अन्य द्वितीयक ऐतिहासिक सामग्रियों से परीक्षण कर वह अतीत की कल्पना करता है की जिस घटनाओं के संबंध में वह तथ्यों को एकत्रित कर रहा है वह किस प्रकार घटी रही होगी। परिकल्पना के पश्चात इतिहासकार संबंधित विषय या उद्देश्यों पर इतिहास लेखन का कार्य करता है।

12.4.4 मौखिक स्रोतों की विश्वसनीयता एवं वैधता

प्रचलित इतिहास अध्ययन प्रणाली मौखिक सूत्रों से प्राप्त इतिहास को संदेहास्यपद मानती है। किंतु इन तथ्यों से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि इतिहासकारों ने प्राचीन इतिहास लेखन में मौखिक स्रोतों का अनूप्रयोग किया है। मौखिक स्रोतों के अध्ययन से इतिहास लेखन करने वाले विद्वानों का मत है कि मौखिक स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं की वैधता को नकारा नहीं जा सकता है। किंतु इतिहास लेखन के लिए यह आवश्यक है कि सूचनाओं का परीक्षण एवं ग्रहण अध्ययन के पश्चात ही इसका उपयोग करें। कृष किसी भी व्यक्ति से प्राप्त होने वाली सूचना की विश्वसनीयता उस व्यक्ति की संस्कृति उस पर धार्मिक परंपराओं का प्रभाव एवं इससे प्राप्त ऐतिहासिक सच्चाई को देने के अधिकार पर आधारित होता है। मौखिक स्रोत की विश्वसनीयता के लिए यह जानना आवश्यक है कि सूचनाओं की प्राप्ति कहां और कैसे हुई है। प्राया घटनाओं या परंपराओं से संबंधित व्यक्ति से प्राप्त सूचना विश्वसनीय मानी जाती है।

12.5मौखिक स्रोत

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है एवं संचार समाज की बुनियादी आवश्यकता है। जनमानस द्वारा सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए अनेक माध्यम का प्रयोग किए जाते हैं जिनमें लिखित एवं मौखिक तथा सांकेतिक प्रमुख होते हैं। मौखिक स्रोत वह साधन है जिनसे सूचनाएं मौखिक रूप से ध्वनि तरंगों के रूप में प्राप्त होती है। प्रकृति प्रदत गुण के कारण मानव अतीत की किसी भी घटना के संबंध में सूचनाएं मानव मस्तिष्क में स्मृति के रूप में अंकित करता है। इन्हीं सूचनाओं को

परंपराओं के अध्ययन या व्यक्तिगत शाखा साक्षात्कार से प्राप्त किया जा सकता है। स्मृति या परंपराओं के द्वारा प्राप्त यह सभी सूचनाएं मौखिक स्रोत कहलाती है। इन सूचनाओं के संकलन एवं विश्लेषण परीक्षण से इन्हें ऐतिहासिक तथ्यों का रूप देकर मौखिक इतिहास लेखन में उपयोग किया जा सकता है।

अनेक व्यक्तिगत घटनाएं जिससे व्यक्ति अपने मानस पटल पर प्रकृति प्रदत गुण के कारण संजोए रखता है। कभी–कभी चर्चा के दौरान यह स्मृतियां जागृत होकर मुखरित होती है एवं सूचनाएं प्रदान करती है। व्यक्ति द्वारा अनुभवजन्य देखा सुनी घटनाएं या परी कल्पनाएं भी स्मृति के रूप में सुरक्षित रहती है। समय अंतराल में वह स्वयं इन्हें विभिन्न कारणों से याद करते रहता है और अवसर आने पर यशोदा मुखरित हो उठती है। अतीत से सूचनाएं प्राप्त करने की यह साधन है मौखिक स्रोत है। इतिहासकारों ने मौखिक स्रोतों को परिभाषित करते हुए लिखा है कि मौखिक साक्ष्य किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में संचित अनुभवजन्य स्मृति को साक्षात्कार के माध्यम से कहल वाकर ऐतिहासिक उद्देश्यों के लिए इस प्रकार संरक्षित करें कि इसे पुनः आवश्यकतानुसार उपयोग कर सकें। मौखिक स्रोतों को उनकी प्रकृति एवं उद्‌भव के आधार पर प्रमुख दो वर्गों में परंपरागत मौखिक शोध एवं गैर परंपरागत मौखिक साथ में विभक्त किया जा सकता है।

12.5.1 परंपरागत मौखिक स्रोत

शब्दकोशों मैं परंपरा शब्द का अर्थ उत्तराधिकार में प्राप्त एक के बाद एक मिली उपलब्धि है। परंपरागत मौखिक स्रोत वे सूचनाएं है जो लंबे समय से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को कह सुनकर देती आई है। विभिन्न घटनाओं के कारण वे सूचनाएं जो जनमानस में सोता विकसित होकर प्रचलित होती है जन श्रुति कहलाती है। किसी व्यक्ति द्वारा दूसरों से सुनकर अन्य व्यक्ति को कथा विक्रम या किसी घटना के संबंध में वर्णन करना अनुश्रुति कहलाता है।

जन श्रुति व अनुश्रुति के माध्यम से प्रसारित होने वाली सूचनाएं एवं परंपराएं प्रायर लोक कलाओं एवं लोक गाथाओं आदि मनो रंजीत साधनों के माध्यम से विकसित होती है। एक मानव से दूसरे मानव के मुंह से मुंह की यात्रा के दौरान इसका रूप और संवर ता है। परंपरागत मौखिक स्रोत , सामाजिक परंपराएं, तिथि , त्यौहार, पर्व आदि मनोरंजन के विभिन्न साधनों के द्वारा एवं क्षेत्रीय लोक साहित्य लोकगीत, मुहावरे , कहावतों आदि के माध्यम से समाज में विद्यमान रहते हैं। परंपराओं में क्षेत्रीय संस्कृतियों और उनकी मान्यताओं को शिव का करके एक समन्वित रूप लेने की अद्‌भुत क्षमता होती है। यह मूलत जनसाधारण के लिए जन्म देती है तथा उन्हीं के हित एवं कल्याण के लिए विकसित होती है परंपरा के विकास में नगर तथा ग्राम दोनों क्षेत्र के जन समुदाय का योगदान रहता है। परंपरागत मौखिक स्रोत मुख्यतः लोकगीत , लोककथा,व्यक्ति या घटना के संबंध में लघु कथाएं ,मिथक पौराणिक कथाएं आदि होते हैं।

सामान्य रूप से मिथक का अर्थ ऐसी परंपरागत कथा है जिसमें प्रायः ऐतिहासिक या प्राकृ तिक घटनाओं का वर्णन होता है जो अलौकिक एवं अति मानवीय होती है। यह मानव लोक से परे होने पर भी मानव जीवन के लिए प्रासंगिक हैं। मिथक की रचना में यद्यपि कल्पना का अनिवार्य योगदान रहता है फिर भी यह सत्य प्रतीत होते हैं। इतना ही नहीं अनेक विद्वानों ने मिथक को सत्य माना है। एरिस्का लहर के अनुसार मिथक सत्य दर्शन के उन समस्त रूपों की समस्ती का नाम है जो प्रयोग और प्रमाण से सिद्ध नहीं किए जा सकते हैं जो अनुभव और तर्क से परे हैं। सुदूर अतीत की जिन घटनाओं का पूरा वित्त मिथक विवरण प्रस्तुत करते हैं वह घटनाएं वास्तव में कभी घटी थी या नहीं यह जानने का हमारे पास कोई प्रत्यक्ष साधन नहीं है समय की दूरी इतनी अधिक होती है कि उन घटनाओं की ऐतिहासिकता को निश्चित करने के लिए प्रमाणों की अपेक्षा

नहीं की जा सकती है। ऐसी स्थिति में वह घटनाएं ऐतिहासिक है या नहीं यह तो विवाद का विषय हो सकता है किंतु इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता है कि जिन मूल्यों अथवा परंपराओं का वाहन पूरा वृत्त करते हैं उनका उस सांस्कृतिक कला वर्ग में कम से कम सैद्धांतिक अस्तित्व अवश्य ही रहा होगा जिन्हें सास्वत और स्वभाव बनाने के उद्देश्य संस्कृति के रचनाकारों ने पूरा भूतों के रूप में जनमानस की आस्था का विषय बना दिया। इस तरह इतिहास और पूरा वृत्त एक दूसरे से बहुत दूर नहीं रखे जा सकते हैं।

इसी प्रकार किसी व्यक्ति की विशेषताएं उनसे जुड़ी विशेष घटनाएं प्रेरक प्रसंग के रूप में समाज को प्रभावित करते हैं। कभी–कभी प्रसंग, लघु कथा या लतीफे का रूप धारण कर लोक का मनोरंजन करती है तथा नैतिक शिक्षा भी देती है। बुद्ध की जातक कथाएं या पंचतंत्र की कहानियां, अकबर बीरबल के किस्से या तेनालीराम के लतीफू को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। इन विवेचना ओं से स्पष्ट है कि मानव अपने रोजमर्रा के जीवन में विभिन्न प्रकार के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक क्रियाकलापों को संपन्न करता है। यह क्रियाकलाप गीत, कथा, कहानी, गाथा आदि लोक साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होकर लोकवार्ता के अंग बनते हैं।

12.5.2 गैर परंपरागत मौखिक स्रोत

गैर परंपरागत मौखिक स्रोत स्मृति आधारित व्यक्तिगत सूचनाएं है। व्यक्ति विशेष द्वारा देखी या सोनी या कहीं गई एवं अनुभव की गई सूचनाओं को गैर परंपरागत मौखिक शोध के अंतर्गत लिया जाता है। इस प्रकार के साक्ष्यों को व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से संग्रहित किया जाता है।

भाषण– किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति या समूह के सम्मुख किसी विषय से संबंधित दिए गए उद्‌बोधन को भाषण कहते हैं। भाषण मुख्यतः व्यक्ति द्वारा किसी उद्देश्य के लिए सम्मुख व्यक्ति को सूचनाओं या भावनाओं का मौखिक माध्यम से प्रसन्न होता है। भाषण दिए और सोने जाने के लिए होते हैं। इसलिए एक भाषण लिखित पाठ के अन्य स्वरूपों से बुनियादी स्वरूप से अलग होता है। भाषण देने की परंपरा सामाजिक एवं धार्मिक अवसरों पर भी दिखाई देती है । इसके साथ साथ मोबाइल व दूरभाष हो गए हैं। दूरभाष के द्वारा किए गए वार्तालाप को भी मौखिक सौदों के रूप में स्वीकार किया जाता है। इतना ही नहीं साक्षात्कार से प्राप्त सूचनाएं भी मौखिक स्रोतों का एक प्रमुख अंग माना जाता है। व्यक्तिगत साक्षात्कार के द्वारा व्यक्ति के अतीत के अनुभव के संबंध में आंखों देखी जानकारी तथा उनके द्वारा सुनी या अनुभव की गई सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है। वस्तुतः व्यक्ति अपने अनुभव को अपनी समिति के सहारे बयान कर सकता है। इस प्रकार के साक्षात्कार से हमें ऐतिहासिक सूचनाएं प्राप्त होती है जिनका उचित परीक्षण कर इसका उपयोग किया जा सकता इतिहास लेखन का कार्य भारत ही नहीं बल्कि विश्व स्तर पर बड़े पैमाने पर किया जा रहा है।

12.6 मौखिक स्रोत के क्षेत्र

मौखिक स्रोत का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इसमें मानव का भूत , वर्तमान, भविष्य सबकुछ समाहित है। संपूर्ण लोक मौखिक स्रोत के विषय वस्तु हैं। शताब्दियों के निरीक्षण और अनुभव के बाद जीवन के विविध व्यवहार में हम जिस संतुलित स्थिति तक पहुंचते हैं मौखिक परंपरा उसका संक्षिप्त परिचय देती है। वस्तुतः मौखिक स्रोत मानव के समग्र अनुभव की अभिव्यक्ति होती है। जैसा कि हम जानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज की प्रगति के लिए समय–समय पर विविध व्यवस्था समाज में प्रभावशाली होती रही है। जिनके आधार पर हमें उस समाज की दशा

दिशा व विचारधारा तथा संस्कृति की जानकारी प्राप्त होती है। जैसे विवाह व अन्य संस्कार, नारी का स्थान, विविध जातियां एवं उनकी प्रवृत्ति वाह अंतर्संबंध एवं समाज में प्रचलित परंपरा की निरंतरता के लिए किए जाने वाले उपाय आदि क्रियाकलाप सामाजिक परंपराओं से बंधकर एक निश्चित मान्यताओं को जन्म देते हैं। अतः प्राप्त मौखिक स्रोतों में जातिगत विषमता है जैसे ऊंच–नीच, भेदभाव, रंगभेद, उनकी जीवन शैली तथा नारी के विविध कार्यक्षेत्र एवं जीवन शैली का मनोवैज्ञानिक स्वरूप मुखरित होता है। इन सामाजिक स्वरूप का अध्ययन मौखिक सोतों के माध्यम से हम कर सकते हैं।

राष्ट्र के प्रति प्रेम भावना जगाने एवं अत्याचारी दांतो के प्रति घृणा एवं विरोध की भावना पैदा करने के लिए मौखिक स्रोत एक महत्वपूर्ण साधन रहे हैं। हिंदुस्तान की आजादी के लिए वीरों की शहादत के किस्से एवं क्रांतिकारी घटनाओं व देश की आजादी की लड़ाई की कहानी मौखिक रूप से समाज में प्रवाहित हो रही है। प्रोफेसर दामोदर सिंह एवं सुधीर कुमार सिंह जैसे इतिहासकारों ने मौखिक परंपरा से प्राप्त सो तो व साक्षात्कार विधि के प्रयोग से राष्ट्रीयता से संबंधित लेखन कार्य किया है। मौखिक स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं का अनुप्रयोग मौखिक इतिहास लेखन में इतिहासकारों ने अपनी रूचि के क्षेत्र के अनुसार भी किया जो निम्न प्रकार से है

12.6.1 निचले तबके का इतिहास

निचले तबके का अर्थ इतिहास निर्माण में उपेक्षित व सर्वहारा वर्ग को पहचान देकर इतिहास लेखन के केंद्र बिंदु को बदल कर नए क्षेत्रों पर जांच करना है। पारंपरिक इतिहास लेखन में सर्वहारा वर्ग की दशा प्रतिबिंबित नहीं होती है। मौखिक स्रोतों के अध्ययन से निचले तबके के लोगों के जनजीवन के संबंध में ऐतिहासिक जानकारियां एकत्रित की जा सकती है। आरंभिक दौर गैर अभिजात्य वर्ग से भी संपर्क किया गया। वस्तुतः आंकड़ों की दृष्टि से निम्न स्तरीय लोगों की संख्या अभिजात्य वर्ग की तुलना में बहुत अधिक होने के बावजूद ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में इन्हें अनुपातिक स्थान नहीं मिला पाया है। मौखिक इतिहास लेखन की विधा ने इतिहास लेखन में निम्न या सर्वहारा वर्ग की भागीदारी पर भी ध्यान दिया है।

12.6.2 महिलाओं का इतिहास

मौखिक इतिहास के द्वारा महिलाओं की जीवन से जुड़ी घटनाएं एवं उनकी जीवन शैली साथ ही साथ उनके द्वारा भोगे हुए यात्राओं को प्रकाशित करने का कार्य किया जा रहा है। महिलाओं के साक्षात्कार द्वारा उनकी समिति एवं अनुभव के संबंध में जानकारी एकत्र कर महिलाओं से जुड़े कुछ अनछुए पहलू की खोज एवं नवीन ऐतिहासिक तत्वों की संभावनाओं के कारण मौखिक इतिहास अध्ययन के रूप में इस सिद्धांत का प्रयोग किया जाता है। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं की समस्याओं को सामने लाना है जिससे घर परिवार के सदस्यों के बीच घटने वाली समस्याएं तथा बढ़ते हुए हिंसा व तलाक की घटना एवं संयुक्त परिवार के विघटन पर लग सके। साथ ही महिलाओं से जुड़े अन्य आयामों का अध्ययन भी किया जा सके।

12.6.3 रंगभेद एवं अल्पसंख्यकों का इतिहास

पारंपरिक इतिहास लेखन में अस्पृश्य एवं समाज के अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया है। मौखिक इतिहास के माध्यम से इन वर्ग के लोगों से संबंधित ऐतिहासिक पहलुओं को समाज के समक्ष लाने का प्रयास किया गया। काले व्यक्तियों के साथ गोरों द्वारा किए

गए दुर्व्यवहार की घटनाओं से संबंधिस्मृति पर अनेक लेख लिखे गए हैं। कई इतिहासकारों ने मौखिक इतिहास के माध्यम से इस क्षेत्र से संबंधित लेखन कार्य किया है।

12.7सारांश

मौखिक इतिहास इतिहास लेखन का प्रथम साधन है। लेखन कला के विकास से पहले भी मनुष्य अतीत की घटनाओं के प्रति सजग रहा है एवं अतीत की घटनाओं को वह अपने मनो मस्तिष्क में रखकर वाणी के सहारे ही संप्रेषित करता रहा। मौखिक रूप से वह अपनी आपबीती या सुनी बातों को स्वाभाविक रूप से समाज के साथ बांटता आया। इस प्रकार यह सूचनाएं वाचिक मौखिक परंपरा के सहारे पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती आ रही है। मानव समाज के विकास में इतिहास का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भाषाई विकास में भी बोली का प्रयोग पहले हुआ तत्पश्चात लिखने की कला विकसित हुई इसलिए यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि प्रारंभिक चरणों से ही इतिहास अध्ययन के लिए मौखिक स्रोत महत्वपूर्ण है।

मौखिक इतिहास लिखित परंपरा के उद्‌भव व विकास के साथ धूमिल हो गए द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात मौखिक साक्ष्य की वैधता एवं इसके लिए एवं इसके लिए पोर्टेबल टेप रिकॉर्डर की उपलब्धता से पुनः मौखिक इतिहास लेखन के प्रति विद्वानों का झुका हुआ और मौखिक परंपरा तथा स्रोतों में छुपे तत्वों को खोजने अथवा अध्ययन करने एवं नई जानकारियों के संकलन के प्रयास शुरू हुए। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में मौखिक इतिहास ऐतिहासिक पुनर्रचना के उद्देश्यों के लिए प्रत्यक्षदर्शियों से साक्षात्कार की प्रवृत्ति नहीं विभिन्न देशों में तत्कालीन इतिहास लेखन पद्धती पर एक गहरा प्रभाव डाला।

मौखिक स्रोतों से इतिहास लेखन की अवधारणा का उद्‌भव 1948 ईस्वी में हुआ। 1970 ईस्वी के आसपास ब्रिटिश विद्वानों द्वारा लोकगीतों में निहित तत्वों का इतिहास लेखन में अनु प्रयोग करने की विधि विकसित की गई। इस पद्धति द्वारा गैर इतिहासकार एवं अंतर व्यक्तियों द्वारा भी इतिहास संबंधी सूचनाओं के प्राप्त होने की संभावना को देखा गया। इस प्रकार जनसामान्य से वार्तालाप के दौरान उनकी याददाश्त को मुखरित करने एवं तत्वों के प्रकाशन की परंपरा विकसित हुई। कालांतर में हम पाते हैं कि यूरोपीय देश एवं अमेरिका के इतिहासकार भी इस परंपरा की ओर आकृष्ट हुए एवं वहां के मौखिक स्रोतों को टटोलकर तथा इनसे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर नए इतिहास गढ़ने को प्रोत्साहित हुए।

मौखिक इतिहास की महत्ता क्षेत्रीय इतिहास विश्व के अनेक क्षेत्रों में मौखिक स्रोतों के संकलन के प्रयास हुए। इस कड़ी में लोक गीतों के संकलन एवं अध्ययन में एवान एवान का योगदान अविस्मरणीय रहा। यूरोप के अलावा अफ्रीकी देशों में भी मौखिक परंपराओं के संरक्षण एवं अध्ययन के कारण हुए। इस कड़ी में ओरल हिस्ट्री जनरल की प्रथम प्रति सन 1971 ईस्वी में तैयार की गई। इस प्रकार परंपराओं के अध्ययन के माध्यम से मौखिक इतिहास के क्षेत्र में रिसर्च कार्यों की प्रगति हुई। बीसवीं सदी में औद्योगिकीकरण के। इस दौर में विभिन्न स्थानों से एकत्रित हुए मजदूरों के परंपराओं वहीं के साक्षात्कार से प्राप्त होने वाले मौखिक स्रोतों के संकलन का प्रयास किया गया। सामाजिक वैज्ञानिक प्रसारक संग्रहालय व ग्रंथ आले के कार्मिकों द्वारा भी मजदूरों से उनकी परंपरा व इतिहास साक्षात्कार के माध्यम से जानने के प्रयास किए गए। इन्हीं सभी प्रयासों से भारत मौखिक सूत्रों से प्राप्त सूचनाओं को इतिहास लेखन में उपयोग किया जा रहा है। इसके उपयोग से इतिहास के अनसुलझे पहलुओं को जानने समझने की कोशिश भी इतिहासकारों द्वारा की जा रही है।

12.8 तकनीकी शब्दावली

- दस्तावेज– विधिक लेख को दस्तावेज कहते है।
- तार पत्र– ताल वृक्ष के पत्ते जिन पर प्राचीन काल में लेख आदि लिखें जाते थे ताड़ पत्र कहलाता था।
- शिलालेख– पत्थर पर खोदकर लिखा गया लेख।
- मृदभांड– प्राचीन कालीन मिट्टी के बर्तन को कहा जाता
- पुरातत्व– प्राचीन अनुसंधान एवं अध्ययन से संबंधित
- उत्खनन– जमीन से खोद कर निकालना।

12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ परमानंद सिंह– इतिहास दर्शन,,,डॉ झारखंड चौबे– इतिहास दर्शन ,,
2. श्री राधे शरण– इतिहास और इतिहास लेखन
3. हेत सिंह बघेला– राजस्थान के इतिहास की रूपरेखा,
4. गिरिजा शंकर प्रसाद मिश्र– इतिहास का स्वरूप विवेचन,
5. डॉक्टर कालेश्वर राय– इतिहास दर्शन

12.10.1 प्रश्नावली

1– मौखिक इतिहास किसे कहते हैं वर्णन करें।
2– मौखिक इतिहास के स्रोतों की विवेचना करें।
3– मौखिक इतिहास के महत्व की विवेचना करें।
4– मौखिक इतिहास के उपयोग एवं दुरुपयोग की विवेचना करें ।
5– क्या मौखिक स्रोत इतिहास लेखन के लिए प्रमुख स्रोतों में से एक है विवेचना करें।